ब्र० सीतल स्मारक ग्रन्थमाला-ग्रन्थाङ्क नं०

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्रीमद् महाकवि श्री वीरनन्दि विरचित-

श्री चंद्रप्रभ चरित्र

संस्कृत काव्यसे हिन्दी भाषामें अनुवादकर्ता—
श्रीमान् पं० रूपनारायणजी पांडेय।

प्रकाशकः—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
दिगम्बर जैन पुस्तकालय, गांधीचौक-सूरत।

दूसरी आवृत्ति] वीर सं० २४८९ [ई० सन् १९६३

'जैनमित्र' के ६४ वें वर्षके ग्राहकोंको
श्री. ब्र० सीतलप्रसादजी स्मारक
ग्रन्थमालाकी ओरसे भेंट।

मूल्य—ढाई रुपये

प्रकाशक—
मूलचन्द किसनदास कापडिया
दिगम्बर जैन पुस्तकालय-सूरत

मुद्रक—
मूलचन्द किसनदास कापडिया
मुद्रणालय—
'जैन विजय' प्रिन्टिंग प्रेस,
गांधीचौक-सूरत
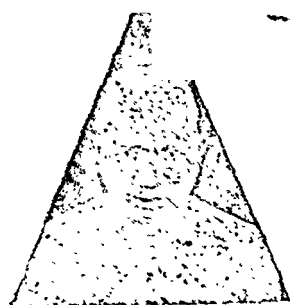
श्री. स्व. ब्र. सीतलप्रसादजी स्मारक ग्रन्थमाला-ग्रंथाङ्क १५ का निवेदन

करीब ५० दि० जैन ग्रन्थोंके लेखक अनुवादक, टीकाकार व संपादक तथा दि० जैन समाजमें अनेक जैन संस्थाओंके जन्मदाता और 'जैनमित्र' साप्ताहिक पत्रकी ३५ वर्षों तक अविरल सेवा करनेवाले व कुछ वर्ष 'वीर' आदि पत्रोंके संपादक श्री जैन-धर्मभूषण धर्म-दिवाकर श्री ब्र० सीतलप्रसादजी (लखनऊ नि०)का अतीव दुःखद स्वर्गवास वीर सं० २४६८ विक्रम सं० १९९८ में लखनऊमें हुआ था, तब हमने आपकी धर्मसेवा, जातिसेवा तथा जैनमित्रकी रातदिन अटूट सेवाके स्मारकके लिये आपके नामकी ग्रन्थमाला निकाल कर तथा उसके ग्रन्थ 'जैनमित्र' के ग्राहकोंको भेंट मिल सके इसलिये १०:००) की अपील मित्रमें की थी जिसमें ६०००) ही भरे गये थे तौ भी हमने जैसे तैसे प्रबन्ध करके इस ग्रन्थमालाका प्रारंभ वीर सं० २४७० से कर दिया था जो बराबर चालू है।

हां, इस ग्रन्थमालासे एकर ग्रन्थ प्रतिवर्ष उपहारमें देनेका खर्च बहुत अधिक होता है। इसलिये हमने 'जैनमित्र'के प्रत्येक ग्राहकसे प्रतिवर्ष सिर्फ १) अधिक लेनेकी योजना की है जिससे ही इतनी बड़ी सुलभ ग्रंथमाला चालू रह सकी है।

इस ग्रन्थमाला द्वारा आज तक १४ जैन ग्रन्थ प्रकट करके 'जैनमित्र'के ग्राहकोंको भेंटमें दे चुके हैं जिनके नाम व परिचय इस प्रकार हैं—

१—स्वतंत्रताका सोपान (स्व० ब्र० सीतल कृत) अप्राप्य मू० ३)
२—श्री आदिपुराण (स्व० कवि तुलसीरामजी जैन देहली रचित छंदोबद्ध) मू० ५)
३—श्री चन्द्रप्रभ पुराण (स्व० कवि पं० हीरालालजी जैन बडौत रचित छंदोबद्ध) मू० ४)
४—श्री यशोधर चरित्र (महाकवि पुष्पदंत रचित) ग्रन्थका पं० हजारीलालजी जैन कृत हिन्दी अनुवाद दूसरीबार (अप्राप्य) मू० ३)
५—सुभौम चक्रवर्ती चरित्र—(भ० श्री रत्नचंद्रजी विरचित) मूल व स्व० पं० लालारामजी शास्त्री कृत हिन्दी टीका मू० ३)
६—श्री नेमिनाथ पुराण (ब्र० नेमिदत्त रचित) संस्कृत ग्रन्थका पं० उदयलालजी कासलीवाल कृत हिन्दी अनुवाद दूसरीबार मू० ४)
७—परमार्थ वचनिका व उपादान निमित्तकी चिट्ठी (कविवर पं० बनारसीदासजी रचित) पर ब्र० सीतलप्रसादजी कृत भावार्थ और सुखसागर भजन सहित मू० १)
८—श्री धन्यकुमार चरित्र (अप्राप्य) मू० १।)
९—श्री प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (भ० सकलकीर्ति रचित संस्कृत ग्रन्थका स्व० पं० लालारामजी शास्त्री कृत हिन्दी टीका दूसरीबार) मू० ४)
१० - श्री अमितगति श्रावकाचार (आचार्य श्री अमितगति रचित मूल तथा पं० भागचन्दजी कृत वचनिका दूसरीबार) मू० ४)
११—श्रीपालचरित्र छंदबद्ध (कविवर परिमल्लजी रचित) मू० ३)
१२—'जैनमित्र'का हीरक जयन्ती सचित्र अंक (हम-संपादक द्वारा संकलित व प्रकाशित) मू० ३)
१३—धर्म परीक्षा (आचार्यश्री अमितगतिकृत मूल संस्कृत ग्रन्थका पं० पन्नालालजी बाकलीवालकृत हिन्दी अ०) मू० ३)

१४—श्री हनुमान-चरित्र हनुमताष्टकसहित (कवि ब्रह्मरायजा कृत पद्यमें तथा मास्टर सुखचन्द पद्मशाह पोरवाड़ बी. ए. खण्डवा कृत अनुवाद मू० २)

और अब यह पंद्रहवां ग्रन्थ—महाकवि श्री वीरनन्दि रचित—

श्री चन्द्रप्रभ चरित्र

—प्रकट किया जाता है। यह एक महाकाव्य है जो संस्कृत पद्यमें वम्बईके निर्णयसागर प्रेससे सन् १९०६ तक दो बार प्रकट हो चुका था जो मा० दि० जैन परीक्षालयके पठनक्रममें स्वीकृत है व जिसका हिन्दी अनुवाद वम्बईके जैन साहित्य-प्रसारक कार्यालय द्वारा सन् १९१६ में (आजसे ४७ वर्ष पहले) प्रकट हुआ था जो वर्षोंसे मिलता ही नहीं था अतः यह अलंकारिक धर्म ग्रन्थराज हम पुनः प्रकट करके 'जैनमित्र'के ६४ वें वर्षके ग्राहकोंको भेंटस्वरूप दे रहे हैं।

इस ग्रन्थराजके रचयिता महाकवि श्री वीरनन्दिजीका परिचय जो श्री पं० उदयलाल कासलीवाल तथा श्री पं० नाथूरामजी प्रेमीने प्रथम आवृत्तिमें लिखा है उसके आधारसे श्री पं० ज्ञानचन्द जैन "स्वतन्त्र" सूरतने इस ग्रन्थपर एक भूमिका लिख दी है जो आगे प्रकट की गई है।

'जैनमित्र' के जो ग्राहक नहीं हैं उनके लिये इस ग्रन्थकी कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी प्रकट की जाती हैं। आशा है इस द्वितीय आवृत्तिका भी शीघ्र प्रचार हो जायगा।

सूरत-वीर सं० २४८९
सं. २०१९ श्रावण सुदी ५
ता० २५-७-१९६३.

निवेदक—
मूलचंद किसनदास कापडिया,
सम्पादक-जैनमित्र व दिगम्बर जैन
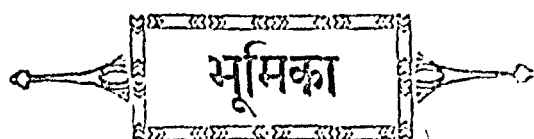
चन्द्रप्रभचरित्रके कर्त्ता महाकवि श्री वीरनन्दि

दि० जैन संप्रदायके मूलसंघकी ४ शाखाएँ हैं—१ नन्दि, २ सिंह, ३ सेन, ४ देव, इन शाखाओंकी भी प्रतिशाखाएँ हैं, जो गण, गच्छ आदि नामसे प्रचलित हैं। उनमें एक "देशीय गण" भी है। चन्द्रप्रभ काव्यके कर्त्ता महाकवि वीरनन्दिजी इसी देशीय गणमें हुये थे। इनका जन्मस्थान माता-पिता एवं गार्हस्थ्य जीवनके सम्बन्धमें कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं मिलती।

इनका समय विक्रमकी ११ वीं शताब्दि और शकशताब्दि ९ वींका अन्त १० वींका प्रारम्भ माना गया है। ग्रंथके अन्तमें श्री वीरनन्दिने अपना संक्षिप्तसा परिचय दिया है उससे ज्ञात होता है कि ये आचार्य अभयनन्दिके शिष्य थे। और अभय-नन्दिके गुरुका नाम गुणनन्दि था।

एकीभाव स्तोत्रके रचयिता श्री वादिराजसूरिने पार्श्वनाथ काव्य शक सं० ९४७ में बनाया था।

इसके प्रारम्भमें रचयिताने पूर्वके अनेक महाकवि एवं ग्रंथ-कर्त्ताओंका स्मरण करते हुवे लिखा है—

चन्द्रप्रभाभिसम्बद्धा, रसपुष्टामनः प्रियम्।
कुमुद्वतीवनोधत्ते, भारती वीरनंदिनः ॥३०॥

इस श्लोकसे यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि 'चन्द्रप्रभ काव्य' की रचना पार्श्वनाथ काव्यकी रचनाके पूर्व हुयी और पार्श्वनाथ काव्य शक सं० ९४७ में वादिराजने रचा था।

सिद्धान्त चक्रवर्ती आ० श्री नेमिचन्द्रजीने भी वीरनन्दिनाथको नमस्कार किया है।

प्रमाणके लिए देखिये—

> णमिऊण अभयणन्दि, सुदसागर पारगिंदणन्दि गुरुं।
> वर वीरणन्दिणाहं, पयडीणं पच्चयंवोच्छं॥
>
> —कर्मकांड ७८५ अ० ६

यानी मैं अभयनन्दिको तथा शास्त्रसमुद्रके पार पहुंचे इन्द्रनन्दि गुरुको और वीरनन्दिको नमस्कार कर प्रकृति प्रत्यय अध्यायको कहता हूं इससे यह सिद्ध हो जाता है कि आ० नेमिचन्द्रके पूर्व वीरनन्दि हुवे तभी उनने उनके लिए नमस्काररूपमें स्मरण किया है।

विक्रम सम्वत्‌मेंसे १३५ घटा देने पर शक सं० निकल आता है। शक सं० ९०० या विक्रम सं० १०३५ के लगभग वीरनन्दि महाकविका समय समझना चाहिए।

नेमिचन्द्राचार्य गंगवंशीय चामुण्डरायके समकालीन थे और चामुण्डराय नेमिचन्द्राचार्यका महान् भक्त था। चामुण्डरायका जन्म शक सं० ९०० के लगभग हुआ था। यदि वीरनन्दि नेमिचन्द्राचार्यके पूर्व न हुवे हों तो इनके समकालीन हुवे थे, ऐसा माननेमें भी हमें कोई आपत्ति नहीं है, फिर भी ऐतिहासिक जैन विद्वानोंको इस विषयमें शोध खोज अवश्य करना चाहिए।

महाकवि वीरनन्दिका यही एक चन्द्रप्रभ काव्य (चरित्र) उपलब्ध है, इसके अतिरिक्त उनने और कौन कौनसे ग्रन्थ बनाये इसका कोई पता नहीं लगता। महाकवि वीरनन्दि जैन सिद्धांतके पारंगत पंडित थे। जैन वाङ्मयपर उनका पूर्ण अधिकार था और महाकवि थे ही, तभी आपके द्वारा चन्द्रप्रभ चरित्रका महाकाव्य ग्रंथके रूपमें निर्माण हुआ था।

× × ×

चंद्रप्रभचरित्र महाकाव्यकी विशेषतायें

महाकाव्य ग्रन्थके जो लक्षण होना चाहिये वे सभी चन्द्रप्रभ चरित्रमें विद्यमान हैं, अतः यह उच्चकोटिका महाकाव्य ग्रन्थ है। इस काव्य ग्रन्थकी कथा जैसी मनोहारिणी है उससे कहीं अधिक इसकी रचना शैली है। शब्द चमत्कार, अर्थ चमत्कार, अलंकार, उत्प्रेक्षा, उपमा, अनुप्रास, श्लेष आदि अलंकारोंके पद पदमें दर्शन होते हैं।

कविने अपनी तूलिका द्वारा जिन अलंकारोंको श्लोकबद्ध किया है, तब ऐसा लगता है कि सचमुच कविने शब्द रूपी बिखरे हुवे मौक्तिकोंका संग्रह कर उन्हें सूत्रमें ग्रथित कर चन्द्रप्रभ चरित्ररूपी मौक्तिक मालाका निर्माण किया, और निर्माण कर अपनी कवित्व प्रतिभाका जो परिचय दिया वह सुन्दर ही नहीं अपितु अति सुन्दर है। इसी श्रेणीमें हमें धर्मशर्माभ्युदयके भी दर्शन होते हैं।

कल्पना और शृङ्गाररसका तो यह काव्य ग्रन्थराज एक प्रकारसे खजाना ही है। वसन्त ऋतु वर्णन, संध्या वर्णन, जलक्रीड़ा वर्णन, सुरतिक्रीड़ा (रात्रिक्रीड़ा) वर्णन, उपवन विहार, आदि ऐसे कथन हैं कि जिनपर सर्गके सर्ग लिखे गये हैं। और प्रत्येक श्लोकमें कल्पनाकी जो उड़ान भरी है वह अनायास ही पाठकोंके मनको अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। उदाहरणके लिये आप सर्ग ८, ९, १० को पढ़िये। लेखनी द्वारा नहीं लिखा जा सकता, यह तो पढ़कर ही समझा जा सकता है। कहींर तो शृङ्गाररसके वर्णनमें अतिशयोक्ति व्याजोक्ति भी मिलती है। आप एक श्लोकका रसास्वादन कीजिये—

> ह्रीतो विहाय मम लोचनहारिनृत्यं,
> गन्तुं शिखी सुमुखि ! तत्र यदि व्यवस्येत्।

कार्यस्त्वयास्मरनिवास नितम्बचुम्बी,
चीनांशुकेन पिहितो निजकेशपाशः ॥
—सर्ग ८ श्लोक ४२

अर्थात् हे सुन्दर मुखवाली ! मेरे नेत्रोंको सुख देनेवाले नृत्यको छोड़कर यदि मयूर लज्जासे भागनेकी कोशिश करे तो तुम अपनी केशराशि जो कि नितम्ब पर्यन्त लटक रही है उसे अपनी रेशमी ओढनीसे ढक लेना। शृङ्गाररसका वर्णन पढ़नेसे हमें लगता है कि महाकवि किसी समय बड़े रसिक होंगे।

जहां कविने एक ओर शृङ्गाररसका अद्भुत वर्णन किया है वहां दूसरी ओर वैराग्यका प्रकरण इससे भी अधिक सरस एवं महत्वपूर्ण है जो कि कविकी अनुभूति पूर्ण लेखनी द्वारा लिखा गया है।

महाकवियोंका उद्देश्य शृङ्गाररसका वर्णन कर कामीजनोंको उत्तेजना देना है ऐसा उनका आशय नहीं होता। किन्तु वे अंतमें शृङ्गाररसकी ओरसे उन्हें निकाल कर वैराग्य या विरक्तिकी ओर ले जाते हैं। यहां महाकवियोंकी काव्य प्रतिभा एव बुद्धिचातुर्य ही काम करता है।

गदेनमुक्तोऽशनिनाकटाक्ष्यते, तदुज्झितः शस्त्रविषाग्निकंटकैः।
अनेकमृत्यूद्भवसंकटे नरः, कियद्दूराकाश्चिरमेष जीवति ॥
—सर्ग ११ श्लोक १९

अर्थात् रोगसे छुटकारा मिला तो सिरपर बिजली गिरना चाहती है। बिजलीसे बचे तो शास्त्र-विष अग्निरूप कण्टक (संकट) सामने खड़े हैं। मृत्युकी अनेक सामग्रियोंसे भरे इस संसारमें क्षुद्र मनुष्य कब तक जी सकता है ? संसारकी निःसारता और उससे विरक्ति होनेका कितना सुन्दर उदाहरण है जो हृदय पर गहरा प्रभाव डालता है।

इसी प्रकार वीर करुणा रसादिका सुन्दर विवेचन है। कविकी वस्तु-वर्णन शैली देख कर उनकी स्वाभाविक प्रतिभाकी

मुक्त कण्ठसे प्रशंसा किये बगैर नहीं रहा जा सकता। भाषा न सरल है न कठिन है। विद्यार्थी जीवनमें इस महाकाव्यको परीक्षा देनेके उद्देश्यसे पढ़ा था तब बुद्धि कुछ और ही थी और अब मैं जब इस काव्यको पढ़ता हूं तब मुझे पहिलेकी बालबुद्धि पर तरस आता है।

नारीकी ममता और आत्मीयता

नारीने आदि युगसे ही पुरुष समाजकी जो सेवा की है जो बलिदान और त्याग किये हैं वे अनोखे ही हैं। पत्नी, भगिनी, पुत्री, माताके विविध रूपमें मानव समाजको जो सेवायें कर रही हैं वे अनुपम हैं, इन सेवाओंके समक्ष पुरुष समाज उऋण नहीं हो सकता। इसके त्याग बलिदानकी कहानी निरन्तर ही प्रेरणाप्रद रही है। नारी अपने स्वभावानुसार जननीकी संज्ञा प्राप्त करती है। यदि दुर्भाग्यवश किसी नारीको जननीकी संज्ञा प्राप्त न हो तो उसकी मनःस्थितिको ठीकर समझना पुरुषका काम नहीं है।

जब राजमहिषी श्रीकांताको सन्तान प्राप्त नहीं होती तब महाकवि उसकी मनःस्थितिका सुन्दर ढँगसे वर्णन करते हैं। महाकवि श्रीकांताके मुखसे कहलाते हैं कि मेरा स्त्री होना निरर्थक है, मैं एक शुष्क नीरस लता हूं। लगता है महाकवि सन्तानहीन नारी हृदयको परखनेकी क्षमता रखते हैं।

जब जितसेनाके पुत्र (पिता राजा अजितंजय) अजितसेन युवराजका एक चन्द्ररुचि नामका असुर हरण कर लेता है तब जितसेना कल्पान्त रुदन करती है इस प्रसंगको पढ़कर पाषाण हृदय भी पिघल उठता है। नारी अपनी सन्तानके पालन-पोषणमें जितना त्याग करती है उतना पुरुष नहीं इसीलिये तो जननीकी ममता और आत्मीयता विश्वमें अजोड़ मानी गयी है।

× × ×

चंद्रप्रभ चरित्रकी कथावस्तु

महाकविने ८ वें जिनेन्द्र भ० चन्द्रप्रभका अज्ञानतिमिरनाशक पावन पुण्य श्लोकमय चरित्र लिखा है। इसमें जिनेन्द्रके पूर्वके छह भव बतलाये हैं—१-श्रीवर्मा राजा, २-सौधर्म स्वर्ग, ३-अजितसेन चक्रवर्ती, ४-अच्युत स्वर्गमें इन्द्र, ५-पद्मनाभ राजा, ६-वैजयन्त विमानके अहमिन्द्र। इस प्रकार ६ भव बतलाकर ७ वें भवमें चन्द्रप्रभ ८ वें जिनेन्द्र हुवे हैं।

इस काव्यग्रन्थमें कुल १८ सर्ग हैं। जिनमें १५ सर्गोंमें ६ भवका वर्णन है। १६ वें सर्गके अन्तमें भगवान जगन्माता लक्ष्मणाके गर्भमें आते हैं। १७ सर्गमें जन्माभिषेक, बालक्रीड़ा, विवाह, राज्य संचालन, दीक्षा कल्याणक, तपस्या, केवलज्ञानकी प्राप्ति, कुबेर द्वारा समवशरणकी रचना आदिका कथन है। फिर १८ वें सर्गमें भ० द्वारा प्रतिपादित जैन सिद्धान्तका संक्षिप्तसा वर्णन है।

मेरा पाठकोंसे अनुरोध है कि इस चन्द्रप्रभ-चरित्रका स्वाध्याय कर आनन्द एवं शांतिका अनुभव करें। यह काव्य ग्रंथ एक प्रकारसे धर्मशास्त्र भी है क्योंकि इसमें केवलीकी वाणीका निरूपण किया गया है। किमधिकं विज्ञेषु।

चंद्रप्रभ जिनेन्द्रके संबंधमें संक्षिप्त जानकारी

पिता महासेन, माता लक्ष्मणा, जन्मस्थान चन्द्रपुरी, नाम चन्द्रप्रभ ८ वें तीर्थंकर, लांछन चन्द्रमा, निर्वाणक्षेत्र संमेदशिखर, निर्वाणके समय नक्षत्र ज्येष्ठा, शरीरकी कांति चन्द्रमा सदृश, आयु १० लाख पूर्व वर्ष, कुमार काल २॥ लाख पूर्व वर्ष, कायोत्सर्ग आसनसे मुक्ति, मुक्तिप्राप्तिका समय प्रातःकाल, साथमें १००० मुनि मोक्ष गये, भाद्रपद शु० ७ को जन्म, माघ कृ० १२ को जातरूप मुद्रा धारण की। दीक्षा समय सायंकाल, दीक्षा स्थल जन्मभूमिका

उपवन, दीक्षा बाद दो दिनका उपवास, सोमदेवके यहां सर्व प्रथम आहार, बेला उपवासके बाद फाल्गुन कृ० ७ के दिन केवलज्ञानकी प्राप्ति, पूर्वभवमें सिंहनिष्क्रीडित तप और १ माहका प्रायोपगमन सन्यास धारण, पूर्वभवमें वैजयन्त विमानमें अहमिन्द्र फिर तीर्थंकर हुवे।

छद्मस्थावस्थामें ३ मास (मुनि होनेके बाद केवलज्ञान प्राप्त न होनेतकका समय) ९३ गणधर, २ हजार दशपूर्वधारी, २ लाख ४०० शिक्षक (उपाध्याय) ८ हजार विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानके धारक, ८ हजार अवधिज्ञानी, १० हजार केवलज्ञानी, १० हजार ४०० विक्रिया ऋद्धिधारी मुनि, ७ हजार ६०० वादी, ३ लाख ८० हजार आर्यिकायें शरीर उत्सेध, १५० धनुष, संयमकाल २४ पूर्वांगकम १ लाख पूर्व वर्ष, कुमारकाल और संयमकालका समय घटा देनेपर जो शेष रहें उतने समयतक चन्द्रप्रभ जिनेन्द्रने राज्य संचालन कर प्रजाका पालन किया था। समवशरणमें समस्त मुनियोंकी संख्या २॥ लाख थी, ३ लाख श्रावक, ५ लाख श्राविकायें। आपके तीर्थमें ९० अनुबद्ध केवली हुवे।

इस चन्द्रप्रभ चरित्रकी भूमिकाके सम्बन्धमें जो लिखा है वह पाठकोंके समक्ष है। इसमें भूलें होना स्वाभाविक है, आशा है विद्वान् बंधु क्षमा करेंगे।

आषाढ़ शु० १५, वीर सं० २४८९, ता० ६-७-६३.

निवेदक—

ज्ञानचन्द्र जैन, "स्वतन्त्र"-सूरत।

विषय-सूची

श्रीवीतरागाय नमः

श्रीमन्महाकवि श्रीवीरनन्दिविरचित-

श्री चन्द्रप्रभ चरित्र

प्रथम सर्ग

दर्शनके लिए आये हुए देवगणके नृत्य समय, उनके चंचल नेत्रोंके प्रतिबिम्ब पड़नेसे, जिनकी रत्नमयी सभा, कमलोंके उपहारको अर्थात् पुष्पाञ्जलिको लिए खड़ीसी जान पड़ी और शोभित हुई वे प्रथम 'जिन' (श्री ऋषभ) शोभा और वैभव दें।

जिनके बिल्लोरके समान स्वच्छ चमकीले भामण्डलमें डूबे हुए देवगण क्षीरसागर (दूधके समुद्र) के भीतर स्थितसे जान पड़ते थे वे श्री चन्द्रप्रभ जिनदेव (इस महाकाव्यके नायक आठवें तीर्थङ्कर) रक्षा करें।

जिनमें अनन्त-विज्ञान, अनन्त-वीर्य, अनन्त-सुख और अनन्त-दर्शन, ये चार अनन्त चतुष्टय वर्तमान हैं वे शांतिनाथ जिन (सोलहवें तीर्थङ्कर) जन्म-मरणके दुःखको शान्त करें।

बुढ़ापेसे रहित और मोक्ष-लक्ष्मीके स्वयं-स्वीकृत पति, रोग रहित, भयहीन; संसार-बन्धनको छुड़ानेवाले और देवता, मनुष्य तथा असुर जिनकी स्तुति करते हैं ऐसे महावीर (चौवीसवें तीर्थङ्कर) जिनदेवको मैं प्रणाम करता हूं।

मैं जिनदेवके उन उपदेशोंके शरणागत हूं जो भव्य जीवोंके एकमात्र बन्धु हैं। वे हितरूप हैं। उनमें किसी तरहका मतभेद या झगड़ा नहीं है। गैर लोग (अन्यमतावलम्बी) उनका खण्डन नहीं कर सकते। वे मोक्षके देनेवाले हैं। वे सबके लिए शरण (आश्रय)-रूप हैं।

गुण (डोरा और प्रसाद माधुर्य आदि उत्तमता) से युक्त, निर्मल वृत्त (गोलाई और चारित्र) वाली मुक्तावली (मोतियों और मुक्त पुरुषों) से पूर्ण, तथा अच्छे पुरुषोंने जिसे अपने कण्ठका गहना बनाया है ऐसा हार ही दुर्लभ नहीं है; बल्कि समन्तभद्रादि आचार्योंकी वाणी भी दुर्लभ है।

सज्जन पुरुष गुणोंका ग्रहण किये बिना प्रसन्न नहीं होता; वैसे ही दुर्जन पुरुष भी दोषोंको कहे बिना सन्तुष्ट नहीं होता। सच तो यह है कि सदाके अभ्यासके अनुसार ही गुण-ग्रहण और दोष-वर्णनमें लोगोंकी प्रवृत्ति या रुचि हुआ करती है। जैसे प्रशंसापूर्वक गुणोंका उपदेश करनेवाले सज्जनको गुरु मानकर प्रणाम करते हैं, वैसे ही मैं, निन्दापूर्वक दोष दिखलानेवाले दुर्जनको भी हाथ जोड़ता हूं।

जिसे गणधरदेव भी दुष्कर मानते हैं और साक्षात् वाणीदेवी (सरस्वती) भी अपनी शक्तिसे बाहर समझती है उसी जिन-चरित्रके वर्णनमें प्रयास करनेवाला मन्दमति मैं, अवश्य ही विद्वान् सज्जनोंकी सभामें हँसा जाऊँगा। तथापि गणधर आदि आचार्योंने जिसपर सेतू (पुल) बना दिया है—जानेका मार्ग सुगम कर दिया है उस अगम्य पुराण-सागरमें, मैं उसी तरह प्रवेश करनेका प्रयत्न कर रहा हूं जैसे झुण्डके सरदार गजराजके चले हुए मार्गमें हाथीका बच्चा।

× × ×

कथाका आरम्भ

दूसरे द्वीप धातकीखण्डमें एक पूर्वमन्दर नाम पहाड़ है। उसके ऊँचे शिखर देवताओंकी पुरीको छू रहे हैं। उसके प्रकाशकी, पके धानकी मंजरीके समान सुनहली किरणें आकाशमें बिजलीकी ऐसी छटा छिटकाती हैं। उसके पूर्व तरफ विदेह क्षेत्रमें मङ्गलावती नाम एक देश है। वह देश पृथ्वी पर स्वर्गके समान शोभायमान है। वह मङ्गलोंसे युक्त है, इसलिए उसका मङ्गलावती नाम ठीक ही है। वहांकी जमीन तोतोंके अङ्गके समान कोमल हरे हरे अन्नके पौधोंके अंकुरोंसे ऐसी मालूम पड़ती है मानों हरी मणियोंसे बना हुआ फर्श है। उसे देखते ही मन मोहित होता है।

वहांके सरोवर बहुत ही सुन्दर हैं। उनमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल स्वच्छ पानी भरा हुआ है। उनमें खिले हुए नीले कमल उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। जान पड़ता है कि वे सरोवर नहीं, किन्तु निराधार होनेके कारण आकाशके टुकड़े पृथ्वीपर गिर पड़े हैं। वहां, रातके समय चन्द्रमाको देखकर गली हुई चन्द्रकान्त मणियोंके जल-प्रवाहसे भरी हुई नदियां गर्मीकी ऋतुमें भी अपने किनारेके वृक्षोंकी जड़ोंको काटती हुई वेगसे बहती हैं।

‘मेरी सौत जो धन अन्नकी सम्पत्ति है वह इन्हें भजती है’ यह समझ मारे डाहके मानों विपत्ति वहांके लोगोंकी तरफ देखती भी नहीं। शरदऋतुके बादलोंके समान श्वेतवर्ण स्थलकमल फैले हुए श्वेत छत्रसे दिखाई पड़ते हैं। मानों उन छत्र-सदृश स्थलकमलोंसे वह देश यह जता रहा है कि मैं सब देशोंका राजा हूं।

वहांके लोगोंकी समृद्धि या बढ़तीका कारण जो अत्यन्त

उज्ज्वल सोने आदिकी खानें हैं उनसे वहांकी पृथ्वीका वसुमती नाम सार्थक देख पड़ता है। वहांके गांवोंमें बाहर नवीन अन्नकी ढेरियां इतनी ऊंची लगी हुई हैं कि मानों बादलोंको छू लेंगी। उन ढेरियोंको देखनेसे मालूम पड़ता है मानों कौतूहलके कारण उस देशको देखनेके लिए कुलाचल आये हैं।

वहांके गांव और शहरोंमें बड़े बड़े महल बने हुए हैं और शहरोंमें जितनी और जैसी सम्पदा है उतनी और वैसी सम्पदा अन्यत्र कहीं नहीं है। गांव और शहर दोनोंमें लगातार मनोहर बाग लगे हुए हैं। मानों एक दूसरेकी सम्पदा देखनेके लिए ही गांव और शहर बराबर पास ही पास बसे हुए हैं।

उस देशमें एक रत्नसञ्चय नामका पुर है। जिसके चौकमें सेठों और महाजनोंकी दूकानोंपर रत्नोंके ढेर लगा करते हैं।

वहां चौककी सड़कपर बने हुए बड़े बड़े भवन बरामदों और बरामदोंके आगे द्वारपर बंधे हुए हाथियोंसे अपना वैभव जता रहे हैं। जहांकी चौड़ी खाईके जलमें मन्दवायुसे धीरे धीरे जाते हुए बादलोंकी परछाईं पड़नेपर मालूम पड़ता है कि उसके भीतर जल-गज (पानीके हाथी) तैर रहे हैं। रातके समय चारों ओर खिले हुए नक्षत्र, जान पड़ता है कि उस पुरकी आकाशसे बातें करती हुई चहारदीवारीकी चोटीपर रक्खे हुए रत्न-दीपक जल रहे हैं। आकाशमें प्रकाशमान पूर्ण चन्द्रमाके मण्डलमें मलिन (काला) चिह्न देखकर जान पड़ता है कि चन्द्रमाके चन्द्रमण्डलका उतना हिस्सा वहांके ऊंचे महलोंकी चोटियोंकी रगड़से घिस गया है।

महलोंके फाटकोंपर बनी हुई अंटियां इतनी ऊंची हैं कि कभी कभी बादल उनके नीचे आजाते हैं। उस समय अंटियोंपर टहलते हुए आदमियोंको बादल देखकर धोखा होजाता है कि वे हाथी हैं। इसका कारण यह है कि बादलोंका निर्मल जल

मदजलकी तरह उनसे गिरता है; और बिजलीकी लकीर गजके गलेमें पड़ी हुई सोनेकी जंजीरसी जान पड़ती है।

बादलोंका गरजना हाथीके शब्दसे बिल्कुल मिल जाता है। जवानीके पानीसे चमकीले, वहांकी पद्मिनी स्त्रियोंके मुख-कमलोंसे निकली हुई मनोहर सुगन्धको पाकर, उन्हें चन्द्रमा समझकर, राहुके समान भौंरोंके झुण्ड झपटते हुए उधर ही जाते देख पड़ते हैं। जहाँ शीशमहलोंकी दीवारोंमें बने हुए जीवोंके चित्रोंको सजीव (जीताजागता मनुष्य) समझकर नई व्याही हुई बहू चकित दृष्टिसे बारबार संकोचसे उधर देखती हुई अपने पतिसे अच्छी तरह आलिङ्गन नहीं कर सकती। वहांके भवनोंमें ऊपरकी छतें चन्द्रकांत शिलाकी बनी हुई हैं।

यही कारण है कि चन्द्रमाका उदय होता है तब उन शिलाओंके पसीजनेसे नीचे बून्दे गिरने लगती हैं। पलाऊ मोर समझते हैं कि बादल घिरआये और इसी खुशीसे वे बादल न होनेपर भी नाचने लगते हैं। गरमीकी रातोंमें महलोंपर बैठी हुई सुन्दरियोंके चमकीले गोल गाल और चन्द्रमण्डल एकसे जान पड़ते हैं। केवल कलंकके चिह्नसे ही चन्द्रमा पहचान लिया जाता है। वहांके भवनोंमें ऊपर ध्वजायें फहरा रही हैं। उन ध्वजाओंके कपड़े शरदऋतुके बादलोंके समान उज्ज्वल हैं। ध्वजाओंने सूर्यकी धूपको रोक रक्खा है, धूप मकानोंके भीतर नहीं आने पाती। उन ध्वजाओंको देखकर जान पड़ता है कि ये ध्वजायें नहीं, किन्तु मकानोंकी चोटियोंसे फटे हुए सूर्यके कपड़े हैं।

उस पुरमें बड़े बड़े जिन-मन्दिर पहाड़ोंके समान जान पड़ते हैं। क्योंकि पहाड़ोंपर विशाल शाल (साखूँ) के वृक्ष और उपवन (छोटे जंगल) होते हैं और मन्दिरोंमें भी विशाल शाल (चहारदीवारी) और उपवन (बाग) पास ही शोभायमान हैं। पहाड़ोंकी चोटियोंपर मेघ-खण्ड बैठ बैठ जाते हैं और यही

हाल ऊंचे मन्दिरोंकी चोटियोंका भी है। पहाड़ोंपर जिन्दा सिंह रहते हैं और मन्दिरोंमें भी सिंह बने हुए हैं।

जिस पुरमें 'मद'का सम्बन्ध केवल हाथियोंमें ही है, अन्यत्र कहीं कोई मद (नशे) का नाम भी नहीं जानता। 'उपसर्ग' (प्र, परा, उप आदि व्याकरणके उपसर्ग) केवल धातुओंमें ही होते हैं, अन्यत्र कहीं उपसर्ग (रोग, बाधा) का नाम भी नहीं सुनाई पड़ता। 'निपात' की क्रिया केवल शब्दोंमें ही होती है, अन्यत्र कहीं निपात (अधःपतन, नाश) नहीं देख पड़ता। द्विजिह्व (दो जबानवाले) केवल साँप ही देख पड़ते हैं, और कोई द्विजिह्व (चुगलखोर) नहीं देखा जाता। योगी लोग ही चिन्ता (विचार, ध्यान) करते देख पड़ते हैं, और कोई चिन्ता (फिक्र) करते नहीं देखा जाता। दरिद्रता (क्षीणता, पतलापन) ने केवल कामिनियोंकी कमरमें आश्रय पाया है, अन्यत्र कहीं दरिद्रता (गरीबी) का नाम भी नहीं है। ओठ ही 'अधर' कहलाते हैं, और कहीं कोई अधर (हीन जातिका) नहीं देख पड़ता।

वहांके भवनोंकी दीवारें रत्न-शिलाओंकी बनी हुई हैं। सूर्यकी कान्ति पड़नेसे वे और चमकने लगती हैं। उस समय जान पड़ता है कि वे भवन सूर्य-ताप (धूप) के भयसे आप अपने ही तेजमें लीन हो रहे हैं—छिप रहे हैं। उस पुरमें ऐसा कोई मुहल्ला नहीं, जहाँ घने आदमियोंकी बस्ती न हो और ऐसा कोई आदमी नहीं, जो धनी न हो। सब धनी अपने धनका भोग करनेवाले थे, कोई सूम न था। वह धन-भोगी भी साल दो सालके लिये नहीं, किन्तु सदा होता था।

जहाँकी सुन्दरी स्त्रियोंके नेत्रकमलोंकी शोभाके आगे अपनी शोभा फीकी पड़ जानेसे सन्तापको प्राप्तसे नीले कमल, हवाकी हिलकोरोंसे हिलते हुये, ठण्डे तालावोंके पानीमें, जीकी जलन मिटानेके लिए लौटा करते हैं।

उस पुरके निवासी सब सज्जन हैं। उनसे पुरकी परम शोभा है। वे सज्जन महागुणों (सम्यक्त्व आदि) से युक्त होनेपर भी अगुण हैं। अगुण शब्दके दो अर्थ होते हैं। एक तो 'अ' नाम विष्णुका है, इससे विष्णुके ऐसे गुणवाले हुआ; और दूसरा यह कि क्रोध, लोभ, मोह आदि शरीरके गुणोंसे रहित हैं। उनमें मद (अभिमान-घमण्ड) का लेश भी नहीं है, किन्तु वे प्रमद (प्रमोद, आनन्द) से परिपूर्ण हैं। वे निर्भय (सातों भयोंसे रहित) होनेपर भी परलोकसे डरते हैं।

परलोक शब्दका एक दूसरा भी अर्थ होता है। पर अर्थात् शत्रुपक्षके लोगोंसे डरते हैं अर्थात् वे किसीसे शत्रुता नहीं रखना चाहते। वहांके ऊँचे महलोंकी छतोंपर, छेदों और झरोखोंमें रहनेवाले पक्षियोंका मान मिटानेवाला मधुर शब्द सुनते ही मानिनी स्त्रियोंका मान नहीं रहने पाता। इसी कारण वहांके निवासी पुरुष अपनी पत्नियोंको मनानेका रस (स्वाद) नहीं जानते। यही (अरसिकताका) दोष एक उन पर लगाया जा सकता है। और कोई दोष उनमें नहीं देख पड़ता।

उस पुरका शासन करनेवाले महाराजमें न्याय प्रताप आदि सभी गुण थे। यद्यपि उनके तेजकी उपमा किसीसे नहीं दी जा सकती तथापि वे जगत्में 'कनकप्रभ' नामसे प्रसिद्ध थे। चन्द्रमाकी कलाओंके समान उज्ज्वल उनके यशने आगे आगे बढ़कर सारे पृथ्वीमण्डलको व्याप्त कर लिया और उससे उनके शत्रुओंके दलको बड़ा ही संताप हुआ। महापराक्रमी राजा कनकप्रभका तेज या पराक्रम पृथ्वी पर जैसे समाता ही नहीं; वह पृथ्वीभरमें भर गया है और अब पृथ्वीसे निकलकर अन्य लोकोंमें पहुंच रहा है।

भूभृत जो पहाड़ और राजा लोग हैं उनके उच्च (ऊँचे और बड़े) कटकों (शिखरों और सेनादलों)में चिरकाल तक फिरते

रहनेसे थकी हुई जयलक्ष्मी उन महाराज कनकप्रभकी भुजाओंको पाकर उनमें स्थिर होकर रहने लगी। मानों फिरनेकी थकनके भयसे वह उन भुजाओंको न छोड़ सकी। महाराज कनकप्रभका माहात्म्य और गुण अचिन्त्य थे। वे अपने अनुगत जनोंके एक मात्र आश्रय थे। उन्होंने अपने विक्रम (पराक्रम) से सब लोगोंको व्याप्त कर लिया था।

वे श्री (सम्पत्ति) के स्वामी और पुरुषोत्तम (उत्तम पुरुष) थे। इस प्रकार सब बातोंमें वे विष्णुके सदृश थे। विष्णु भी अचिन्त्य महिमा और गुणवाले हैं। वे भी अपने जनों (भक्तों) के एक मात्र आश्रय हैं। उन्होंने भी अपने विक्रम (चरण विन्यास) से वामनावतारमें सब लोकोंको नाप लिया था। वे श्री (लक्ष्मी) के पति और पुरुषोत्तम भी कहलाते हैं।

इस प्रकार सर्वथा समान होनेपर भी विष्णुमें और कनकप्रभमें एक बड़ा अंतर था। विष्णुने कृष्णावतारमें वृष (बैलका रूप रक्खे हुए अरिष्टासुर) को मार डाला, मगर कनकप्रभ वृष (धर्म) के नाशकी चेष्टा नहीं करते थे।

राजा कनकप्रभकी सब संपदा परोपकारके लिये ही थी। उनमें देनेका गुण स्वाभाविक था। कनकप्रभके स्वाभाविक दान-गुणसे परास्त होकर ही मानों सोचके मारे कल्पवृक्ष जड़ हो गये। कनकप्रभ शिल्प आदि कलाओंसे पूर्ण थे, चन्द्रमा भी कलाओंसे पूर्ण होता है। राजा अपने जनों (प्रजा) का अभिनंदन करते हैं, चन्द्रमा भी सब जनोंको अभिनंदित या आनंदित करता है। राजाकी श्री (सम्पत्ति) त्रिलोकके ऊपर-अर्थात् त्रिलोकीकी सम्पत्तिसे बढ़कर थी, चन्द्रमाकी भी शोभा त्रिलोकीके ऊपर रहती है।

यह सब होनेपर भी कलंकी चन्द्रमा प्रदोष (सायंकाल और भारी दोष) से संसर्ग रखनेके कारण सर्वथा उज्ज्वल जो महाराज

कनकप्रभ हैं उन्हें नहीं जीत सका-उनसे उसने नीचा ही देखा। सम्पूर्ण जगतके तिलक-स्वरूप राजा कनकप्रभने कुलको अपने विशुद्ध चरित्रसे, दिशाओंको अपने शरदृतुके बादलोंके समान उज्ज्वल यशसे, शरीरको गुणों-शरीर, मन और वाणीकी शक्तियोंसे और शास्त्रोंको सुनकर बुद्धिको विभूषित बनाया।

अत्यन्त दान (१) देनेपर भी उनमें मद (२) का लेश न था। उन्होंने काम, क्रोध, हर्ष, मान, लोभ और मद-इन भीतरी छह शत्रुओंको अपने वशमें कर लिया था। अहीन (३) अर्थात् उत्तम लोगोंका साथ करके भी द्विजिह्व (४) लोगोंकी संगतिका दोष उनमें नहीं था। राजाकी कीर्ति सब लोकोंमें प्रसिद्ध थी।

उन्होने शत्रुओंके लिए अत्यन्त दुस्सह अपने पराक्रमसे सब अभिमानी सामन्त राजाओंको परास्त करके पृथ्वीका 'गो'+ नाम होनेपर भी उसे करिणी× बना दिया। अत्यन्त वृद्ध (बूढ़े और बढ़े हुए), कठोर बरताववाले, नीति-युक्त जिन कनकप्रभके कंचुकी (दरवाजामरा या अन्तःपुर-रक्षक) के तुल्य तेजने चंचला लक्ष्मीको भी कुलवधूके समान सदाके लिए वशमें कर दिया।

वह राजा शंकरके समान धराश्रय (धरा अर्थात् पृथ्वीके आश्रय स्वरूप) थे, शंकर भी धराशय (धर अर्थात् पर्वतके

---

(१) दान, हाथीके मदजलको भी कहते हैं। (२) घमंड और मदजल। दो दो अर्थवाले इन दोनों शब्दोंका एक पक्षमें एक ही अर्थ होनेसे अच्छा चमत्कार आ गया है (३) अहीन सर्पको भी कहते हैं। (४) द्विजिह्व साँप और चुगलखोरको भी कहते हैं।

+ गो, गऊको और पृथ्वीको भी कहते हैं। × करिणी हथनीको भी कहते हैं। करिणीका एक अर्थ 'कर' (मालगुजारी) वाली भी होता है। एक पक्षमें चमत्कार यह है कि गऊको हथनी बना दिया।

आश्रित, अर्थात् पहाड़पर रहनेवाले) हैं। राजा भारी भूति (विभूति=ऐश्वर्य) से युक्त थे, शंकर भी शरीरमें भूति (विभूति=भस्म) लगाये रहते हैं।

राजा शशांक जो चन्द्रमा उसके समान मनोहर थे, शंकर भी चन्द्रमा धारण करनेसे मनोहर अर्थात् चन्द्रशेखर हैं। राजाके घर अनेक नागनायक (गजराज) थे, शंकर भी शरीरमें नागनायकों (शेष, वासुकी आदि नागों) को धारण किये हुए हैं।

राजाने भी सब गोपतियों (पृथ्वीपतियों) को नीचा दिखा दिया था। शंकर भी गोपति (बैल=नन्दी) को नीचे किये हैं अर्थात् बैल उनका वाहन है। राजा ईश्वर (समर्थ) थे, शंकर भी ईश्वर कहलाते हैं इतना होनेपर भी शिवके समान उनमें विषम-दृष्टि (पक्षपात, शिवके पक्षमें तीन नेत्र होनेकी विषमता) न थी। जिन राजाने अपने निर्मल और प्रसिद्ध गम्भीरता गुणसे समुद्रका गम्भीरताका यशरूपी धन लूट लिया था। शायद इसीसे सागर अबतक लहररूपी भुजाएँ उठाकर गरजता नहीं, बल्कि चिल्ला रहा है।

राजा कनकप्रभ सम्पूर्ण राजनीतिको जानते थे। उन्होंने अपने सब शत्रुओंको निर्मूल कर दिया था। वे सदा अपनी विशुद्ध बुद्धिसे विचार कर हरएक काम करते थे। वे पशुओंकी तरह क्रोध आदिके वशीभूत होकर कोई काम न कर डालते थे। उन्होंने अपनी उन्नतिशील प्रजाको नववधूकी तरह सब प्रकारसे सन्तुष्ट किया। जिसतरह पति अपनी नववधूको रति या सुरत क्रीड़ासे प्रसन्न करता है उसीतरह उन्होंने अपनी प्रजाको रति अर्थात् प्रीतिसे प्रसन्न किया, और जिसतरह पति तरह तरहके उज्ज्वल वर्णों या रंगोंकी चित्ररचनासे वधूके शरीरको अलंकृत करता है, उसीतरह उन्होंने प्रजाको ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णोंकी उज्ज्वल व्यवस्थासे शोभित किया।

इस प्रेमपूर्ण व्यवहारसे सन्तुष्ट हो प्रजा उनके गुणोंके वश हो गई। असंख्य, कीर्तिशाली और शरदचन्द्रकी किरणोंके समान निर्मल सारे गुण मानों दोषोंकी सेना रोकनेके इरादेसे कनकप्रभ राजामें आकर इकट्ठे हुए थे (एक जगह जमा होकर मिलकर रहनेवाले सिपाही सहजमें शत्रुकी सेना द्वारा परास्त नहीं होते)।

अपने पराक्रमसे सब राजाओंको परास्त करनेवाले और जगतकी श्रेष्ठ लक्ष्मीको अपने हृदयमें स्थान देनेवाले कनकप्रभकी पटरानीका नाम सुवर्णमाला था। उस रानीका स्वभाव या चरित्र अनन्दित अर्थात् शुद्ध था। उसकी चन्द्रकलासे भी उज्ज्वल और फैली हुई शरीरकी कांतिके पानीमें घुला हुआसा उसका स्वभाव या चरित्र कभी मलिन नहीं हुआ। रानीके उज्ज्वल कपोल-मण्डलवाले मुखमण्डलको चन्द्रमा समझकर उसके शरीरमें हँसी-रूपी फेनसे युक्त कांतिका सागरसा उमड़ चला था। (चन्द्रमाके पूर्ण मण्डलको देखकर सागरका उमड़ना एक प्रसिद्ध बात है।) वे राजा नारायणके समान पृथ्वीका उद्धार करनेवाले थे, नारायणने वाराह अवतार लेकर पृथ्वीका उद्धार किया है। राजा बलसे युक्त थे, नारायणने भी कृष्णावतारमें बलरामके साथ अवतार लिया था। राजाका चित्त सत्यानुरक्त (सत्यसे अनुराग रखता) था, कृष्ण भी सत्यानुरक्त (सत्या—सत्यभामासे अनुराग रखते) थे। राजा (उत्तम पुरुष) थे और कृष्ण भी पुरुषोत्तम (नारायण) थे। उन राजाके मन्दिरमें मृगनयनी सुवर्णमाला साक्षात् लक्ष्मीका रूप थी।

राजा और रानीमें परस्पर बड़ा स्नेह था। कुछ दिनोंमें बड़े तेजसे परिपूर्ण एक बालक उनके पैदा हुआ। वह बालक नरकका वैरी अर्थात् नरककी गतिको अपने पुण्य कार्योंसे मिटानेवाला हुआ। कृष्णने भी नरकासुरको मारा था। इसलिए उस लड़केका पद्मनाभ यह नाम सार्थक था। (पद्मनाभ विष्णुका

भी नाम है)। कलाओं (बालकके पक्षमें विद्याओं ६४ कला और चन्द्रपक्षमें चन्द्रमाकी कला) से युक्त चन्द्रमाके समान वह बालक अपने तीव्र तेजसे सूर्यके समान था। वह सब पर समानरूपसे कृपा रखता था।

सब विद्यायें पढ़नेसे उस बालककी बुद्धि बोधको पा चुकी थी। वह वृद्ध बालक बचपनमें ही जिनपूजा प्रचार आदि उत्तम कर्म, जिनको और बालक समझते भी नहीं, करनेके कारण बाल पकनेके पहले ही स्थविर (बूढ़ा) हो गया। लड़कपनमें भी उसके कार्य अच्छे बुरेके विवेकसे शून्य नहीं होते थे। उससे मद (अहंकार) गलित हो गया था अर्थात् वह मदसे शून्य था, हाथीके भी मद गलित होता है अर्थात् बहा करता है। बालक उन्नत वंशका था, हाथीका भी वंश (पीठकी हड्डी) ऊँचा होता है।

वह विनीत, उन्नति-शाली बालक बड़ी शक्तिसे समर्थ था। उस गजराज सदृश बालकके लिए अंकुश उसके माता-पिता और गुरुजन थे-अर्थात् उन्हींकी शिक्षाके अनुसार वह चलता था। विकारको (अर्थात् रूपान्तर और दूसरे पक्षमें द्वेषभाव) धारण करनेवाली रूप और जवानीकी सम्पदाके साथ विग्रह (शरीर और दूसरे पक्षमें युद्ध) रखने पर भी उस, मनस्वी और आंतरिक शत्रु जो काम क्रोध आदि हैं उन पर जय प्राप्त कर चुकनेवाले, बालकके मनको प्रबल स्वाभाविक व्यसन (शौक या आदतें) नहीं हर सके। महाराज कनकप्रभके और भी बहुत लड़के थे। लेकिन उनकी शोभा उसी जयशील बालकसे हुई। सो ठीक ही है—अनेक पक्षियोंके रहते भी राजहंसके बिना सरोवरकी शोभा नहीं होती।

महाराज कनकप्रभ, एक दिन बड़े महलपर बैठे हुए अपनी राजलक्ष्मीसे भरेपुरे नगरके वैभवको प्रसन्नताके साथ देख रहे। एकाएक उनकी दृष्टि पासहीके एक तालाब पर जो पड़ी तो

उन्होंने देखा-उसमें जल पीकर बहुतसी गऊ और बैल बाहर निकल रहे हैं। बुद्धिमान् राजाने देखा कि उनमेंसे एक बूढ़ा बैल घनी दलदलमें फंसा हुआ उससे बाहर निकलनेमें असमर्थ हो रहा था-उसके प्राणोंपर आबनी थी। यह देखकर राजाको उसी समय संसारसे वैराग्य हो गया।

वे अपने मनमें सोचने लगे कि संसारमें उत्पन्न प्राणियोंका जीवन क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाला है-किन्तु इसमें कोई विस्मयकी वात नहीं है। अद्भुत तो यही है कि जो लोग संसारकी इस असारताको जानते हैं-पण्डित हैं वे भी इसकी ममतामें मोहित हो रहते हैं।

जैसे सपनेमें देखी हुई वस्तु आँख खुलते ही नहीं रहती वैसे ही ये इन्द्रियोंके विषय (रूप, रस, गन्ध आदि) देखते ही देखते गायव हो जानेवाले-धोखा देनेवाले हैं। तथापि ये जड़ बुद्धिवाले संसारके लोग उन्हींको चाहते हैं! अहो, बड़े कष्टकी वात है! इनकी इस मूर्खता या आत्मतत्त्व न जाननेको धिक्कार है।

ये प्राणी देखते हैं कि हरएकके जीवनके साथ मरण और जवानीके साथ बुढ़ापा लगा हुआ है, तथापि वे नासमझ अपने हितको नहीं देखते! जो वीत गया वह तो वीत ही गया। और भविष्यत्के सुखका ठीक ही क्या!

कैसे खेदकी वात है कि यह जीव क्षणभरके वर्तमान सुखके लिए मोहित होकर वृथा परिश्रम करता है-कष्ट उठाता है! जो शीघ्र ही सुख पानेकी इच्छासे अंतमें हितकारी मार्गमें जानेका यत्न करता वह कल्याण (मोक्ष) से इस तरह दूर हो जाता है जैसे कुपथ्य करनेवाला ज्वरका रोगी आरोग्यसे। अग्नि ईन्धनके ढेर जलाकर और सागर सैकड़ों नदियोंका जल पाकर चाहे तृप्त हो जाय, किन्तु पुरुष काम-सुखके भोगसे तृप्त नहीं होते। अहो, संसारके 'कर्म' बड़े ही प्रबल हैं। शरीरसे बढ़कर तो अपना और कोई नहीं हैं, किन्तु वह भी आयु वीत जाने पर प्राणीको

छोड़ देता है। तब बाहरी जो धन, मित्र, बांधव आदि हैं उनके छूट जानेमें विस्मय ही क्या है?

जैसे इष्ट वस्तु (स्त्री-पुत्र आदि) के पानेमें सुख होता है वैसे ही उसके वियोगमें दुःख भी होता है। इसी कारण 'संग' के सुखमें अत्यन्त निस्पृह बुद्धिमान लोग मोक्ष प्राप्त करनेका यत्न करनेमें तत्पर होते हैं। इस संसारमें तीन प्रकारके अज्ञानका अन्धकार छाया हुआ है। एक प्रकारके अज्ञानी मूढ़ कहलाते हैं, वे अपने हित मोक्षके कारणहीको नहीं जानते। दूसरे प्रकारके अज्ञानी संशयी होते हैं, वे शास्त्रमें कहे गये हित (मोक्षके कारण) में सन्देह करते हैं। तीसरे प्रकारके अज्ञानी विपरीत-मति होते हैं, उलटा समझते हैं।

शरीरधारियोंको जिनदेवके वाक्योंके सिवा रोगीको पथ्य औषधिके समान अन्तमें सुखदायक और कुछ नहीं है। किन्तु जो लोग आत्मज्ञानी नहीं हैं उन्हें वे वचन नहीं रुचते। मेरे समान विधिपूर्वक शास्त्र सुनकर और उत्तम साधुओंका संग करके इस संसारकी असारताको जानकर भी और कौन होगा जो सावधान न होगा? अन्तको-वियोगके समय कष्ट देनेवाले इन्द्रि-योंके सुखको मूर्ख लोग ही चाहते हैं, बुद्धिमान पुरुष नहीं। कौन समझदार आदमी शहदभरी तलवारकी धारको चाटना चाहेगा?

जो मनुष्य विरक्त होकर भी दुःख ही जिसका एकमात्र फल है ऐसे प्रेममय अंकुरको नष्ट कर-शरीर, परिग्रह, स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धवोंका राग छोड़कर कल्याणके लिए प्रवृत्त नहीं होता, हाय! वह ठगा गया।

उसी समय राजा कनकप्रभ इस प्रकार विषय-भोगसे विरक्त हो गये, मानों मुक्तिकी दूतीने छिपे कानके पास आकर उनको सावधान कर दिया। उन्होंने उसी समय मुनियों-यतिके मार्गमें मन लगा दिया। सच है, बुद्धिमान लोग 'समय' पाकर उसे

निष्फल नहीं जाने देते। दिनदिन बढ़नेवाली शोभा और ऐश्वर्यसे युक्त अपने पुत्र पद्मनाभसे दूसरे दिन पूछकर और अपने हाथोंसे आँसू-भरे उन नेत्र पोंछकर तथा अपने गुरु अनिन्दित मुनीन्द्र श्रीधरको प्रणाम करके बहुतसे राजाओंके साथ महाराज कनकप्रभने तप करना आरम्भ कर दिया।

पिताके वन चले जानेपर पद्मनाभ राजगद्दीपर बैठे परन्तु पिताके वियोग-दुःखसे वे अत्यन्त व्यथित हुए। सच है, बन्धु-बान्धवोंसे रहित लक्ष्मी आनन्ददायक नहीं होती, अर्थात् अच्छी नहीं लगती। बड़े बुद्धिमान् बूढ़े मन्त्रियोंके बारम्बार समझानेपर कुछ दिनमें पिताके वियोगका शोक कम पड़ जानेपर, बुद्धिमान् पद्मनाभने स्वामीके वियोगसे चित्त और आंसूओंसे नेत्र जिसके व्याकुल हो रहे हैं ऐसी दोनों प्रकारकी प्रकृति (प्रजा और परिवार) को आश्वासित किया-धीरज दिया।

राजा पद्मनाभके विशाल मस्तकके आगे अष्टमीका वक्र चन्द्रसा तिरस्कारको प्राप्त हो गया। यह देखकर राज्यासनपर बैठे हुए पद्मनाभके आगे सिर झुकाकर अन्य राजगणने कुटिलता त्याग दी। सोमप्रभादेवी नामकी रानीके गर्भसे उत्पन्न अपने उदयशाली सुवर्णनाभ नामके पुत्रको युवराज बनाकर राजा पद्मनाभ अनेक प्रकारके सुख भोग करते हुए प्रजा-पालन करने लगे।

इति प्रथमः सर्गः

द्वितीय सर्ग

एक दिन महाराज पद्मनाभ सभामें बैठे थे। इतनेमें द्वार-पालने आकर कहा—महाराज, माली आया है। मालीने प्रणाम करके कहा—महाराज! जोकि देवतोंके रहने योग्य स्थान है और जहां सुगन्धभरी हवा चला करती है ऐसे सचमुच मनको हर-लेनेवाले मनोहर बागमें एक यतीश्वर पधारे हैं। जिस प्रकार सूर्यकी किरणें संसारभरमें व्याप्त और कमलोंको प्रफुल्लित कर देनेवाली है उसी प्रकार उनका श्रीधर यह नाम संसारमें प्रसिद्ध और श्रेष्ठ मुमुक्षु लोगोंको सन्तोष देनेवाला है। उनमें तपस्याका तीव्र तेज और उनका शांत स्वरूप देखनेसे जान पड़ता है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनोंको मिलाकर विधाताने उनकी सृष्टि की है।

धनुषधारीका चित्त मोक्ष (बाण छोड़ने) और सन्धान (बाण चढ़ाने) में लगा होता है, वे भी अपने चित्तको मोक्ष (निर्वाण) के सन्धान (सम्बन्ध) में लगाये हुए हैं। धनुषधारी गुण (धनुषकी डोरी) और मार्गण (बाण) धारण करता है, वे भी शुभ गुणस्थान और मार्गणाओंके परिशीलनमें तत्पर हैं। इस प्रकार वीर धनुषधारीकी तरह उन्होंने सब जीवोंको अभय दे रक्खा है। उनके वाक्योंमें तीनों काल (भूत, भविष्य, वर्तमान) के अनन्त परिणामोंसे युक्त सारा जगत् आईनेमें परछाईं या प्रतिबिम्बकी तरह स्पष्ट दिखाई देता है।

उन मुनिवरकी विस्मित कर देनेवाली बातें विद्वानोंके कानोंमें कुण्डलकी तरह रहती हैं। कुण्डल भी सुवर्णके बने होते हैं, उनकी बातें भी सु-वर्ण अर्थात् सुन्दर अक्षरोंसे बनी हुई हैं। कुण्डलोंमें मुक्ताओं (मोतियों) की अवली जड़ी होती है, उनकी (बातोंमें) भी मुक्तों (मुक्त पुरुषों) की चर्चा रहती है।

उन मुनिवरके गुण निश्चल (कभी न जानेवाले) हैं, तो भी सारे लोकोंमें जाकर व्याप्त (प्रसिद्ध) हो रहे हैं। वे गुण असंख्य होनेपर भी गिने जानेयोग्य (अर्थात् प्रशंसनीय) हैं। (मूलमें गणनीयता शब्द है। उसके दो अर्थ होते हैं। एक तो गिननेयोग्य और दूसरा जो जनसमूहों कर धारण किये जांय अर्थात् जनसमूहको अपना अनुगामी बनानेवाले।) उनके चरणोंकी रज अपने केशोंमें लगाकर—अर्थात् शिरपर धारण करके मनुष्य, देवता और दानव सब सुगन्धित चूर्ण लगानेकी लालसा नहीं रखते।

कोई भास्वान् (अर्थात् सूर्य) के पादों (अर्थात् किरणों) का सदा सेवन नहीं कर सकता, क्योंकि वे असह्य होते हैं; परन्तु मुनिके भास्वान् (तेजसे पूर्ण) होनेपर भी लोग उनके पादों (चरणों) की सेवा करते हैं।

फिर एक विशेषता उनमें यह भी है कि सूर्यमें ताप है, किन्तु वे सब प्रकारके ताप अथवा सन्तापसे बिल्कुल रहित हैं। वे चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हैं। चन्द्रमा कुमुद (अर्थात् कोकाबेली) को विकसित करता है। वे भी सम्पूर्ण कु-मुद (पृथ्वीमण्डलके आनन्द) को विकसित करते हैं।

महाराज! उन महामुनिके प्रभावसे बागमें जो वैभव हुआ है, जो शोभा या चमत्कार देख पड़ता है उसे मैं कहना चाहता हूं—मगर मेरी वाणीमें इतनी शक्ति नहीं है। अर्थात् वह अनिर्वचनीय है। सुनिए, उन मुनिवरके अलौकिक तेजसे विस्मितसे हुए आमके पेड़ोंमें विना वसन्तके ही मंजरी निकल आई है—मानों विस्मयसे उनके रोमाञ्च हो आया है।

उन मुनिके संगसे मानों अशोकके पेड़ शान्तचित्त हो गये हैं और इसीसे वे स्त्रियोंके चरण प्रहारकी कामना न कर आपहीसे खिल गये हैं। (प्रसिद्ध है कि अशोकका पेड़ स्त्रीके चरण

लगा देनेसे फूलता है)। मौलसिरीके वृक्षोंने भी जैसे उनके निकट अणुव्रत ले लिये हैं और इसीसे कामिनियोंके किये मदिराके कुल्लोंकी परवा न करके प्रफुल्लित हो उठे हैं। (मौलसिरीके लिए भी प्रसिद्ध है कि स्त्री यदि उसके ऊपर मदिरा मुखमें लेकर उसका कुल्ला करे तो वह फूलने लगता है।) पृथ्वीमण्डलके तिलकरूप उन श्रेष्ठ मुनिको देखकर प्रसन्नताके मारे तिलकका वृक्ष भी फूल उठा; अपने पक्षको देखनेसे किसे खुशी नहीं होती?

उनके मुखसे धर्मकथा सुनकर ही जैसे चम्पेके वृक्षोंको बोध हो आया। (यहां बोध शब्दके दो अर्थ हैं-एक 'खिल उठना' और दूसरा 'ज्ञान') और इसीसे मानों मलिन (काले और दूसरे पक्षमें पापी) भौंरे उसके पास फटकने भी नहीं पाते। 'चम्पेके पेड़पर भौंरा नहीं जाता)

राजन् उस बागमें एक ओर जैसे ढाकके पेड़ अपने रंगीन फूलोंसे शोभा पाते हैं वैसे ही दूसरी ओर जामुनके पेड़ हरे हरे तोतोंकी शोभासे मनको हर रहे हैं। वनलक्ष्मी मानों उन मुनिको देखकर जयजयका शब्द कर रही है। पक्षियोंकी बोलियाँ ही मानों उस जयजयकारका शब्द है और कुन्द-कुसुमकी कलियां ही उसके दांत दिखाई दे रहे हैं। कुटजके वृक्ष खिल नहीं रहे हैं मानों वे संतोषसे हँस रहे हैं। कुटज-कुसुमोंकी महकसे मस्त हुए मोरोंके दल वर्षाकी आगमन जानकर नाचने लगते हैं। बरसातमें ही कुटज फूलता है। बागमें लगे हुए बाण-वृक्षों सेंठों) की कतार देखनेसे जान पड़ता है कि उन मुनिके भयसे भागे हुए कामदेवके हाथसे बहुतसे बाण पृथ्वीपर गिर गये हैं।

मल्लिकाने सोचा कि शुचि (अषाढ़ मास) के संगसे मेरा विकास होता है; भला इन मुनिसे बढ़कर कौन और शुचि-पवित्र होगा! यही सोचकर मल्लिका भी खिल उठी है। महाराज,

कदम्बके पेड़ोंने सहसा खिले हुए फूलोंको धारण कर मुझे अपने समान बना लिया-अर्थात् मेरे भी खुशीके मारे रोमांच हो आया। (रोमांचकी कदम्बके फूलोंसे उपमा दी जाती है।) महाराज! जिन पशुओंमें परस्पर पैदायशी शत्रुता है वे भी उन मुनिके प्रभावसे स्वाभाविक विरोध छोड़कर वहां बन्धुओं—मित्रोंकी तरह आपससे हिल मिल कर रहते हैं।

इस प्रकार बागके मालीसे मुनिवरके आनेका वृत्तान्त सुनकर महाराज पद्मनाभ उमड़े हुए सागरकी तरह मारे प्रसन्नताके अपने अंगमें फूले नहीं समाते थे। राजाने उसी क्षण उस मालीको सत्कार-सहित अपने बहुमूल्य आभूषण तथा और भी बहुतसे धन-रत्न और पारितोषिक देकर कृतार्थ कर दिया-धनी बना दिया। 'जिनदेवके निकट मुझे उपदेश लेने जाना उचित था वे स्वयं आ गये'—यों ऊंचे स्वरसे बारम्बार कहते हुए राजा अपने आसनसे उठ खड़े हुए, फिर राजाने जिस तरफ वे परम समर्थ मुनि ठहरे हुए थे उसी दिशाकी ओर लक्ष्य करके पृथ्वीमें सिर रखकर मन ही मन उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

इसके बाद राजाकी आज्ञासे पुर भरमें प्रजावर्गको मुनिकी वन्दनाके लिए होनेवाली भारी यात्राकी सूचना देते हुए नगाड़े बजने लगे। पाँच चार पैदल सिपाही आगे करके साधारण भावसे बड़े बड़े प्रतिष्ठित पुरुष उस यात्रामें शरीक होनेके लिए आने लगे।

धीरे धीरे जमा हुए हजारों मनुष्योंकी भीड़से राजद्वार भर गया। पुरवासी, इष्टमित्र, बन्धु-बान्धव, सेना, सामन्त, पुत्र और रानियों सहित राजा पद्मनाभ मुनिके दर्शनोंको चले। राजाके स्वच्छ शरीरकी कान्तिमें हजारों दर्शकोंके नयनोंका प्रतिबिम्ब पड़नेसे वह नंदनवनकी ओर जाते हुए हजार आँखवाले इन्द्रके समान शोभायमान हुए।

लगा देनेसे फूलता है)। मौलसिरीके वृक्षोंने भी जैसे उनके निकट अणुव्रत ले लिये हैं और इसीसे कामिनियोंके किये मदिराके कुल्लोंकी परवा न करके प्रफुल्लित हो रहे हैं। (मौलसिरीके लिए भी प्रसिद्ध है कि स्त्री यदि उसके ऊपर मदिरा मुखमें लेकर उसका कुल्ला करे तो वह फूलने लगता है।) पृथ्वीमण्डलके तिलकरूप उन श्रेष्ठ मुनिको देखकर प्रसन्नताके मारे तिलकका वृक्ष भी फूल उठा; अपने पक्षको देखनेसे किसे खुशी नहीं होती ?

उनके मुखसे धर्मकथा सुनकर ही जैसे चन्दनके वृक्षोंको बोध हो आया। (यहां बोध शब्दके दो अर्थ हैं-एक 'खिल उठना' और दूसरा 'ज्ञान') और इसीसे मानों मलिन (काले और दूसरे पक्षमें पापी) भौंरे उसके पास फटकने भी नहीं पाते। 'चन्दनके पेड़पर भौंरा नहीं जाता)

राजन् उस बागमें एक ओर जैसे ढाकके पेड़ अपने रंगीन फूलोंसे शोभा पाते हैं वैसे ही दूसरी ओर जामुनके पेड़ हरे हरे तोतोंकी शोभासे मनको हर रहे हैं वनलक्ष्मी मानों उन मुनिको देखकर जयजयका शब्द कर रही है। पक्षियोंकी बोलियाँ ही मानों उस जयजयकारका शब्द है और कुन्द-कुसुमकी कलियां ही उसके दांत दिखाई दे रहे हैं। कुटजके वृक्ष खिल नहीं रहे हैं मानों वे संतोषसे हँस रहे हैं। कुटज-कुसुमोंकी महकसे मग्न हुए मोरोंके दल वर्षाकी आगमन जानकर नाचने लगते हैं। बरसातमें ही कुटज फूलता है। बागमें लगे हुए बाण-वृक्षों सेंठों) की कतार देखनेसे ज्ञान पड़ता है कि उन मुनिके भयसे भागे हुए कामदेवके हाथसे बहुतसे बाण पृथ्वीपर गिर गये हैं।

मल्लिकाने सोचा कि शुचि (अषाढ़ मास) के संगसे मेरा विकास होता है; भला इन मुनिसे बढ़कर कौन और शुचि-पवित्र होगा! यही सोचकर मल्लिका भी खिल उठी है। महाराज,

कदम्बके पेडोंने सहसा खिले हुए फूलोंको धारण कर मुझे अपने समान वना लिया—अर्थात् मेरे भी खुशीके मारे रोमांच हो आया। (रोमांचकी कदम्बके फूलोंसे उपमा दी जाती है।) महाराज! जिन पशुओंमें परस्पर पैदायशी शत्रुता है वे भी उन मुनिके प्रभावसे स्वाभाविक विरोध छोड़कर वहां बन्धुओं—मित्रोंकी तरह आपससे हिल मिल कर रहते हैं।

इस प्रकार बागके मालीसे मुनिवरके आनेका वृत्तान्त सुनकर महाराज पद्मनाभ उमड़े हुए सागरकी तरह मारे प्रसन्नताके अपने अंगमें फूले नहीं समाते थे। राजाने उसी क्षण उस मालीको सत्कार-सहित अपने बहुमूल्य आभूषण तथा और भी बहुतसे धन-रत्न और पारितोषिक देकर कृतार्थ कर दिया—धनी वना दिया। 'जिनदेवके निकट मुझे उपदेश लेने जाना उचित था वे स्वयं आ गये'—यों ऊंचे स्वरसे वारम्वार कहते हुए राजा अपने आसनसे उठ खड़े हुए, फिर राजाने जिस तरफ वे परम समर्थ मुनि ठहरे हुए थे उसी दिशाकी ओर लक्ष्य करके पृथ्वीमें सिर रखकर मन ही मन उनके चरणोंमें प्रणाम किया।

इसके बाद राजाकी आज्ञासे पुर भरमें प्रजावर्गको मुनिकी वन्दनाके लिए होनेवाली भारी यात्राकी सूचना देते हुए नगाडे वजने लगे। पाँच चार पैदल सिपाही आगे करके साधारण भावसे वड़े वडे प्रतिष्ठित पुरुष उस यात्रामें शरीक होनेके लिए आने लगे।

धीरे धीरे जमा हुए हजारों मनुष्योंकी भीड़से राजद्वार भर गया। पुरवासी, इष्टमित्र, वन्धु-बान्धव, सेना, सामन्त, पुत्र और रानियों सहित राजा पद्मनाभ मुनिके दर्शनोंको चले। राजाके स्वच्छ शरीरकी कान्तिमें हजारों दर्शकोंके नयनोंका प्रतिबिम्ब पड़नेसे वह नंदनवनकी ओर जाते हुए हजार आँखवाले इन्द्रके समान शोभायमान हुए।

क्षण भरमें अपने ही समान उस वनको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए। राजा भी अशोक अर्थात् शोक रहित मनुष्यों सहित थे और उनको चारों ओरसे पुन्नाग अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष घेरे हुए थे। और वह वन भी अशोक और पुन्नागके वृक्षोंसे परिपूर्ण था। वनलक्ष्मीकी श्वासके समान मन्द सुगन्ध पवनने राजा पद्मनाभकी राह चलनेसे उत्पन्न हुई थकानको वहां पहुंचते ही मिटा दिया।

सेनापतिको बागके बाहर ही सेना रोकनेकी आज्ञा देकर और बड़े भारी गजराजके ऊपरसे उतर कर पद्मनाभने बागके भीतर प्रवेश किया। राजाने चामर छत्र आदि राजसी ठाटबाट पहले ही उतार दिया, उसके बाद वे शिष्यकी तरह नम्रभावसे मुनिराजके निकट पहुंचे।

राजाने देखा कि नीलमणिकी शिलापर वे मुनिराज इस तरह विराजमान हैं जैसे शरदऋतुके उज्ज्वल नील आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित हो। राजाने तीन बार प्रदक्षिणा दी, तीन बार प्रणाम किया और तीन बार जयजयकार किया। इस प्रकार तीन बार सब प्रकारका सत्कार करके वे मुनिदेवके आगे बैठ गये। राजा हाथ जोड़े हुए बैठे थे।

मुनि-चन्द्रके आगे कर-कमलोंका मुकुलित (कली) हो जाना ठीक ही था। जिनेन्द्र और सुरेन्द्रसे जो किसी समय पृथ्वी-मण्डलकी शोभा हुई थी वही शोभा आज नरेन्द्र और मुनीन्द्रके समागमसे देख पड़ी। 'जयजय' का भारी कोलाहल जब धीमा पड़ा तब मुनिवरसे आशीर्वाद प्राप्त करके राजा पद्मनाभने कहा—

"स्वामी! यह जगत् (ज्ञान) प्रकाशसे शून्य है, कल्याणकी राह नहीं सूझती; इसमें अच्छा (मोक्ष) मार्ग दिखलानेवाले आप हमें दीपकके समान दिखलाई दिये हैं। आपकी दिव्यज्ञानमयी दृष्टि सर्वतोगामिनी है। आकाश-पुष्प ऐसी असंभव बातके सिवा

इस चराचर संसारमें ऐसी कोई बात या वस्तु नहीं है जो आपसे छिपी हो।

हे जगत्भरके स्वामी! इसी कारण मैं आपसे तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं, क्योंकि मेरी समझमें गुरुसे उपदेश लिये विना ज्ञान (जानकारी) कच्चा ही रहता है। भगवन्! कोई कोई नास्तिक-(चार्वाक) मतावलम्बी लोग कहते हैं कि प्रमाणसे सिद्ध होनेवाला 'जीव' नामका कोई पदार्थ ही नहीं है।

अतएव जीवके आश्रयसे सिद्ध होनेवाला अजीव पदार्थ भी नहीं है। क्योंकि जीवके विना अजीव पदार्थ ही कैसे हो सकता है? दोनों परस्पर, एक दूसरेकी अपेक्षा रखते हैं। ये दोनों स्थूल और सूक्ष्म धर्मकी तरह एक दूसरेके सहारे हैं।

इसके सिवा अगर जीव नहीं है तो जीवके धर्म जो 'बन्धन' और 'मोक्ष' आदिक हैं वे ही कैसे हो सकते हैं? धर्मकी स्थिति धर्मी (जिसका वह धर्म है उस) में ही होती है।

इस तरह विचार करने पर तत्त्वके सम्बन्धमें गड़बड़ हो जाती है, तत्त्व छिपा ही रहता है अर्थात् तत्त्वका स्वरूप ही उपप्लुत है। उसके विषयमें जितना ही विचार बढ़ाओ उतना ही वह पुराने गले कपड़ेकी तरह टुकड़े२ (खण्डित) होता जाता है।

"कुछ ऐसे हैं जो अनेक मतोंमें उलझे हुए हैं; वे जीवको स्वीकार करके भी उसके धर्म जो 'बन्धन' 'मोक्ष' आदि हैं उनके विषयमें मिथ्या वादविवाद करते हैं। सांख्य मतवाले लोग जीवको त्रिकाल (भूत, भविष्य, वर्तमान)में व्याप्त और अविनाशी कहते हैं। मीमांसा शास्त्रके पंडित कहते हैं कि जीव (अपने सुखदुःख आदिका) कर्ता नहीं है। नैयायिक लोग उसे जड़ अर्थात् अज्ञान-मय बतलाते हैं। बौद्ध मतवाले जीवको विज्ञानमय अद्वैत स्वरूप बतलाते हैं। इस प्रकारके अनेक सिद्धान्तोंके अगम्य घने जंगलमें भटकता हुआ पुरुष किस मार्गमें चले? उसकी तो दशा

उसी चकोरीकी ऐसी होती है जिसे किसी दिशाका पता न हो।"

राजा पद्मनाभ इस प्रकार कहे अर्थवाले वचन कहकर चुप हो रहे। इसके बाद मुनिराजने गम्भीर वाणीसे कहा—

"राजन्! तुमने ऐसी अच्छी चर्चा छेड़कर इस कथानकको सच कर दिखाया कि समर्थ पुण्यात्मा लोगोंका ज्ञान बुद्धिके आगे आगे चलता है अर्थात् पुण्यात्माओंका ज्ञान बुद्धिसे अधिक बढ़ा चढ़ा होता है। जीव और अजीवके विषयमें मैं तुमको ऐसी बातें बताता हूं जिनसे चार्वाक आदि मिथ्यावादियोंके लगाये सब दोषोंका खण्डन हो जाता है। चार्वाकका यह कहना कि जीव है ही नहीं, प्रत्यक्ष अनुमान आदि प्रमाणोंसे खण्डित हो जाता है।

इस पक्षको सिद्ध करनेके लिये कारण-निर्देशकी चेष्टा करके कौन अपनी हंसी करावेगा? अर्थात् जीवके नास्तित्व सिद्ध करनेमें जो अनुपलब्धि हेतु बताता सो ठीक नहीं है; क्योंकि हर एक प्राणीमें जीवके होनेका प्रमाण यही है कि वह अपनेको स्वसंवेदन ज्ञानके द्वारा सुखी दुखी आदि मानता है।

इसलिए सुख, दुख, राग-द्वेष आदि भावोंको प्राप्त 'जीव' पदार्थ प्रत्यक्ष जान पड़ता है। दूसरे न्यायका यह नियम है कि धर्मी वह होता है जो प्रमाणसे सिद्ध है। इस नियमके अनुसार चार्वाकके किये हुये इस अनुमानका, कि 'जीव' कोई पदार्थ नहीं है, क्योंकि उसकी उपलब्धि नहीं होती, जीवनरूप पक्ष (धर्मी) प्रत्यक्षादि प्रमाणसे सिद्ध ठहरता है।

जब जीव पदार्थ प्रमाणसे सिद्ध है तब उसका नास्तित्व सिद्ध करनेके लिए व्यर्थ हेतुका प्रयोग कर अपनी हँसी कराना है। यह कहना ठीक नहीं कि ज्ञान कलश आदिकी तरह ज्ञेय होनेसे अपने स्वरूपको नहीं जानता किन्तु अन्य पदार्थोंको जानता है। अर्थात् जैसे कलशको अपना ज्ञान नहीं होता पर औरोंको

उसका ज्ञान होता है। इसही तरह ज्ञानको स्वयं अपने रूपका निश्चय नहीं होता किन्तु उसके रूपका निश्चय दूसरा उत्तरकालीन ज्ञान करता है, ऐसा नहीं है, क्योंकि अपने आत्मामें भी क्रिया देख पड़ती है, जैसे दीपक आदिमें अपनेको प्रकाशित करना।

तात्पर्य यह कि जैसे दीपक अपनेको प्रकाशित करके ही अन्य विषयोंको प्रकाशित करता है ऐसे ही ज्ञान भी अपनेको जानकर ही अन्य विषयों या भावोंको जानता है। जो ज्ञान अपनेको नहीं जानता उसकी प्रवृत्ति अन्य विषयोंमें होही नहीं सकती। क्योंकि पूर्वपूर्वके ज्ञेयरूप ज्ञानका निश्चय करनेके लिए जो उत्तरोत्तर ज्ञान होंगे वे भी ज्ञेय ही होंगे।

इस लिए जब वे ज्ञानस्वरूपके निश्चय करनेमें ही चरितार्थ हो जायंगे तब उनकी प्रवृत्ति दूसरे विषयमें नहीं हो सकती। दूसरी बात यह है कि यहांपर जो ज्ञान अज्ञात है वह ज्ञान प्रथम-ज्ञानका बोध करानेवाला नहीं हो सकता और अगर ऐसा नहीं मानते तो अनन्त अनवस्था दोष रूपी लता फैलकर सारे आकाशको घेर लेगी। इस कारण पदार्थका ज्ञान अप्रत्यक्ष ठहरा और उसके अप्रत्यक्ष होनेपर पदार्थकी भी वही गति होगी। और यदि अप्रत्यक्ष ज्ञानसे भी विषयका निश्चय अङ्गीकार करते हो तो दूसरेका जाना हुआ विषय (घट-पट आदि) भी अपनेको विदित हो सकता है।

इस प्रकार स्याद्वादमतमें जीव अपने शरीरमें अपने ज्ञानसे प्रत्यक्ष सिद्ध है और पराये शरीरमें अनुमानसे परोक्ष-सिद्ध है। जब इस युक्तिसे स्वानुभवरूप प्रत्यक्ष प्रमाणसे जीव सिद्ध है तब नास्तिकोंके इस कथनका खण्डन हो जाता है कि जीव प्रत्यक्ष-सिद्ध पदार्थ नहीं है।

यदि इस पर यह सन्देह हो कि ":गर्भमें आनेसे लेकर मरण-पर्यन्त स्वानुभव-रूप प्रमाणसे जीवका अस्तित्व सिद्ध

जो है वह उपकारी नहीं होता, और सब प्रकारके सम्बन्धोंकी स्थिति उपकारके आधारपर ही पाई जाती है। इसकारण समवायसम्बन्धकी कल्पना भी युक्त नहीं है।

और यदि नित्यको उपकारित्व मानते हो तो यह प्रश्न होता है कि उससे उपकार भिन्न है या अभिन्न? अगर भिन्न मानते हो तो सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता। यदि किसी अन्य उपकारकी अपेक्षा करके सम्बन्ध स्थापित करते हो तो 'अनवस्थिति' दोष आता है।

इसलिए जीव सुख-दुःख आदि पर्यायोंसे अभिन्न है। अतएव वह परिणामी अर्थात् पहले आकारको छोड़कर दूसरे आकारको प्राप्त होनेवाला है। जबकि जीव परिणामी ठहरा तब उसकी कूटस्थ नित्यताका पक्ष किस तरह ठहर सकता है? अतएव वे लोग भी जो जीवको जड़ बतलाते हैं निरस्त कर दिये गये। क्योंकि चेतन रूप (ज्ञानरूप) परिणाम और सुख-दुःख आदि परिणामोंमें तथा जीवमें एकता अर्थात् अभिन्नता संभव है।

यह कहना भी ठीक नहीं कि जीव-पदार्थ पुण्य-पाप आदि कर्मोंका कर्ता नहीं है। क्योंकि ऐसा कहनेसे बन्धनाभाव आदि दोष उपस्थित होते हैं, अर्थात् यदि वह कर्ता नहीं है तो उसे बन्धन भी न होना चाहिए। जीव, अच्छे या बुरे कर्मोंको किये बिना बन्धनको कैसे प्राप्त हो सकता है? सांख्यमतके लोग आत्माको भोग करनेवाला स्वयं कहते हैं।

इसकारण भोगरूपी क्रियाका कर्तृत्व जीवमें बताकर भी उसी (अर्थात् स्वतन्त्रता) को न माननेवाले सांख्य मतावलम्बी क्यों नहीं लज्जित होते? तात्पर्य यह कि कर्तृत्वके बिना भोक्ता होना पूर्वापर विरुद्ध बात है। कदाचित् यह कहो कि प्रधानके-'प्रकृतिके' बन्ध आदि होता है सो यह कहना भी ठीक नहीं

है, क्योंकि प्रकृति अचेतन है और अचेतनमें बन्धन आदिकी कल्पना युक्तिसिद्ध नहीं है।

इस कारण जीवके सम्बन्धमें अकर्तृत्वकी कल्पना अत्यन्त पाप है। कुछ लोग कहते हैं कि जीव केवल चित्त-संतति मात्र है। यह कल्पना भी युक्ति-विरुद्ध है। क्योंकि संतानीके विना कोई संतति हो नहीं सकती। और यदि सन्तानीके विना भी सन्ततिका नित्यत्व अङ्गीकार करो तो सबको क्षणिक माननेवालों (बौद्धों) के पक्षको प्रतिज्ञा-हानिका दोष बाधा पहुंचाता है। यदि सन्ततिका क्षणिक धर्मत्व भी मान लें तो जीवके कृतनाश (किये हुए पाप आदिका नाश) आदि सब सन्तानीके पक्षमें प्राप्त दोष उसे (सन्ततिको) भी प्राप्त होते हैं। और यदि जीवको व्यापक मानकर कहो कि उसमें कृतनाश आदि दोषोंका अभाव है तो जीवकी व्यापकता घटित नहीं होती-सिद्ध नहीं होती। क्योंकि स्वानुभवसे जिसका रूप जाना गया है वह जीव देहके बाहर नहीं देख पड़ता। अगर वह व्यापक है तो देहके बाहर भी उसे देख पड़ना चाहिए।

इसलिए आदि और अन्तसे रहित, जितना बड़ा देह है उतना बड़ा-अर्थात् देहभरमें व्याप्त, नित्यरूप, पुण्य पापका कर्ता, पुण्यपापजनित सुखदुःखका भोग करनेवाला, चैतन्यरूप जीव प्रत्यक्ष प्रमाणसे सर्वथा सिद्ध है।

इस प्रकार जीवके सिद्ध होनेपर जीवतत्त्वकी अपेक्षा रखनेवाले जो अजीव आदिक पदार्थ हैं वे भी अब अच्छी तरह प्रमाणसे सर्वथा सिद्ध हो गये। और अजीवादिक पदार्थोंके सिद्ध होनेसे तत्त्वोपप्लववादीका यह कहना खण्डित हो गया कि तत्त्वका स्वरूप उपप्लुत ही है।

मीमांसा शास्त्रके अनुगामी लोग जीव-अजीव आदि छह वस्तुओंको स्वीकार करके भी मोक्ष अर्थात् परमनिर्वाणमें विवाद करते हैं—

कहते हैं कि जीवकी मुक्ति ही नहीं होती। उनके पीछे भी अनुमानकी बाधा लगी हुई है। क्योंकि कर्मोंका क्षय ही मोक्ष है और वह (कर्मोंका क्षय) अनुमानसे सिद्ध है।

किसी पुरुष (जीव)में सब आवृत्तियों अर्थात् आवरणोंका क्षय वर्तमान है–ऐसा अनुमान किया जाता है। अगर ऐसा नहीं मानते तो आवृत्ति-क्षयरूप कारणका कार्य जो सर्वज्ञता है उसका होना सिद्ध नहीं हो सकता। किन्तु उधर कोई पुरुष सर्वज्ञ नहीं है, यह बात सिद्ध नहीं होती; क्योंकि पुरुष सर्वज्ञ है–इस मतको बाधा पहुंचानेवाला कोई प्रमाण नहीं है। और अगर कोई बाधक प्रमाण न हो तो अनुमान द्वारा वस्तुकी सिद्धि हो जाती है। देखो, जीवकी सर्वज्ञतामें बाधा पहुंचानेवाला प्रत्यक्ष प्रमाण तो हो ही नहीं सकता।

क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण इन्द्रिजन्य है इस कारण जो विषय इन्द्रियोंसे अतीत है उसमें प्रत्यक्ष प्रमाणसे न विधि ही हो सकती है और न निषेध ही। प्रत्यक्षकी तरह अनुमान भी किसी मुक्त जीवकी सर्वज्ञताको असिद्ध नहीं कर सकता। क्योंकि हस्त-पद-विशिष्ट पुरुषत्व आदि जो सर्वज्ञताके अभावको सिद्ध करनेवाले साधक चिह्न हैं वे एकान्तिक अर्थात् निश्चिन्त नहीं होते। जैसे, पुरुषत्वके रहते भी किसी किसी पुरुषमें वेदका अर्थ जाननेकी विशेषता होती है वैसे ही किसी किसी जीवकी सर्वज्ञता–सब जाननेकी शक्ति–भी अनुमानसिद्ध है।

मीमांसाशास्त्रके अनुयायी इसपर कहते हैं कि जैसे किसी देश या किसी समयमें किसी गधेके सींग नहीं होते वैसे ही हस्त-पद-विशिष्ट कोई पुरुष भी किसी देश या किसी समयमें सर्वज्ञ नहीं होता। किन्तु यह उनका उपमान प्रमाण भी इष्टविरोध दोषसे दूषित है अतएव असंगत है। यदि ऐसा मानोगे तो हस्त-पद-विशिष्ट पुरुषरूप आकाशगामी विद्याधर आदिका आकाशमें

चलना भी असिद्ध हो जायगा। इसलिए किसी पुरुष विशेषमें सर्वज्ञता सिद्ध है और वैसे ही किसी गर्दभविशेषके सींग होना भी अंगीकृत है। अर्थापत्ति-प्रमाणसे भी सर्वज्ञताका अभाव नहीं सिद्ध होता।

क्योंकि यदि सर्वज्ञभाव नहीं मानते तो सर्वज्ञभावका समर्थन कौन करेगा, अर्थात् यदि सर्वज्ञ था ही नहीं तो उसका अभाव कैसा ? किसी पुरुषके बनाये हुए या अपौरुषेय शास्त्रके प्रमाणसे भी जीवकी सर्वज्ञताको बाधा नहीं पहुंचती। क्योंकि शास्त्रको यदि अपौरुषेय कहते हो तो सर्वथा असम्भव है; बिना किसी पुरुषके शास्त्रकी कल्पना होना हो ही नहीं सकती।

यदि कहो कि किसने शास्त्र बनाये यह स्मरण नहीं, तो इससे शास्त्रके कर्ताका अभाव नहीं सिद्ध होता। क्योंकि जिन वाक्योंके कर्ताका हमको ज्ञान नहीं है ऐसे वाक्योंसे व्यभिचार होता है तथा इस प्रकारकी कोई विशेषता उनमें नहीं है जो कि आगमको अपौरुषेय मानने पर ही सम्भव हो और पौरुषेय मानने पर सम्भव न हो।

यदि कहो कि अतीन्द्रिय विषयका निरूपण आगमको अपौरुषेय माने बिना सम्भव नहीं, सो यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि आगमको सर्वज्ञोक्त माननेपर भी अतीन्द्रिय पदार्थका निरूपण हो सकता है। इस कारण विवादविषयको प्राप्त शास्त्रका कोई कर्ता अवश्य है।

यह अनुमान होता है; कि जिनका कर्ता देखनेमें आता है उनही शास्त्रोंके तुल्य ये भी हैं। इसी लिए जैसे अकलंक आदि शास्त्रोंके कर्ता देखे जाते हैं वैसे ही उनका भी कोई कर्ता है। इस प्रकार जीवकी सर्वज्ञताको बाधा पहुंचानेवाला अपौरुषेय शास्त्र नहीं है। और जो पुरुषप्रोक्त शास्त्र हैं उनके दो भेद हैं—(१) सर्वज्ञ पुरुषके बनाये और (२) असर्वज्ञ पुरुषके बनाये।

जो असर्वज्ञ पुरुषका बनाया शास्त्र है उसका प्रमाण तो इन्द्रियातीत विषयमें माना ही नहीं जा सकता। और जो सर्वज्ञ पुरुषके बनाये हैं वे जीवकी सर्वज्ञताका विरोध नहीं, बल्कि प्रतिपादन ही करते हैं। प्रत्युत अनुमानको सर्वज्ञके विषयमें साधक होना सिद्ध है, इसलिए प्रमाणपञ्चकका अभाव भी सर्वज्ञताको बाधा नहीं पहुंचाता।

इस प्रकार छहों प्रमाणोंसे सर्वज्ञता असिद्ध नहीं होती, इस कारण सर्वज्ञ कोई है इस प्रकारका शास्त्रसे उत्पन्न निश्चय ही इसका प्रमाण है; क्योंकि उसको बाधा पहुंचानेवाला कोई प्रमाण नहीं है। जिसका बाधक प्रमाण नहीं होता वह प्रमाण होता है जैसे इन्द्रियजन्य ज्ञान।

प्रत्यक्ष जब अनुमानसे सर्वज्ञ जीवका होना सिद्ध हुआ तब रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) के द्वारा होनेवाला परम निर्वाण भी जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर और निर्जरा इन छह तत्त्वोंके साथ सिद्ध हो गया।

इसप्रकार तत्त्व-विषयको बतलानेवाले चुम्बक-सदृश वचनोंसे यतिराजने शल्य-तुल्य खटकनेवाले राजाके सन्देहको उनके हृदयसे खींच लिया। विद्वान् मुनिके कथनको 'भगवन्, जैसा आपने कहा वैसा ही है' यों स्वीकार करके प्रसन्न चित्त राजाने उनसे अपने हो चुके और आगे होनेवाले जन्मोंका वृत्तांत पूछा। तब मुनिराजने राजा पद्मनाभसे उनके जन्मोंका सिलसिलेवार वृत्तांत कहना आरम्भ किया और वहांपर उपस्थित श्रेष्ठ भव्य मण्डली उसे मन लगाकर सुनने लगी।

मुनिवर बोले—राजन्! तीसरे पुष्करार्द्ध द्वीपमें पूर्वमन्दर नाम एक पर्वत है। जिसके सुन्दर लतामण्डपोंमें किन्नरगण क्रीड़ा किया करते हैं। उसके पश्चिम-विदेहक्षेत्रमें सीतोदा नाम नदीके उत्तर-तटको अलंकृत किये हुए सुगन्धि नाम एक देश है। जिसके

प्रदेश, ऊंचे और बड़े दण्डवाले पिण्डाकार छत्र-सदृश सुपारीके पेड़ोंसे राजाओंके समान शोभायमान हैं।

वह सुगन्धि देश सब दिशाओंको सब तरफ अपने पुष्पोंके सुवाससे सुगन्धित करता हुआ अपने नामको सार्थक कर रहा है। उस देशमें विना जोते बोये ही खूब अन्न उत्पन्न होता है। वहां दुर्भिक्ष नहीं पड़ता और वहाँ ईतिकी बाधा नहीं है। वहां रहनेवाले लोग सदा आनन्द पाते हुए मुक्त पुरुषसे रहते हैं। वहांके खेत अन्नके ढेरोंसे परिपूर्ण रहते हैं।

इसप्रकार वह देश सब ओर सुखी और सम्पन्न देख पड़ता है। परलोकके कर्मोंमें लगे हुए वहांके लोग धर्मके लिए धनोपार्जन करते हैं और वंश चलानेके लिए कामभोग करते हैं। उनको धन कमाने या कामभोग करनेका व्यसन (लत) नहीं है।

वहांके पथिकजन निरन्तर लगे हुए बागोंमें विश्राम करके अपनी थकावट दूर करते हैं और मार्गको घरके आंगनके समान समझते हैं। वह देश सदा चितचाही वस्तुयें अपने निवासियोंको देकर कल्पवृक्षोंसे परिपूर्ण पृथ्वी अर्थात् (भोगभूमि) को जैसे जीतनेकी इच्छा करता है। वहां स्वभावसे ही स्थिर न रहनेवाली चंचला (बिजली) ही चंचल देख पड़ती है; लक्ष्मी नहीं।

ऐसे ही वहां वर्षाकालके मेघ ही काले देख पड़ते हैं, लोगोंके चरित्र कलुषित (बुरे) नहीं हैं। उनके गांवोंमें कहीं गऊ-बछड़े और बैलोंके शब्द सुन पड़ते हैं; कहीं ईख पेरनेके यंत्र (कोल्हू) चल रहे हैं, उनके शब्द सुन पड़ते हैं; कहीं मस्त मयूर बोल रहे हैं; जिससे वे बड़े ही सुन्दर जान पड़ते हैं। नहाती हुई स्त्रियोंके झुण्डके कुच-कुंकुम धुल धुल कर बहनेसे वहांकी नदियां लाल वस्त्र धारण किये सी जान पड़ती हैं।

उस देशमें बड़ा वैभवशाली एक 'श्रीपुर' नामका पुर है; जो वहांके रहनेवालोंके पुण्यसे उत्पन्न दूसरी देवतोंकी पुरी जान

पड़ता है। वहां बने हुए ऊँचे ऊँचे महलोंकी चोटियोंपर जड़ी हुई रत्न-शिलाओंकी कांतिसे सूर्य चन्द्रमा आदि ज्योतिर्गणकी कांति सदैव छिपी रहती है।

वहांके महलोंकी दीवारें इतनी ऊँची हैं कि रहनेवाले लोग सूर्य और चन्द्रमाका उदय नहीं देख पाते; वे सूर्योदयमें सूर्यकांत मणियोंसे निकलनेवाली अग्नि और चन्द्रोदयमें चन्द्रकांत मणियोंका पसीजना देखकर ही सूर्य और चन्द्रके उदयका अनुमान कर लेते हैं। महलोंकी चोटियोंपर लगी हुई पद्मराग-शिलाओंकी कांति पड़नेसे, लाल हुए आकाशको देखकर असमय भी, वहांके लोग संध्याकालका धोखा खा जाते हैं।

सवेरेके समय ऊंचे महलोंकी अंटियांपर धीरे-धीरे चढ़कर सूर्यदेव पूर्ण कलशके समान शोभायमान होते हैं। वहां नित्य रातको दीवारकी चोटीके पास आये हुए तारागण दीपोत्सव (दिवाली) का भ्रम पैदा करते हैं। चारों तरफ जैसे नक्षत्रोंको धारण किए हुए वहांकी चहारदीवारी स्वर्ग लोकको देखनेके लिए उत्कंठित सी देख पड़ती है।

जैसे राजा मानमें उन्नत होता है वैसे ही वहांके महल भी मान (परिमाण) में उन्नत (ऊंचे) हैं। जैसे राजा महाभोग-शाली होते हैं वैसे ही वहांके महल महाभोग (बड़े विस्तार) से युक्त हैं। जैसे राजा मत्तवारण (मस्त हाथी) रखते हैं वैसे ही वहांके महलोंमें मत्तवारण (बरामदे) शोभायमान हैं। जैसे राजाओंके बहुत भूमि होती है वैसे ही उनमें भी बहुत-सी भूमि है।

इस प्रकार वहांके महल राजोंके समान हो रहे हैं। उस पुरके चारों ओर खुदी हुई जलभरी खाईकी अपूर्व शोभा है। कहीं पर कमलकुसुमोंसे झड़कर गिरे हुए घने परागसे जल ढक-

गया है जिससे खाईका उतना अंश सुवर्ण निर्मित भूखण्डकी सी शोभा धारण किये हुए है। कहीं पर किनारे लगे हुए वृक्षोंका प्रतिविम्ब उसके जलमें पड़ रहा है; जिसे देखकर पेड़ों पर बैठे हुए पक्षियोंको पाताल-वाटिकाका भ्रम हुआ करता है।

कहींपर काश-सदृश पंखोंको हिलाते हुए हंसोंकी शोभा देखनेसे जान पड़ता है कि उस खाईके जलसे उठे हुए फेनके पुञ्ज हवासे हिल रहे हैं। कहींपर, किनारे लगे हुए घने वृक्षोंके कारण जलमें बिल्कुल हवा नहीं लगती, वह निश्चल हो रहा है। भोली भाली थोड़ी अवस्थाकी स्त्रियोंको वह स्थिर स्वच्छ जल देखनेसे बिल्लोरके बने हुए फर्शका धोखा हुआ करता है।

स्नान करती हुई पुरनारियोंके केशपाशसे गिरे हुए चमेलीके फूल बहनेसे वह खाई सर्वत्र तारागण-मण्डित आकाशसी शोभायमान देख पड़ती है। उस पुरके निवासियोंकी बुद्धि तीक्ष्ण है; वचन नहीं। स्त्रियोंके कुचोंमें कठिनता पाई जाती है; हृदयोंकी नहीं। भंग (टेढ़ापन) स्त्रियोंके केशोंमें पाया जाता है; तपस्वियोंमें व्रत-भंग नहीं पाया जाता। कुकविताओंमें ही रस-भंग दोष देख पड़ता है; पति-पत्नीमें नहीं। वि-रोध (पक्षियोंको बन्दकर रखना) पिंजड़ोंमें ही होता है; महात्माओंके मनोंमें विरोध (वैर-विरोध) नहीं पाया जाता।

स्त्रियोंकी नाभिमें ही नीचापन (गहराई) पाया जाता है; गृहस्थोंके आचरणोंमें नहीं। चहारदीवारी, खाई और अन्तर्वेदिका-ओंसे घिरा हुआ वह श्रीपुर तीन मण्डलोंसे घिरे हुए चन्द्रमण्डलके समान शोभायमान है। वहां बनिये और तर्कशास्त्रके पण्डित लोग दोनों ही, लोक-प्रसिद्ध, अविरोधी और व्यभिचार-दोष-रहित मान (तौलमाप और दूसरे पक्षमें प्रमाण) से वस्तुओं

अथवा चन्द्रमा कुछ तेजस्वी हो तो प्रजाप्रिय और तेजस्वी राजा श्रीषेणकी उपमा उनसे दी जा सकती है।

चन्द्रमा जैसे निर्मल कलासे सम्बन्धको प्राप्त होता है उसी प्रकार उन सकल जन मनोहर राजाका विवाह सम्बन्ध श्रीकान्ता नाम रानीसे हुआ। वह रानी कमल निवासिनी लक्ष्मीके समान सुन्दरी और राजाके शरीरसे अभिन्न अर्थात् अर्धांगिनी थी; अथवा यों कहो कि वे दोनों 'एक प्राण दो-देह' थे।

प्रशंसनीय और शरदऋतुके स्वच्छ चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल सारे पातिव्रत्य आदि गुण मानों अपने शरीरको अत्यन्त उज्ज्वल करनेके लिए शरीरकान्ति शोभा-रूपी निर्मल जलमें नहा-कर, उस सुन्दरीके शरीरमें इकट्ठे हुए थे। लक्ष्मीने सारे संसारकी सुन्दरियोंमें शील, क्षमा, विनय और रूप गुणके कारण पूजनीया जो श्रीकान्ता रानी हैं उन्हें अपने स्वामी श्रीषेणके मनको रमानेमें सहायक रूपसे सादर स्वयं स्वीकार किया।

देवसभामें गाया गया जो त्रिभुवनमें व्याप्त श्रीकान्ता रानीके रूपका चन्द्रमाके समान स्वच्छ यश है उसे सुनकर उनका सौन्दर्य पानेकी अभिलाषा करके तप करनेके लिए देवोंकी स्त्रियां भी स्वर्गसे पृथ्वीपर आनेकी इच्छा रखती हैं। सूर्यकी सवेरेके समयकी द्युतिके समान श्रीकान्ता रानी, चन्द्रमाकी कान्तिको परास्त किये हुए थी। सूर्यकी कान्ति दोषा अर्थात् रात्रिके सम्बन्धसे रहित होती है, रानी भी दोषके सम्बन्धसे रहित थी।

सूर्यकी कान्ति तम 'अन्धकार' से रहित होती है, रानी भी तम 'अज्ञान या तमोगुण' से शून्य थी। वह भी रम्य होती है, रानी भी रम्य थी। सूर्यकी कान्ति कमलोंको प्रफुल्लित करती है, रानीने भी अपने बन्धु-बान्धवोंको प्रफुल्लित कर रखा था। राजा श्रीषेणका यश चन्द्रमाके उज्ज्वल और दिशाओंको प्रकाशित किये हुए था।

वे राजा धर्म और अर्थको बाधा न पहुंचने देकर उस रानीके साथ मान करने और मनानेके सुखका अनुभव करते हुए बहुत दिनों तक आनन्द भोग करते रहे।

किन्नरगण जिनकी कीर्तिको गाते हैं ऐसे राजा श्रीषेण एक दिन सब कामोंसे निपटकर अन्तःपुरमें पधारे तो उन्होंने देखा कि उनकी प्यारी रानी हथेली पर कपोल रक्खे आँखोंमें आँसू भरे हुए बैठी है। रानीकी यह दशा देखकर उसके समान ही दुःख राजाको भी हुआ। मानों रानीके दुःखको बंटानेके लिए ही घबराये हुए राजाने शीघ्रताके साथ रानीसे ऐसे भारी शोकका कारण पूछा।

राजाने कहा–हे कमलनयने! मैंने बड़े बड़े पराक्रमी शत्रुओंको परास्त कर रक्खा है और मेरा प्रबल प्रताप पृथ्वीमण्डल पर फैला हुआ है। ऐसे मुझ जीवितेश्वरके जीवित रहते किसी दूसरेके द्वारा तुम्हारा अपमान होना तो किसी प्रकार संभव ही नहीं है। और हे मत्तगजगामिनि! संतापका मुख्य मित्र जो तुम्हारा विरह है उसे मैं क्षणभर भी नहीं सह सकता। इस कारण तुम निश्चय समझो कि मुझसे भी प्रणयभंगकी संभावना नहीं है।

हे चन्द्रमुखी! तुम्हारी सखियाँ भी तुम्हारे चरणोंकी दासी हैं, उनका जीवन तुम्हारे आधीन है, वे सर्वथा तुम्हें प्रसन्न रखनेमें तत्पर रहती हैं, वे सरल हैं, उनका शरीर अर्थात् हृदय तुम्हारे हृदयसे भिन्न नहीं है। ऐसी सखियोंसे कोई कपट या अपराध होना भी असंभव ही है।

हे तन्वि! तुम्हारे भृत्यवर्ग और बान्धवगण तुम्हारी इच्छाके अनुसार ही सब काम करते हैं; अंतःपुरकी सब स्त्रियाँ दासीकी तरह तुम्हारी आज्ञाका पालन करती हैं–वे तुम्हारी टेढ़ी भौंहको देख भी नहीं सकती।

ऐसी दशामें यह भी अनुमान नहीं किया जा सकता कि किसीने तुम्हारी आज्ञा न मानी होगी। हे देवि! तुम्हारे दुःखके इतने ही कारण हो सकते हैं। बतलाओ, इनमेंसे तुम्हारे इस शोकका कारण क्या है? इस प्रकार राजाके पूछने पर लज्जाके मारे रानीने कुछ कहा तो नहीं, किन्तु वे अपनी बाल्यकालकी सखीके मुखकी तरफ देखने लगीं।

दूसरेके इशारेको समझनेवाली उस रानीकी सखीने लज्जाके कारण मीठी और धीमी आवाजमें यों कहा कि, हां देव, आपका कहना सच है। आपके भारी प्रेमको पाकर परम पूजनीया हमारी महारानीका तिरस्कार या अपमान होना सर्वथा असंभव ही है। महाराज! हमारी महारानीके इस विषादका कारण कुछ और ही है। दैव अर्थात् पुण्यके सिवा और किसीके द्वारा वह दूर नहीं किया जा सकता। तथापि वह सब मैं महाराजके आगे वर्णन करती हूं। आगे कर्तव्य वस्तुमें प्रमाण तो नियति ही है, अर्थात् जो बदा होता है वही होता है।

ये महारानी आज महलकी छतपर मेरे साथ इस आपके प्रभावसे समृद्धिशाली नगरकी शोभा निहारनेको गई थीं। वहां परसे इन्होंने देखा कि सुन्दर सुन्दर धनियोंके बालक हाथकी थपकियां दे दे कर गेंद खेल रहे हैं। उन चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाले बालकोंको देखकर चिन्तासे इनका मुखारविंद मलिन हो गया। इन्होंने सोचा कि ऐसे बालकोंको गर्भमें धारण करनेसे जिनका जन्म सफल हो चुका है वे स्त्रियां धन्य हैं—मैं उनको अपनेसे कहीं अधिक भाग्यशालिनी समझकर उनके समान होनेकी कामना करती हूं।

जिन्होंने पूर्वजन्ममें पुण्यसञ्चय नहीं किया है, और इसी कारण जो मेरे समान पुष्पवती होकर भी फलसे हीन हैं वे 'बांझ' स्त्रियां वन्ध्या लताओंके समान इस लोकमें सुशोभित नहीं

होती और सब लोग उनके निष्फल जन्मकी निन्दा करते हैं। गर्भ धारण ही स्त्रीका प्रसिद्ध धर्म है।

जो स्त्री गर्भधारणके विना ही स्त्री शब्दको धारण करती हैं वे उसी अन्धेके समान, जो अपनेको सुलोचन कहलाना चाहता हो, जगतमें हँसी जाती हैं। जब चन्द्रमा आकाशमार्गमें नहीं रहता तब सूर्यदेव उसे अलंकृत करते हैं और ऐसे ही हंसोंसे शून्य सरोवरको कमलके कुसुम-समूह सुशोभित करते हैं। किन्तु कुलकामिनियोंके लिए वंशको बढ़ानेवाले बीजरूप पुत्रके सिवा और कोई भूषण नहीं है।

उस अपने कुलके एकमात्र अलंकार तथा सौभाग्य, सुख और वैभवके स्थिर कारण पुत्रसे रहित जो मैं हूं उस पुण्य-हीनाको बन्धु-बान्धव, सुहृद्गण या पतिकी प्रसन्नता अथवा आदर कोई भी सुखी नहीं बना सकते।

हे देव! इसप्रकार विषादको प्राप्त रानीने उदास होकर अपना दुःख मुझसे कहा और आप पलंगपर पड़ रहीं। महाराज! मैंने देवीको बहुत तरहसे समझाया बुझाया भी पर उनका शोक रत्तीभर भी कम नहीं हुआ। सखीके मुखसे इसप्रकार रानीके विषादका कारण सुनकर राजाने एक लम्बी सांस ली और फिर उसके बाद रानीसे कहा कि—

हे देवी! जो वस्तु दैवके आधीन है उसके लिए शोक करना किसी तरह ठीक नहीं। देखो, यह शोक शरीर, इन्द्रियों और हृदयको सुखा डालता है। प्रिये! तुम्हारे दुःखसे पहले तो मुझे ही दुःख होगा और मेरे दुःखसे सारी प्रजाको दुःख होगा।

हे कृपामयी! इसप्रकार सारे जनसमूहको सन्ताप देनेवाले बढ़ते हुए शोककी वशवर्तिनी मत बनो। पहले जन्ममें अपने परिणाम वशवर्ती होकर जिसने जो अच्छा या बुरा कर्म किया

है उसीके अनुसार इष्ट या अनिष्ट फल प्राप्त होता है। फिर तुम अकारण क्यों शोक कर रही हो?

हे मन्दगामिनि! पुत्रकी प्राप्तिको अत्यन्त असाध्य मत समझो। यदि भाग्य सर्वथा प्रतिकूल न होगा तो तुम्हारा यह मनोरथ बहुत ही शीघ्र पूर्ण होगा। इस जिनसमयमें केवलज्ञानी और अवधिदर्शी आदि अनेक प्रकारके रिद्धिधारी मुनि वर्तमान हैं। उनको, प्रबुद्ध और मोहको प्राप्त यह चराचर संसार करतल-गतसा ज्ञात है।

तुम्हारे शोकको दूर करनेके लिए सर्वथा उद्यत होकर मैं उन मुनियोंके निकट जाकर तुम्हारे पुत्र न होनेका कारण पूछूंगा और उसकी बाधा दूर करनेका पूरा प्रयत्न करूँगा। सब दिशा-ओंके राजाओंसे 'कर' लेनेवाले उन राजाने इस प्रकार मनोहर वचनोंसे अपनी प्यारी रानीका शोक दूर कर दिया।

एक समय, जबकि उपवनमें वसन्त ऋतुकी शोभा फैली हुई थी, अत्यन्त कौतुकके साथ सुहृद्गण सहित राजा श्रीषेण अपने क्रीड़ावनमें उसकी शोभा देखनेके लिए गए। उस बागमें मयूर नाच रहे थे, कोकिलायें मन्द-मधुर शब्द कर रही थीं, स्वादभरे सुन्दर फल लगे हुए थे, पुष्पोंकी सुगन्ध फैली हुई थी, शीतल मन्द पवन डोल रहा था।

ऐसे सब इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाले उस बागमें महाराज श्रीषेण विहार करने लगे। इसी बीचमें श्रेष्ठ शोभा धारण करने-वाले और २५ प्रकारके मलोंसे रहित शुद्ध सम्यक्त्वको धारण करनेवाले राजाने सहसा देखा कि भारी तपस्याके तेजसे शोभायमान और आकाशचारी अनन्त नाम अवधिज्ञानी मुनिराज आकाशके नीचे उतर रहे हैं। आनन्दके मारे राजाके शरीरमें रोमांच हो आया। उन्होंने तमालतरुके तले विराजमान उन मुनिराजके संसारसागरसे पार जानेके लिए नौकास्वरूप चरणोंमें

भारी भक्तिके भारसे आप ही झुका हुआ मस्तक रखकर प्रणाम किया ।

दोषरहित परम आगमका उपदेश देनेवाले मुनिराजने अपने स्वरूपके ध्यानमें लगी हुई समाधिको समाप्त करके श्वेतकमलके समान उज्ज्वल और धर्माभिषेकके जल सरीखी पवित्र मन्द मुसकानसे राजाको नहलाते हुए आशीर्वाद दिया ।

आशीर्वाद पानेके उपरांत महाराज श्रीषेणने कली हुए कमल-कुसुमके समान शोभायमान हाथ जोड़कर अपने उज्ज्वल दांतोंकी चमकसे मुनिवरके चरणोंमें चन्दन चढ़ाते हुए यों विनयपूर्ण वाणी कही—

पापनाशके लिए बहुत दूर जाकर भी जिनके पवित्र रज पूर्ण चरणोंका दर्शन करना चाहिए वे आप मुनिवर स्वयं मेरे यहाँ पधारे हैं ! आपके इस आगमनका कारण मेरे पूर्वजन्मके पुण्योंके सिवा और क्या हो सकता है ? भगवन् ! आपका दर्शन थोड़े पुण्यसे नहीं प्राप्त हो सकता । हे सुचरित ! आपके दर्शनसे कल्याणकी वृद्धि होती है, विवेक बढ़ता है, पाप नष्ट होते हैं और ऐश्वर्यका अभ्युदय होता है । कहांतक कहें, आपका दर्शन सम्पूर्ण मङ्गलोंका मूल कारण है ।

हे मुनिनाथ ! जो हो गया है और जो होगा वह सब आप जानते हैं । इसलिए प्रसन्न होकर आप यह बताइए कि संसारका सारा हाल अच्छी तरह जाननेपर भी अबतक उससे मुझे वैराग्य क्यों नहीं होता ?

वे मुनिवर राजाके मनकी चिन्ताको जानकर उनके यों कहनेके उपरांत बोले कि राजन् ! जबतक पुत्रकी अभिलाषा बनी हुई है तबतक तुम्हें वैराग्य नहीं हो सकता । और जबतक तुम्हारे शत्रुकुलसंहारक वीर बालक नहीं उत्पन्न होता तबतक वह मानसिक चिन्ता मिट नहीं सकती । परन्तु पुत्र पैदा होनेपर भी

तुम्हारे वैराग्यमें विघ्न करनेवाला और एक पूर्वजन्म सम्बन्धी कारण वर्तमान है। वह कारण कहता हूं सुनो—

यह तुम्हारी पटरानी पूर्वजन्ममें इसी नगरके देवांगद नाम बनियेकी लड़की थी। इसकी माताका नाम श्री और इसका नाम सुनन्दा था। यह परम गुणवती थी और इसके पितासे सब बन्धु-बान्धव परम प्रसन्न थे। नासमझ सुनन्दाने जवानीमें ही गर्भकी पीड़ासे व्याकुल और शिथिल शरीर हो जानेके कारण शोभाहीन एक दूसरी स्त्रीको देखकर ऐसी इच्छा की कि अन्य जन्ममें भी जवानीमें मेरी ऐसी दशा न हो। यही इसके इस जन्ममें अबतक पुत्र न होनेका कारण है।

सुनन्दा श्रावकाचारका पालन करते हुये वह शरीर छोड़कर सौधर्म नाम स्वर्गमें देववधू हुई। उसके बाद स्वर्गभोग समाप्त होनेपर यह फिर पृथ्वीपर आई और शेष पुण्यके कारण राजा दुर्योधनकी कन्या और तुम्हारी स्त्री हुई है। इस कारण पूर्वजन्मके अशुभ कारणसे जवानीमें तुम्हारी रानीके कोई बालक नहीं हुआ।

राजन्! कुछ दिनोंमें इस दोषके शान्त होनेपर निःसंशय तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा। चन्द्रमाके समान सबके मनको हरनेवाले उस परम तेजस्वी पुत्रको पृथ्वीके पालनका भार देकर तुम जिनदीक्षा ग्रहण करोगे और फिर सारे कर्मबन्धन क्षीण हो जानेपर तुम्हें निर्वाण प्राप्त होगा। इस प्रकार संक्षेपसे ये वचन कहकर इष्ट-लाभकी सूचनासे राजा श्रीषेणको भलीभांति आनंदित करके वे मुनिवर यथेष्ट स्थानको चले गये। और श्रावक-व्रतरूपी आभूषणोंसे अपने शरीरको अलंकृत किये हुए राजा भी अपनी राजधानीमें गये। पूर्वोपार्जित पुण्यसे ही पुरुषोंको इष्टकी प्राप्ति होती है, यह जानकर राजाने धर्ममें अपनी बुद्धिको लगाया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाग्यशाली लोगोंकी ही धर्ममें बुद्धि होती है; क्योंकि धर्ममें निष्ठा ही भविष्य अभ्युदयका प्रधान कारण है।

वे निरन्तर संयमी भिक्षुओंको आहार-दान और जिनेन्द्रकी पूजा करते थे। इसी तरह दिन बीतते बीतते नन्दीश्वर नामका महापर्व आ गया। असुरलोक, देवलोक और नागलोकमें सर्वत्र उस उत्सवकी धूम मच गई। उस पर्वके दिन रानीसहित राजाने व्रत धारणपूर्वक जगद्विजयी जिनेन्द्रकी भारी पूजा की और फिर अपनी कामना पूर्ण होनेकी अभिलाषासे जिनबिम्बका अभिषेक किया।

चन्द्रमाकी कला और कुलदेवताकी तरह सन्तोष-सम्पादन और अभीष्ट प्रदान करती हुई रानीने, सीप जैसे उत्तम मोतीको धारण करती है उसी तरह गर्भ धारण किया। गर्भ धारणकी अवस्थामें बड़ी बड़ी आँखोंवाली रानीका शरीर कुछ शिथिलसा हो गया और मुखकमल कुछ पीला पड़ गया। गर्भमें स्थित बालकके असंख्य गुणोंके भारी बोझसे ही जैसे उसकी गति दिन दिन धीमी पड़ने लगी।

चन्द्रमाकी कान्तिको भी तिरस्कृत करनेवाले रानीके दोनों स्तनोंके अग्रभाग अधिक काले पड़ गये और उनका घेरा कुछ उज्ज्वल पीले रंगका हो आया। जिससे वह चकोरनयनी उस कमलिनीके समान जान पड़ने लगी जिसके दो फूलोंको मदान्ध भौंरे चूम रहे हों।

कुचोंपर फैली हुई उज्ज्वल आभाके आगे मोतियोंके हारकी कांति फीकी पड़ गई। इसी कारण मानों उसने संघर्षण (रगड़ या डाह) से स्तनोंके मुखपर मैल जमा कर दिया। सच है, ऐसा कोई विरला ही गुणी* होगा जो किसीको देखकर उससे डाह न करने लगता हो। जमुहाई सखीकी तरह सदा उसके पास ही रहती थी और आलस्य भी श्रेष्ठ मित्रकी तरह

*हारमें गुण अर्थात् डोरा होता है, इसीसे उसको भी गुणी कह सकते हैं।

उसका साथ नहीं छोड़ता था। लज्जा पेटके साथ ही बढ़ने लगी और नाभिको त्रिवलीकी तरह फुर्ती मिट गई। रानीके दोनों नेत्र दिन पर दिन यह सोचकर उज्ज्वल होने लगे कि हमने अपनी सरस कान्तिसे ही नीलकमलोंको जीत लिया है; अब हम श्वेत कमलोंसे लागडाँट करेंगे।

जब स्त्रियाँ गर्भवती होती हैं तब उन्हें जिस चीज़की चाह या अभिलाषा होती है उसे दौर्हद कहते हैं। मौलसिरीके फूलोंके समान सुकुमार शरीरवाली रानीको केवल जिन-पूजाका ही दौर्हद था। वह दौर्हद, वचनहीन होनेपर भी गर्भस्थित बालकके जन्मान्तर सम्बन्धकी सूचना दे रहा था; अर्थात् वह जता रहा था कि बालक अन्य जन्ममें जिन होगा। प्रसवकाल आनेपर, शुभ तिथिमें, जब कि सब शुभ ग्रह 'उच्च' स्थित थे, रानी श्रीकान्तासे, अपनी उज्ज्वल शरीर-कान्तिसे अन्धकारको दूर करनेवाला भावी तीर्थङ्कर कुमार उत्पन्न हुआ।

सूर्यके समान परम तेजस्वी उस बालकका अभ्युदय होनेपर आकाश निर्मल हो गया, और सरोवरोंमें कमलिनी-समूहकी शोभा सहसा खिल उठी। मलिनता मिट जानेसे दिशारूपी स्त्रियोंकी आभा उज्ज्वल हो गई और वे भली भांति शोभाको प्राप्त हुईं। बादलोंके समान गंभीर शब्दवाले डंके और नगाड़े बजनेसे राजाका महल गूंज उठा। प्रसन्न पुरवासी लोग श्रीप्रजाके साथ अपने अपने घरमें भारी उत्सव-धूमधाम करने लगे। वारां-गनाओंके झुण्डके झुण्ड अपने अपने घरसे निकल कर, बाहर आकर, नृत्य करने लगे।

प्रजाजन इस प्रकार उच्च स्वरसे कहने लगे कि हे पृथ्वी! आज तूने अपना अद्वितीय पति पाया; अतएव तू प्रसन्न हो—तेरी बढ़ती हो। जिन्होंने आ-आकर राजकुमारके जन्मका सुसमाचार सुनाया उनको, प्रसन्नताके मारे, क्या देने योग्य है

और क्या नहीं-इसका कुछ भी विचार न करके, आनंद-विह्वल महाराज श्रीषेणने मुंहमांगा पुरस्कार दिया। सच है, जब मन आपेमें नहीं रहता तब वह विचार नहीं कर सकता। राजकुमारके जन्मकी खुशीमें चारों ओर इतना गाना-बजाना और नाचकूद हो रहा था कि सारा नगर ही मानों मस्त हो रहा था।

उस नगरमें ऐसा कोई शत्रु भी न था जिसका मन भीतरसे प्रसन्न न हो उठा हो। राजा श्रीषेणने कुलके बड़े बूढे लोगोंके साथ अच्छे दिन और मुहूर्तमें सुवर्ण पुष्पोंसे सर्वज्ञ जिनदेवकी पूजा करके उस कुमारका मङ्गलकारी श्री शब्दसे युक्त श्रीवर्म्मा यह नाम रक्खा। उदय अर्थात् ऐश्वर्यकी खान जो राजकुमार है उसका जन्म होनेसे राजा श्रीषेण भी अधिकाधिक लाभसे परम प्रसन्न हुए।

उन्होंने तीव्र तेजवाले अभिमानी शत्रुओंका सिर झुका दिया और किसीके वशमें न रहनेवाली पृथ्वीको अपने पराक्रमसे वशमें कर लिया। उनको सैंकड़ों राजे कर-स्वरूप धन प्रदान करने लगे।

इति तृतीयः सर्गः

चतुर्थ सर्ग

शोभासम्पन्न सुन्दर वे राजकुमार प्रजा-समूहके नेत्रोंको आनन्द देते हुए दिन दिन सरोवरकी तरह बढ़ने 'भरने' लगे। बढ़ती हुई उज्ज्वल कलाओंसे उन्नतिको प्राप्त होकर सब लोगोंको आनन्दित करते हुए कान्तियुक्त राजकुमारको लोग चन्द्रमाकी उपमा देने लगे।

सूर्यके समान तेजस्वी राजकुमारने श्रेष्ठ गुरुओंकी अच्छी तरह उपासना करके उनसे कुछ ही दिनोंमें विधिपूर्वक चारों विद्या और चौसठ उपविद्या सीखलीं और उन विद्याओं और उपविद्याओंके जाननेवाले लोगोंमें सर्वोच्च आसन प्राप्त कर लिया।

खानसे निकले हुए रत्नके समान अवस्थामें छोटे होनेपर भी वे राजकुमार उज्ज्वल किरणतुल्य अपनी कलाओंके बढ़े हुए गुणोंमें सबसे बड़े हुए। राजकुमारको अपने अपने गुणकी श्रेष्ठ शिक्षा देनेके लिए धनुर्विद्या, खड्ग-विद्या, हाथी और घोड़ेपर चढ़नेकी विद्या आदिके उस्ताद लोग सदा सेवामें रहते थे। लक्ष्मी अर्थात् शोभा रातको चन्द्रमाके पास रहती है और दिनको कमलके पास चली जाती है, इसप्रकार स्वभावसे ही चञ्चल होनेपर भी राजकुमारके शरीरको छोड़नेकी उसे इच्छा ही नहीं होती थी।

कुमारकी भारी उदारताको देखकर अन्य उदार लोगोंने अपनी उदारताका वृथा अभिमान त्याग दिया। सो उन्होंने ठीक ही किया। दूसरेसे परास्त हो जानेपर मानीका मान करना नहीं सोहता। उनके साथसे और कायर लोग भी शूर हो गये, फिर उन महात्माका क्या कहना है? उनमें तो सिंहकी ऐसी शूरता स्वाभाविक ही थी।

नीतिशास्त्रको जाननेवाले लोग जिनकी इच्छा करते हैं वे

उदारता, शूरता और सत्य ये तीन गुण एक-साथ ही जैसे आपसमें चढ़ा ऊपरी करके, उनमें बढ़ने लगे। सब प्रजामंडलको धनधान्यसे परिपूर्ण और महान् गुणोंसे युक्त बनाते हुए नीतिदर्शी राजकुमार ही आश्रित लोगोंके यथार्थ प्रभू और गुरु हुए। सम्पूर्ण गुणोंके आधाररूप राजकुमारने केवल अपने पक्षके लोगोंको ही अत्यन्त हर्षित नहीं किया; किन्तु दुष्ट स्वभाववाले शत्रुओंको भी खुश कर दिया।

पुण्यात्मा लोगोंके लिए ऐसा कोई कार्य नहीं जो असाध्य हो। त्रैलोक्यकी शोभाको परास्त कर देनेवाला उनका रूप देखकर ही उसे देखनेके लिए अतृप्त ब्रह्माने अपने चार मुख कर लिये। इसके सिवा उनके चतुरानन होनेका और कोई कारण हमें नहीं जान पड़ता।

वे कुमार ऐश्वर्यके निवास-स्थान और विजय-लक्ष्मीके आश्रय-स्थान तथा सबके मनको भानेवाले और सम्पूर्ण नीति-निष्ठ थे तो भी उन्हें गर्वका लेश न था। सच है, महानुभाव लोगोंको अभिमान नहीं होता। उन कुमारने काम, क्रोध, हर्ष, मान, लोभ और मद इन भीतरी छहों शत्रुओंको जीत लिया था। वे कृतज्ञ (गुणग्राहक) और स्वयं सब श्रेष्ठ गुणी लोगोंमें भी श्रेष्ठ थे। इस प्रकार उन कुमारमें सब गुणोंको रहते देखकर ईर्षाके मारे ही मानों सब दोष-समूह उन्हें छूते भी न थे।

उन कुमार श्रीवर्माने अपने पिताकी आज्ञासे विधिपूर्वक एक परम सुन्दरी राजकुमारीसे अपना विवाह किया। शरीरमें प्रभाका अधिक प्रभाव अर्थात् चमत्कार होनेसे उस राजकुमारीका प्रभावती यह नाम सर्वथा सार्थक था।

इसके बाद विवाहके उपरान्त महाराज श्रीषेणने जितेन्द्रिय जनोंमें श्रेष्ठ उन कुमार श्रीवर्माको युवराज बना दिया और आप निश्चिन्त चित्तसे निर्विघ्न राजसुख भोग करने लगे। इच्छा

करते ही निकट प्राप्त जो मनोहर भोग हैं उनमें राजाका चित्त ऐसा रम गया कि बहुत समय बीतनेपर भी उन्हें यह ख्याल नहीं हुआ कि कितने दिन बीते। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मोहमें ज्ञान शिथिल हो जाता है।

एक दिन वे राजा अपने महलमें बैठे हुए थे, इतनेमें उन्हें आकाशसे उल्कापात होते देख पड़ा। वैसे ही उन्हें सहसा विषयभोगसे वैराग्य हो गया। विषयभोगमें बीते हुए अपनी आयुके पिछले समयका भी उन्हें ध्यान आया। वे इस प्रकार चिन्ता करने लगे "अहो! मनुष्योंका जीवन और जवानी सब कुछ इसी तरह अस्थिर है। तथापि मेरे समान पुत्र और स्त्रीकी ममतामें मूढ़ मन्दमति मनुष्य इसे नहीं जानता!

यह मूर्ख जीव नदी-तरङ्गके समान चंचल रूप-रस आदि पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें ऐसी लोभ-लालसा करने लगता है कि फिर मोहवश हो जाता है और अनन्त दुःख देनेवाले आरम्भ-दोषोंपर ध्यान ही नहीं देता। यदि यह मूढ़-बुद्धि जीव क्षणभरमें क्षीण हो जानेवाली आयु अर्थात् जीवनको नित्य समझकर अभिमान न करे तो कर्म-पाशसे विवश होकर अनन्त योनियोंमें इसे दुःख न भोगना पड़े।

स्वप्नके समागमके समान क्षणस्थायी ये पुत्र स्त्री आदि घड़ी-भरमें नष्ट हो जाते हैं और फिर घड़ीभरमें दृष्टिगोचर होते हैं। इसीसे ज्ञानी पुरुष इन कर्म-बन्धके कारण-रूप सम्बन्धों पर विश्वास नहीं करता; अर्थात् इन्हें नित्य समझकर इनमें नहीं फंसा रहता। जो दुःखसे-बड़े कष्टसे मिलती है, चंचल है, जिसका अन्त दुःखदायक है अर्थात् जिसका वियोग अनेक दुःखोंका कारण है उस लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्यके लिए यह जीव इतना परिश्रम करता है।

अहो, इसके मोहको तो देखो! जो लोग स्वर-रहित अथवा

निर्विघ्न मुक्तिको छोड़कर अनेक प्रकारसे क्षय होनेवाले अथवा अनेक विघ्नोंसे परिपूर्ण ऐश्वर्यके पानेका यत्न करते हैं वे अज्ञानी शीतल चन्दनके पानीको छोड़कर कीचड़का पानी पीते हैं! यह मूर्ख जीव "यह मेरा है" और "मैं इसका हूं" इस प्रकारके अभिमानके बन्धनमें पड़कर रत्तीभर सुखके लिए पहाड़ जितने दुःखको कैसे स्वीकार करता है! पाप-कर्म क्षय होनेपर काकतालीय न्यायसे किसी तरह यह मनुष्यजन्म पाकर संसारका हाल जाननेवाले पुरुषको अपना हित करनेमें असावधानता कभी न करनी चाहिए। संसारकी असारता पर यों अपने मनमें विचार करते हुए राजा श्रीषेणको वैराग्य हो गया-विषयानुराग जाता रहा। अपने हितमें प्रवृत्ति होना ही बुद्धिका फल है।

दूसरे दिन राजाने युवराजको बुलाया और प्रणाम करके हाथ जोड़े खड़े हुए युवराजसे, उनके मुखपर वैराग्यको सूचित करनेवाली दृष्टि डालकर, यों कहा-जैसे आँधी झोपड़ीको हिला देती है उसी तरह बुढ़ापा आकर जब तक शरीरको नहीं शिथिल कर देता और बढ़ा हुआ नेत्र-दोष (तींगुर) जब तक देखनेकी शक्तिको नहीं नष्ट कर देता, तीर्थस्थानोंमें जानेमें समर्थ ये पैर जब तक अपनी गति-शक्तिको नहीं गंवाते, और धर्मकथाओंके सुननेका साधन जो श्रवण-शक्ति है वह जब तक समय पाकर घट नहीं जाती, अवस्थाके धर्मानुसार बढ़ा हुआ मोह जब तक ज्ञानको भ्रष्ट नहीं कर देता और जब तक शास्त्र पढ़नेमें प्रवीण वाणी लटपटाती नहीं, तब तक अर्थात् उसके पहले ही, मैं, दुःख दावानलमें जलते हुए आत्माको, जिनदीक्षा लेकर, यत्नपूर्वक संसारसे निवृत्त करना चाहता हूं। इसमें रुकावट डालकर तुम मेरे शत्रु न बनना।

संसारका सिलसिला बनाये रखनेवाली लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्यसे तो मेरा चित्त पहलेहीसे हटा हुआ है। मैं केवल तुम्हारे ही अभ्युदयकी नित्य अपेक्षा करता हुआ राजपदपर स्थित था।

अब तुम विपत्ति रहित या जितेन्द्रिय और शान्तशील होकर अपने तेजसे शत्रुओंके उदयको मिटाते हुए इस समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीमण्डलका पालन करो।

जिस तरह सूर्योदयसे चक्रवाक पक्षी प्रसन्न होते हैं उसी तरह जिसमें सब प्रजा तुम्हारे अभ्युदयसे खेदरहित अर्थात् सुखी हो वही, चरों (जासूसों) के द्वारा देखकर जानकर, करो। वैभवकी इच्छासे तुम अपने हितू लोगोंको पीड़ा मत पहुंचाना। नीतिके पण्डितोंका कहना है कि प्रजाको खुश रखना—अपने पर अनुरक्त बनाना अथवा प्रजासे प्रेमका व्यवहार करना ही वैभवका मुख्य कारण है। जो राजा विपत्ति-रहित है उसे नित्य ही संपत्ति प्राप्त होती है और जिस राजाका अपना परिवार वशवर्ती है उसे कभी विपत्तियाँ नहीं होतीं।

परिवारके वशवर्ती न होनेसे भारी विपत्तिका सामना करना पड़ता है। परिवारको अपने वश करनेके लिए तुम कृतज्ञताका सहारा लेना। कृतघ्न पुरुषमें और सब गुण होनेपर भी वह सब लोगोंको विरोधी बना लेता है। तुम कलिदोष जो पापाचरण है उससे बचे रहकर 'धर्म' की रक्षा करते हुये 'अर्थ' और 'काम' को बढ़ाना। इस युक्तिसे जो राजा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक दोनोंको बना लेता है। सावधान रहकर सदा मंत्री पुरोहित आदि बड़े-बूढ़ोंकी सलाहसे अपने कार्य करो।

गुरु (एक पक्षमें उपाध्याय और दूसरे पक्षमें बृहस्पति) की शिक्षा प्राप्त करके ही नरेन्द्र सुरेन्द्रकी शोभा या वैभवको प्राप्त होता है। प्रजाको पीड़ा पहुंचानेवाले कर्मचारियोंको दण्ड देकर प्रजाके अनुकूल कर्मचारियोंको दानमानादिसे तुम बढ़ाना। ऐसा करनेसे बन्दीजन तुम्हारा कीर्तन करेंगे और उससे तुम्हारी कीर्ति दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो जायगी। तुम सदा अपनी इच्छाको छिपाये रखना।

काम करनेसे पहले यह न प्रगट हो कि तुम क्या करना चाहते हो। क्योंकि जो पुरुष अपने मन्त्र (सलाह) को छिपाये रखते हैं और शत्रुओंके मन्त्रको फोड़फाड़कर जान लेते हैं वे शत्रुओंके लिए सदा अगम्य रहते हैं।

जैसे सूर्य तेजसे परिपूर्ण है, और सब आशाओं (दिशाओं) को व्याप्त किये रहते हैं, तथा भूभृत् जो पर्वत हैं उनके सिरके अलंकाररूप हैं, एवं उनके कर अर्थात् किरणें बाधाहीन होकर पृथ्वीपर पड़ती हैं वैसे ही तुम भी तेजस्वी होकर सबकी आशाओंको परिपूर्ण करो और भूभृत जो राजा लोग हैं उनके सिरताज बनो तथा तुम्हारा 'कर' पृथ्वीपर बाधाहीन होकर प्राप्त हो अर्थात् अनिवार्य हो। इस प्रकार राजाने शिक्षाके साथ साम्राज्य-सम्पत्ति अपने पुत्रको दी।

पुत्रने भी पिताके अनुरोधसे उसे अङ्गीकार किया। सुपुत्र वही है जो सर्वथा पिताके अनुकूल कार्य करे। इसके बाद पुत्रको राज्य-शासनका भार सौंपकर और अपने बन्धु-बान्धवोंसे पूछकर विदा होकर वे संग-मुक्त राजा श्रीप्रभाचार्यके चरणोंके निकट तप करके सिद्धि-रूपिणी वधूके वर बने, अर्थात् मोक्षको प्राप्त हुए।

इधर कुमार श्रीवर्मा भी पिताके वियोगसे कुछ दिन शोक करते रहे। उसके बाद मन्त्री, मित्र आदि सहायकोंके समझानेसे शोक शून्य होकर दिग्विजय करनेके लिए निकले। नीतिशास्त्रके ज्ञाता श्रीवर्माने अपने पास मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, दुर्गाधिकारी, कर्माधिकारी, कोषरक्षक और ज्योतिषीको रक्खा। और, शिकारी, भील, शबर आदिकी सेनाको सबसे आगे रक्खा; व बीचमें प्रबल सेनासहित सामन्तगणको।

इस प्रकार मुकुटकी चूड़ामणिके प्रकाशसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुये श्रीवर्माने दिग्विजय यात्रा की। उनके उछलकर चलते हुये घोड़ोंकी टापोंसे उड़ी हुई पृथ्वीकी गधोंके रंगकी काली

धूलने केवल दिशाओंके मुखोंको ही मैला नहीं कर दिये, बल्कि शत्रुओंकी स्त्रियोंके मुख भी मैले कर दिये।

अनुकूल वायुकी झोंकमें फहराती हुई उनकी सिंहादिके चिह्नोंसे युक्त सेनाकी ध्वजाओंसे केवल सूर्य ही नहीं छिप गया, किन्तु शत्रुओंका प्रभाव भी छिप गया (अथवा अस्त हो गया)। प्रस्थानके समय उनके हाथियोंके बहते हुए मद-जलसे केवल धूल ही नहीं बैठ गई, उसके साथ ही शत्रुओंका तेज भी बुझ गया। उनके प्रस्थानके समय उसकी सूचना देनेवाले नगाड़ेके शब्दने पर्वतोंकी कन्दराओंमें व्याप्त होकर केवल पर्वतोंके शिखर ही नहीं गिरा दिये; बल्कि शत्रुओंके हृदयोंको भी गिरा दिया—साहसहीन कर दिया।

जहाँ जहाँ वे पहुंचे वहाँ वहाँके रत्न भरे थाल (भेंटके लिए) और दही (मङ्गलके लिए) लिये हुए दूरहीसे झुक कर प्रणाम करते हुए ग्रामाधिकारियों और पुरवासियोंने आ आकर उनकी अगवानी की।

अतुल पुण्यकी शक्तिसे सम्पन्न श्रीवर्माने पराक्रम प्रकट करनेके लिए दिग्विजय-यात्रा की है, यह समाचार सुनकर बड़े भारी भयसे व्याकुल हो रहे हैं मन जिनके, ऐसे शत्रु लोगोंमें इस प्रकारकी चेष्टायें देख पड़ने लगीं। कोई तो उनकी सेनाके द्वारा अपने दलेमले जानेके भयसे स्त्री और पुत्र आदिको छोड़कर केवल अपने शरीरकी रक्षाको ही गनीमत समझकर अर्थात् अपने प्राण लेकर ऐसे भागे कि हरिणोंके साथ जंगलोंमें पहुंच गये। बहुतसे भयसे विह्वल हो कठोर धारावाले कुठारको कंठमें लगाकर उन शरणागत-रक्षक महाराजकी शरणमें आ गये। जैसे भव्य पुरुष गर्वरहित हो जिनदेवकी शरणमें आते हैं।

कुछ लोग महागर्वरूपी गजराजपर चढ़कर अपनी वीरताके घमंडमें भरी हुई सेनाके साथ उनके शस्त्रोंकी अग्नि-शिखाके

पतंगके समान भस्म हो गये। कुछने दर्पहीन होकर वाहन, धन-धान्य और सम्पूर्ण रत्न भेंटमें देकर हेमन्त ऋतुके वृक्षोंकी तरह (हेमन्तमें पतझाड़ होता है) केवल अपनी जान बचाली। शत्रुओंसे हाथ जुड़वा कर, उनके मान-मदको मिटाकर और उनसे सारांश-स्वरूप रत्न आदि लेकर श्रीवर्माने फिर उनको उनका राज्य दे दिया।

सज्जनोंका कोप झुकते ही जाता रहता है। युद्ध भूमिमें मारे गये शत्रुओंके पुत्रगण कण्ठमें कुठार दिये हुए शरणमें आये। दयालु श्रीवर्माने उन पर अनुग्रह किया। दीनों पर दया दिखाना कृपालु लोगोंके लिए उचित ही है। जिनके गर्व जाते रहे हैं और जो अभय पा गये हैं ऐसे मण्डलाधिप राजा लोग सेना सहित श्रीवर्माके साथ चलने लगे।

उनके आ-आकर मिलनेसे श्रीवर्माकी सेना समुद्रको भी मानों अपने विस्तारसे जीतनेका उद्योग करने लगी। भेंटमें आये हुए हाथियोंसे श्रीवर्माका सिंहद्वार किसी समय शून्य नहीं रहता था। उन हाथियोंके मदजलकी सुगन्धको पाकर दूर दूरसे भौंरे खिंचे चले आते थे और मदजलकी धाराओंसे भीगकर धूल बैठी रहती थी। सेवावृत्तिमें चतुर पहाड़ी लोग भयके मारे हांथीदाँत, चमरी-गायके बाल (जिनके चंवर बनते हैं) और पिंजड़ोंमें बन्द शेरोंके बच्चे आदि सामग्री लेकर श्रीवर्माकी सेवामें आकर उपस्थित हुए।

श्रीवर्माने अपने अपने द्वीपों (टापुओं) की विचित्र वस्तुएं लेकर उपस्थित हुए द्वीप-पति राजाओंको कृपादृष्टिसे सन्तुष्ट और सत्कृत किया। प्रभुओंको उचित व्यवहारकी पूरी जानकारी होती ही है। सूर्य जिस दिशाको छोड़ते हैं उसे 'अंगारिणी' और जिस दिशाको जाते हैं उसे 'प्रधूमिता' कहते हैं।

सूर्यके समान श्रीवर्मा भी जिस दिशाको छोड़ते थे वह शत्रुओंके शवोंकी चिताओंसे अंगारिणी (आगके अंगारोंसे युक्त) होती थी और जिस दिशाको जाते थे वह दिशा भागते हुए शत्रुओंकी सेनाओंके रजसे प्रधूमिता (मैली) हो जाती थी। समुद्रने भी, उसके तट पर जब श्रीवर्माकी सेना पहुंची, तब लहररूपी हाथोंसे चमकीले मोतियोंके ढेर किनारे लगाकर, जैसे डरके मारे उनको 'कर' दिया।

पुण्यकी राशि जो श्रीवर्मा हैं उनकी आज्ञाके प्रतिकूल चलनेवाला कोई पुरुष किसी द्वीपमें, किसी दुर्ग (गढ़)में, किसी देशमें, दिशामें या विदिशामें कहीं नहीं था। दैवके अनुकूल होने पर कौन नहीं अनुकूल होता? पहले 'कर' (एक अर्थ हाथ और दूसरा राज-स्व) से सर्वत्र स्पर्श करके फिर समान रति (एक अर्थ भोग और दूसरा अनुराग) प्रदान कर समुद्रजल-वस्त्रधारिणी सारी पृथ्वीको उन्होंने स्त्रीके समान वश-वर्त्तिनी बना लिया।

इस प्रकार चारों समुद्र पर्यंत सीमावाली सब प्राणियोंका धायके समान पालन करनेवाली जो पृथ्वी है उसको अपने अधिकारमें करके वन्दीजनोंके अभिनन्दन और अभिवन्दनको ग्रहण करते हुए श्रीमान् श्रीवर्मा महाराज फिर अपने श्रीपुरमें आकर उपस्थित हुए।

नवीन उदय (ऐश्वर्य)को प्राप्त प्रतापपूर्ण और सब दिशाओं पर अधिकार जमाये हुए श्रीवर्मा जब सूर्यके समान लौटकर आये, तब प्रजाओंके झुण्ड, उन्हें प्रणाम करनेके लिए, अर्घ (पूजाकी सामग्री) हाथमें लेकर उनकी ओर चले। बाहरी मैदानोंमें लगी हुई साग-पातकी क्यारियोंसे मनोहर उद्यान शोभा सम्पन्न स्थलोंको देखते हुए पुराने गजराज पर चढ़े हुए राजा श्रीवर्मा अपने सिंहद्वारके सामने आये। शोरको सह सकनेवाले

मजबूत पेड़ोंकी जड़ोंमें जंजीरोंसे बंधे हुए, मदान्ध, भ्रमर-शोभित-मस्तक गजराजोंको श्रीवर्माने देखा, मानों वे सिर हिलाकर उन्हें प्रणाम कर रहे हैं।

खाईके किनारे चारों ओर बैठे हुए मनोहर शब्द करते शंखके समान श्वेतवर्ण राजहँसोंके झुण्डने आये हुए श्रीवर्माके मनको चलनेकी शक्तिके साथ ही हर लिया। अर्थात् उनको देखकर राजा ऐसे मोह गये कि आगे बढ़ ही न सके।

उन्होंने देखा कि कमल-रजसे सुनहले रंगकी हुई मछलियोंके झुण्ड मानों उन्हें देखनेके कुतूहलसे ही खाईके जलके ऊपर चारों ओर उछल उछल कर निकल रहे हैं। झरोखोंसे बाहर अपने मुखारविंदोंको निकाल निकाल कर पुरकी स्त्रियाँ उनके नयन-मनोहर रूपको नेत्र-रूप अञ्जलियोंसे मानों पीने लगीं। उनके नीवी-बन्धन कामोद्दीपनसे ढीले पड़ गये; पर उन्हें कुछ भी होश न था।

बढ़ते हुए नवयौवनके उदयकी शोभासे सम्पन्न और अपने शरीरकी कांतिसे चन्द्रमाको भी परास्त करनेवाले महाराज श्रीवर्माने पुरमें प्रवेश किया। और उसके साथ ही अन्तःपुरकी रानियोंके हृदयमें कामदेवने भी प्रवेश किया।

शत्रुओंपर विजय पाये हुए महाराज श्रीवर्मा, चन्द्रमाके समान कांतिवाली शील सौभाग्यवती विमल-मूर्तिधारिणी साक्षात् कामकी शक्ति (रति) के समान रानी प्रभावती देवीके साथ हास-विलास-पूर्वक अपूर्व रति-सुखको भोगते हुए श्रीपुरमें राज्य करने लगे।

एक दिन प्रकृतिकी शोभाको देखते हुए शत्रु विजयी महाराज श्रीवर्माने शरद ऋतुमें मेघोंको उत्पन्न होते ही मिट जाते देखा। इसीसे संसारकी स्थितिको जाननेवाले राजाको सहसा वैराग्य

हो आया। सज्जन लोग विषयोंमें अत्यन्त आसक्त नहीं रहते।

तब उन्होंने अपने पुत्र श्रीकांतको सारा राज्य सौंप दिया; और फिर श्रीप्रभ मुनिको प्रणाम करके प्रव्रज्या ग्रहणपूर्वक शांतिमें मन लगाकर ऐसा कठिन तप किया जिसे हरएक नहीं कर सकता। उसके बाद ७२ वर्षकी अवस्था तक वहीं रहकर, वे श्रीधर नामसे सौधर्म-नामक प्रथम स्वर्गमें, परम ऐश्वर्यसे सन्तुष्ट हो, देव-दाराओंके नेत्रोंको नित्य प्रसन्न करते हुए, जाकर रहने लगे।

इति चतुर्थः सर्गः

पञ्चम सर्ग

दक्षिण दिशामें एक धातकी-खण्ड है। उसमें उसका अलङ्कार स्वरूप एक इषुकार नाम (बाणके आकार) का पर्वत है। वह पर्वत बहुत ऊँचा है। उसके सभी स्थान सुशोभित हैं। उन पर्वतके शिखरों पर देवता लोग विचरते हैं। उससे पूर्व भरत-क्षेत्रमें, जहाँ भरत आदि राजा जन्म ले चुके हैं, अलका नाम प्रदेश है, जिसका वर्णन बड़े बड़े कवि ब्रह्मा भी नहीं कर सके।

वह देश अपने हृदयमें (अर्थात् भीतर) रमणी ऐसी स्थल-कमलिनियोंको धारण किये हुए हैं। कमल पुष्प ही उनके मुख हैं (क्योंकि मुखकी कमलसे उपमा दी जाती है); भँवरी ही उनकी आँखें हैं (क्योंकि नेत्रकी उपमा मधुकरीसे दी जाती है); नवीन नाल-दण्ड ही उनकी दुर्बल बाहुएँ हैं (कमलिनीकी डंडीसे बाहुकी उपमा दी जाती है।)

उस देशके आसपासके गाँवोंके किनारे लगी हुई अन्नकी ढेरियां पहाड़ोंके समान धरती पर फैली हुई, भारी और अपनी चोटियोंसे बादलोंको छूनेवाली अर्थात् आकाशसे बातें कर रही हैं। क्योंकि सरोवर महात्मा लोगोंकी बुद्धिके समान विमल आकारवाले, गम्भीर और इसीसे आदरपूर्वक प्रवेश करनेवालोंके लिए भी अथाह सब लोगोंके मन भाये हैं। लोगोंके नहाने लायक जलवाली नहरों और पक्षियोंके शब्दसे मनोहर तटवाली नदियों तथा कमल-काननोंसे अलंकृत सरोवरोंसे वह देश चारों ओर सुशोभित है।

वहाँ न कभी प्रचण्ड गर्मी होती है, न तेज जाड़ा पड़ता है, न आँधीसे धूल उड़ती है। वहाँ सदा समयके अनुकूल माफिककी गर्मी सर्दी और बर्षा होती है; जो किसीको खलती नहीं। वहांके रहनेवाले किसी भी ऋतुमें कभी व्याकुल नहीं होते। वह देश

अपनी स्त्रियोंके समान सुपयोधरा (नदी पक्षमें सुन्दर जल धारण करनेवाली और स्त्री-पक्षमें सुन्दर स्तनवाली) महानदियोंको गोदमें लिए हुए है। भारी रेती इनकी उज्ज्वल भारी जंघायें हैं। भँवर जिनमें नाभिके समान जान पड़ते हैं ऐसे मध्य-स्थल ही इनकी 'पेटी' हैं।

वहाँ जवान लोगोंको जुआ आदि बुरे व्यसन (लतें) नहीं हैं। बुड्ढे लोगोंकी बुद्धि या स्मरणशक्ति मोहसे भ्रष्ट नहीं हो गई है। गुणी लोग निन्दित दोषों (दुराचारों) से दूषित नहीं हैं और कोई अपमृत्युसे नहीं मरता। बिना किसी बाधा-विघ्नके उपजे नवीन अन्नके ढेरोंसे चारों ओर परिपूर्ण वह देश 'देव-कुरु' की उपमाको प्राप्त होकर सब लोगोंके नेत्रोंको आनन्द देता है। वहाँ वृक्षोंकी पंक्तियां पुष्प-परिपूर्ण हैं। सब पुष्प फलयुक्त हैं। सब फल मधुर हैं। वहाँ कोई ऐसी चीज नहीं है जो जन-समूहको आनन्ददायक न हो।

उस प्रदेशमें त्रिलोक प्रसिद्ध कोशला नाम पुरी है। उसमें बड़े बड़े वैभवशाली पुण्यजन (पुण्यात्मा कुबेरकी पुरीके पक्षमें देवगण) रहते हैं; अतएव वह कुबेरकी अलकापुरीसे समता रखती है।

उस पुरीमें, शरद् ऋतुके आगमनके समय, अत्यन्त ऊँचे महलोंकी चोटियोंसे पेट फट जानेके कारण मानों पहली तहवाले बादल बड़ी बड़ी बून्दोंसे बरसते हैं। रतिके समय पतिके पास रत्न-दीपकोंको साधारण दीपक समझकर, बुझानेकी इच्छासे नई ब्याह कर आई मुग्धा लज्जासे सिर झुकाये हुए अपनी मालाके पुष्पोंका पराग फेंकती है और उसका यह भोलापन देखकर चाँद हंसता है।

पुण्यात्मा लोगोंके महलोंके मणिमय फर्शों पर तारागणका प्रतिबिम्ब पड़नेसे वे कुन्द-पुष्प समूहसे जान पड़ते हैं। कृष्ण-पक्षके अन्धकार-मय सन्ध्याकालमें अभिसार करके अपने प्रियतमोंके

पास पधारनेकी इच्छा करनेवाली परकीयाओंके गमनमें मंद मुस-कानसे अंधकारको मिटानेवाला उनका मुखचन्द्र ही विघ्न डालता है।

वहांके ऊंचे महलोंकी चोटियों पर नीलमकी शिलायें जड़ी हुई हैं। उनकी कान्ति मिल जानेसे चन्द्रमाके मण्डलमें श्याम आभा देख पडती है, जिससे जान पड़ता है कि वहाँकी स्त्रियोंके मुखचन्द्रकी कान्तिके आगे परास्त होकर ही जैसे चन्द्रमा काला पड़ गया है-अर्थात् मलिन हो गया है। उस पुरीकी चहार-दीवारीके शिखरों (बुर्जियों) पर लिपटे हुए शरद् ऋतुके बादलोंके टुकड़े देखकर अनुमान होता है कि मानों वे सूर्यके घोड़ोंके मुंहका फेन है और वह फेन उस चहारदीवारीको लाँघनेमें थक जानेके कारण ही घोड़ोंके मुंहसे निकला है। स्त्रियोंसे गतिकी शिक्षा प्राप्त करनेकी इच्छासे ही मानों राजहंस-समूह वहांके घरोंमें बने हुए क्रीड़ा-सरोवरोंको छोड़कर निकटवर्ती निर्मल जलवाले मानसरोवरमें नहीं जाते।

वहाँ, रातको, अनेकानेक गोपुरों (अंटियों) के शिखरों (बुर्जियों) पर लगी हुई स्फटिक-शिलाओंके ऊपर प्रतिबिम्ब पड़नेसे अनेक-किरणयुक्त होकर, नक्षत्र भी सहस्रकिरण (हजार किरणवाले, पक्षान्तरमें सूर्य) बन जाते हैं।

उस पुरीकी स्त्रियोंको देववधुओंके समान सुन्दर सुकुमार शरीरवाली बनाकर, पीछेसे विधाताने मानों इस डरसे कि देवताओंकी स्त्रियाँ और ये स्त्रियाँ एकमें मिल न जायें, उनके नेत्रोंमें पलकें लगादीं; और इस भेदसे उन्हें भिन्न कर दिया। (देवताओंके पलकें नहीं लगतीं—ऐसा प्रसिद्ध है)

अपनी शोभा और वैभवसे देवपुरीको परास्त करनेवाली उस पुरीमें यही एक बड़ा भारी दोष है कि भ्रमरगण कमलके भ्रमसे सुमुखी सुन्दरियोंके मुखोंको घेरे रहकर उन्हें सताते हैं।

उस पुरीमें एक अजितञ्जय नामके राजा हुए। उनमें नित्य

वृद्धिको प्राप्त प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति, ये तीनों शक्तियाँ थीं। उनके चरणकमलोंको बड़े बड़े राजा आकर, सिर झुकाकर, प्रणाम करते थे।

उन्होंने न्याय और पराक्रमसे सब जगत्को जीत लिया था। चन्द्रमाकी तरह उन्होंने कमल-नाल-तन्तुके समान उज्ज्वल, जन-समूहके सन्तापको दूर करनेवाले और तुला (राशि और पक्षान्तरमें उपमा) से अतीत अपने किरण-सदृश गुणोंसे संसारमें सब दिशाओंको उज्ज्वल कर दिया। "मेरे प्रताप (एक पक्षमें पराक्रम, दूसरेमें तेज) को इस जगत्में कौन जीत सकता है—" यों गर्व करके सूर्य पहले उदित होते हैं। परन्तु पीछेसे राजा अजितनाथके महान् तेजको देखकर लज्जितसे होकर वे अस्त हो जाते हैं।

वे सत्पुरुष राजा जैसे ऐश्वर्यसे बड़े थे वैसे ही अपनी स्वाभाविक नम्रतासे भी महत्त्वको प्राप्त थे। वास्तवमें महत्त्वका कारण केवल ऐश्वर्य ही नहीं होता। गुण-सम्पत्ति ही पुरुषको गौरव देती है।

त्रिभुवनमें व्याप्त राजाकी कीर्तिने उनके महान् गाम्भीर्य गुण अर्थात् गम्भीरताका निरूपण करके लवण समुद्रने अपनी कीर्ति (गम्भीरताकी प्रसिद्धि) के कम होनेसे ही मानों अपने कलेवरमें कालिमा धारण करली है—अर्थात् क्रोधसे काला पड़ गया है (खारी समुद्रका जल श्यामवर्णका है)। शत्रु-वंश-समूहके लिए अग्नितुल्य और मित्रोंके मुख-कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले उन राजाने अपने तेजसे केवल सूर्यको ही नहीं पराजित किया, बल्कि कान्तिकी कमनीयतासे चन्द्रमाको भी जीत लिया।

वे राजा गुरु (शिक्षादाता और बृहस्पति), ईश्वर (स्वामी और शिव), नरकभिद् (नरक-नाशक और नरकासुरको मारनेवाले कृष्णरूप विष्णु), धनद (धन देनेवाले और कुबेर), कमलाकान्त

(लक्ष्मीके निवासस्थान और ब्रह्मा), शिशिरगु (शीतल वचनवाले और चन्द्रमा), बुध (पण्डित और बुधग्रह) और सुगत (पूर्णज्ञानी और बुद्ध) होनेके कारण इस पृथ्वीमण्डलमें सचमुच ही सर्व देवमय थे।

अपने पराक्रमकी आगमें शत्रुओंको स्वाहा करनेवाले और अपने गुणोंसे सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलका मनोरञ्जन करनेवाले उन महातेजस्वी महाराजके रक्षक होने पर यह पृथ्वी सर्वदा उपद्रवसे रहित होकर भरीपूरी होने लगी।

शत्रुनारियोंके आँसूओंके जलसे महान् वैरकी आगको बुझानेवाले उन सत्पुरुष राजाका भारी प्रताप सूर्यके त्रिभुवनगामी तेजका सहायक अर्थात् साथी हुआ। स्वयं अपने पराक्रमसे ठाने हुए रणमें अनुराग रखनेवाले वे राजा गर्वित सिंहशावककी तरह युद्धभूमिमें परम प्रतापी शत्रुसेनाको कीड़ेकी तरह समझते थे। उन राजाने अपने अतुल प्रतापसे सूर्यके तेजको भी परास्त कर दिया।

उनके दिग्विजय करनेपर दिशाओंके राजा लोगोंके अपने त्रिभुवन-प्रसिद्ध नाम अर्थशून्य रह गये। वे राजा जय-शाली थे (जय नामका एक दिग्गज भी है) और सहज भद्रता अर्थात् भलेपन या मंगलसे विभूषित थे (भद्र जातिका हाथी भी होता है)।

वे भारी वंश (कुल, पक्षान्तरमें हाथीके पीठकी हड्डी) वाले थे। ऐसे कीर्तिशाली वे राजा दिक्करी (दिग्गज और पक्षान्तरमें सब दिशाओंके राजाओंसे 'कर' लेनेवाले) होनेपर भी मद (अहङ्कार) और मद-जलसे रहित थे। परिध (बेलन) ऐसी परिपुष्ट भुजाओंपर समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका भार उन राजाके धारण कर लेनेपर भारी भारसे दबे हुए शेषनागको बहुत दिनोंके बाद शिर उठाने (गर्दन सीधी करने) का अवसर प्राप्त हुआ।

अपने रूपके विलाससे मनको रमानेवाली और उत्तम कुलकी

कन्या 'अजितसेना' देवीके साथ महाराज अजितञ्जयका विवाह हुआ। उस समय वे प्रदोषके समय चाँदनीसे संयुक्त चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए। सब सुरों और असुरोंकी सुन्दरियोंका समूह बनाते बनाते विधाताको जो अपने कार्यमें निपुणता प्राप्त हुई थी उसे प्रकट करके (अर्थात् उसका नमूना) दिखानेके लिए ही मानों उसने अजितसेना देवीकी सृष्टि की।

उनके शरीरके ललित अङ्ग-प्रत्यङ्ग ऐसे सुडौल और सुन्दर थे कि उनके आगे रतिके रूपकी शोभा भी फीकी थी। ऐसे शुभलक्षण-सूचक अङ्गोंसे विभूषित होनेके कारण रानीको आभूषणोंकी कोई जरूरत नहीं थी। आभूषणोंको केवल विभवके लिए-मङ्गलके लिए वे धारण किये हुये थीं।

चन्द्रमाके अस्त होनेपर भी पृथ्वीतल चन्द्रमासे रहित नहीं होता था। उन रानीका मुखचन्द्र मन्द मुसकानकी उज्ज्वल चाँदनी फैलाकर प्रकाशमान रहता था। गुणरूप आभूषणोंसे विभूषित उन राजा और रानीके, सौधर्म नामक स्वर्गपति श्रीधर-देवने अलौकिक सुन्दर शरीरसे जन्म लिया। इस जन्मसे उनका नाम अजितसेन हुआ।

जनसमूहके मन भानेवाले, अनुराग बढ़ानेवाले, सुन्दर स्वरूपधारी पृथ्वीतिलक अजितसेन लड़कपनमें ही चन्द्रमाके समान विद्याभ्याससे, कलाओं (कलाविद्याओं और चन्द्रमाके पक्षमें कलाओं) से परिपूर्ण होने लगे।

गुणों (कमल-तन्तुओं और पक्षान्तरमें शूरता आदि) से निर्मित, सुरभित (राजाके पक्षमें निष्कलङ्क अथवा उज्ज्वल और कुमुद-पक्षमें सुगन्धित) अनुराग उत्पन्न करनेवाले, उज्ज्वल श्वेतकमलके सदृश राजाकी कीर्तिकिरणोंसे ही जगत् प्रकाशित हो उठनेके कारण लोग चन्द्रमाके उदयको व्यर्थ समझने लगे। मैं तो समझता हूं कि अजितसेनके रूपकी शोभासे हार कर ही कामदे

मारे कामदेव मर गया है और यह जो प्रसिद्ध है कि शिवके नयनानलने कामदेवको भस्म कर दिया है सो बिल्कुल झूठ है-गप है।

उदारता आदि गुणोंसे युक्त अजितसेनका इंद्रसे भी बढ़कर वैभव नीतिका अनुगामी था। स्वाभाविक विनीत भाव या शिष्टाचार वैभवका अनुगामी था। ऐसे ही महान् क्षमा-गुण विनयका अनुगामी था और पराक्रम क्षमा-गुणको अलंकृत किये हुये था। अपने गुणोंकी सम्पत्तिमें सारे जगत्से बढ़े हुए अपने पुत्र अजितसेनको देखकर राजा अजितञ्जय वैसे ही अत्यन्त प्रसन्न हुए जैसे पूर्ण चन्द्रमाको देखकर समुद्र उमड़ उठता है।

वे यों सोचने लगे कि मेरे सूर्य-सदृश पुत्रने अपने तेज (पराक्रम या प्रताप) से सब दिशाओंको व्याप्त कर लिया है; अब मेरा यह जन्म सफल हुआ, अथवा मुझे अपने जन्मका फल मिल गया।

चंद्रमा जैसे अपनी किरणोंसे आकाशको प्रकाशित करता है उसी तरह इस पुत्रने, अपने उदारता आदि गुणोंसे, निर्मल और महान् अर्थात् प्रतिष्ठित तथा सम्पूर्ण तेजस्वियों (आकाश-पक्षमें ज्योतिर्गण)के उदयका स्थान जो मेरा वंश है उसे प्रकाशित किया है। जैसे फूल ही वृक्षकी परम शोभा है, जवानी ही शरीरका परम शृङ्गार है, शांति ही शास्त्रके ज्ञाता पण्डितका आभरण है वैसे सुपुत्र ही मनुष्यके वंशका सबसे बढ़कर अलङ्कार है।

एक दिन नृपसमूह समन्वित राजा अजितञ्जयने पृथ्वीके तिलक-स्वरूप कुमार अजितसेनको भारी उत्सवके साथ, जगत्के हितके लिए, पूज्य युवराज-पदवी दी। शास्त्राभ्याससे शुद्ध बुद्धिवाले कलाधर (६४ कला-विद्या जाननेवाले, पक्षान्तरमें चंद्रमा) कुमारने इंद्रपदसे भी बढ़े हुए अत्यन्त श्रेष्ठ पिताके पदको पाकर राजा लोगोंके कर-कमलोंको मुकुलित कर दिया; अर्थात् वे लोग उनको हाथ जोड़ने लगे।

नयन-मनोहर और कलंक-रहित शरीरधारी तथा नवीन अभ्युदयको प्राप्त बालचन्द्रमा सरीखे राजकुमारको सब लोग सिर झुकाकर प्रणाम करने लगे।

एक दिन महाराज अजितञ्जय मनोहर सभाभवनमें युवराज सहित सुखसे बैठे हुए अच्छी भेंट लेकर सेवामें उपस्थित अनुगत मण्डलाधिपति नरेशोंकी मण्डलीको निहार रहे थे।

कुमार अजितसेनसे और चण्डरुचि असुरसे पहलेका कुछ वैर था। उसी वैरको स्मरण कर वह क्रूर प्रसिद्ध असुर सब सभासदोंको मूर्छित करके राजकुमारको हर ले गया। असुरकी मायासे होनेवाला मोह क्षणभरमें जाता रहा। होशमें आकर राजाने विस्मयके साथ देखा कि सारे सभाभवनमें कुमारका कहीं पता नहीं है।

राजाने कहा—सभाभवनमें मुझे कुमार नहीं देख पड़ते, यह क्या बात है? इन्द्रजाल है, या धातु-विकार है, अथवा मुझे ही भ्रम हो रहा है? या पूर्वजन्मके विरोधको याद कर कोई कुटिल निर्दय मायावी राक्षस या असुर मेरे प्राण-प्यारे पुत्रको एकाएक हर ले गया है?

इस प्रकार रानीसहित सोच-विचार करते तब राजाको कुमार-रहित सभा जीर्ण जङ्गलकी तरह जान पड़ी और वे व्याकुल हो उच्च स्वरसे इस प्रकार विलाप करने लगे—

हे मेरी गोदके आभूषण! सहसा मुझे यों असहाय अवस्थामें छोड़कर हाय तुम कहाँ चले गये? मुझे शीघ्र दर्शन दो। मैं तुम्हारे बिना अपने प्राण धारण करनेमें सर्वथा असमर्थ हूं। लड़कपनमें तुम्हारे ढिठाई करने पर भी मैंने कभी तुमको कुछ कठोर वचन नहीं कहे। फिर क्या कारण है कि तुम अत्यधिक स्नेह करनेवाले पितासे आज अकारण ही तुम रूठ गये!

अपने अमृतमय वचन सुनाकर पहलेकी तरह मेरे कानोंको

सुखी करो। मैं तुम्हारा पिता तुम्हारे अकारण अनिष्टकी आशङ्कासे व्याकुल हो रहा हूं। तुम मेरी दशापर क्यों नहीं ध्यान देते? अच्छा, पुत्र! अगर किसी कारणसे तुम मुझसे अप्रसन्न हो गये तो अपनी इस माता पर जो तुम्हारा स्वाभाविक स्नेह था उसे अकारण ही क्यों तुमने तोड़ दिया?

गुणी! सैकड़ों आशाओं और मनोरथोंके आश्रय-स्थल और अपने वंश रूप सागरके चन्द्रमा जो तुम हो उन्हें छीन लेनेवाले विधाताने सचमुच पहले निधि दिखाकर पीछेसे आँखें फोड दीं (गुड़ दिखाकर ईंट मारी)।

हे स्वजन-वत्सल! तुम तम (अज्ञान, पक्षान्तरमें अन्धकार) को लांघकर तपते हो और भुवन-रूप उदयाचलमें उदित उसके चूड़ामणि (पक्षान्तरमें सूर्य) हो, तुमसे रहित सब दिशाओंमें मुझे अन्धकार ही अन्धकार देख पड़ता है। मेरे जीवनके दिन उत्सव रहित हो गये। मेरे आत्मीय स्वजन असहाय हो गये। और तुम्हारे असह्य वियोगसे दुर्बल शरीरवाला मैं आज मुर्दा हो रहा हूं। मेरे यश, सुख, वैभव तथा तेजका कारण तुम ही थे।

हे भुवनभूषण! तुम्हारे जानेसे ये सब तुम्हारे साथ ही एक-साथ चले गये। ललित भौंह और नेत्रोंवाला वह सुन्दर मुख और चन्द्रमाकी चाँदनीके समान शीतल और मधुर तुम्हारे वे वचन, सब चीजें, हे पुत्र! मेरे पापोंसे स्मृति शेष रह गईं। मुझ पापीका वह परम उत्सवका दिन फिर भी आवेगा जिस दिन मैं तुम्हारे मुख-कमलको देखूंगा। यदि तुम निठुर होकर जानेके लिए उत्सुक थे तो हे पुत्र! अपने साथ खेले हुए इन अपने मित्रोंसे स्नेहका नाता न तोड़ना था। इनसे भी तुमने कुछ बातचीत नहीं की।

अपने स्वामीके दुस्सह कष्टसे दुःखित असहाय और विलाप करते हुए इन नरेश-भ्रमरोंको तो शीघ्र अपने चरण कमल

दिखाकर सुखी बनाओ। हे पुत्र! वर्षाकालके समान इस असह्य शोकके दुर्दिनमें जो बन्धु-बान्धवोंके आंसुओंकी नदी बढ़ रही है उसे सुखानेके लिए एकाएक प्रकट होकर ग्रीष्म ऋतु बन जाओ।

पुत्रशोकसे घायल हृदयवाले राजा इस प्रकार विलाप करते हुए रोने लगे। क्षणभर उनके दुःखको दूर करनेके लिए कृपा करके ही मानों मूर्च्छाने उन्हें अपनी गोदमें सुला लिया। चन्दनका जल छिड़कना आदि उपायोंसे कुछ देरमें राजाको होश आया तो उन्होंने अन्तरिक्षमें तपोभूषण नामक चारण-मुनिको देखा। अपने शरीरकी अनुपम कान्तिके मण्डलमें घिरे हुए, मण्डलयुक्त चन्द्रमाके समान शोभायमान उन मुनिराजको, सब सभासद लोग विस्मयके साथ गर्दन उठाकर निहारने लगे।

उन्हें देखकर सब लोग अपने मनमें तर्क करने लगे कि ये सूर्यनारायण तो नहीं हमारे राजाको विलाप करते देख करुणासे कोमल भाव धारण कर समझानेके लिए आ रहे हैं? इतनेहीमें वे मुनिराज शीघ्र ही राजाके निकट आकर उपस्थित हो गये।

अपने तपोमय शरीरके तेजसे प्रकाशमान उन मुनिराजको देखते ही राजाका पुत्र-वियोग-शोक एकाएक कम हो गया। [illegible] रजवाले मुनिके चरण पृथ्वी पर पहुंचने भी नहीं पाये कि राजाने पहले ही जल्दीसे पास पहुंचकर सादर अपना उच्चासन दिला दिया। धर्मधारी लोग सज्जनोंमें अर्घ आदि पूजाकी सामग्री

नामको भी धूल नहीं थी तथापि राजाने शान्तिजलके लिए सादर आनन्दाश्रुमिश्रित जलसे उनके पैर पखारे।

वे साधुप्रवर जब आशीर्वाद कर चुके तब कुन्द-कुसुम-सदृश दन्त-प्रभाकी किरणोंसे उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलिसी अर्पण करते हुए राजाने विनयपूर्वक यों कहा-मुनिवर! पूर्ण काम होकर भी केवल मुझ पर अनुग्रह करनेके लिए जो आप यहां पधारे इसमें मैं इस समय चन्द्रमाके समान, उज्ज्वल कीर्तिवाला धन्य, कृतार्थ और जगत्‌भरका मान्य हो गया। आप कृतकृत्य हैं, इसलिए आपको कोई कामना नहीं है और आप समदर्शी हैं, इसलिए आपको किसी पर अनुराग भी नहीं है।

बात यह है कि आप सरीखे सिद्ध लोग जगत्‌के हितके लिए ही इस प्रकार भ्रमण करते रहते हैं। मैं इस समय ऐसे पुत्रवियोग-दुःखके सागरमें डूब रहा था, मेरी बुद्धि मूढ़सी हो रही थी, तथापि आपके दर्शनसे मुझे परम सन्तोष प्राप्त हुआ। इसका कारण यही है कि आप पुत्र आदि बन्धुओंसे भी बढ़कर बन्धु (हितकारी) हैं।

कानोंको आनन्ददायक ऐसे वचनोंको कहते हुए और भक्ति-भारसे नम्र राजासे वे भव्यजनरूप कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले सूर्यरूप मुनीश्वर इस प्रकार मनोहर वचन बोले—राजन्! अपनी दिव्य दृष्टिसे मैंने देखा कि तुम प्रिय पुत्रके वियोगमें दुःखी हो रहे हो। इसीसे, तुम्हारे गुणों पर अनुराग होनेके कारण यहां मैं आया हूं।

सच बात तो यह है कि गुणों पर किसके मनको अनुराग नहीं होता? तुमने शास्त्रका अभ्यास किया है और तुम्हारी बुद्धि तत्त्वज्ञानमें लग रही है। तुम्हारा यह अन्तिम शरीर है। इसके बाद तुमको निर्वाणपदकी प्राप्ति होगी। तुमको संसारकी स्थिति बतलाना उसी तरह है जैसे स्वर्गाधिप इन्द्रको स्वर्गकी कथा सुनाना।

सब शरीरधारियोंको प्रियका वियोग और अप्रियका संयोग होना इस संसारका साधारण नियम है। इस प्रकार अपनी बुद्धिसे विचार करके ज्ञानी लोग विषादसे अपने मनको खिन्न नहीं करते। इस कारण अपने शरीरको संताप देनेवाला यह शोक करना तुम्हें उचित नहीं है।

भाग्यसे प्राप्त ऐसी विपत्तियोंके अवसर पर कायर लोग ही खेदको प्राप्त होते हैं, धीर (ज्ञानी) लोग नहीं। पृथ्वी मण्डल-मण्डन, अपने पुत्रके अकुशलकी आशंका करके तुम कुछ भी खेद न करो। समृद्धिको प्राप्त तुम्हारा कुमार कुछ ही दिनोंमें आकर तुमसे मिलेगा।

इस प्रकार निश्चित अर्थवाली बातें कह कर वे मुनिवर अपने आश्रमको चले गये और राजाने भी सब अनुगत नरेशों, सभासदों और मन्त्रियोंको विदा करके दिनके सब कृत्य पूरे किये।

राजाने जब जाना कि "प्रसिद्ध कुलशोभावाला पुत्र कुछ ही दिनोंमें आ जायगा और उस बल तेजवाले कुमारका परम अभ्युदय होगा" तब वे मुनिवरके वचनों पर विश्वास करके सुखपूर्वक रहने लगे; वन्दीजन उनकी चन्द्रकला-तुल्य कीर्तिका कीर्तन करते थे।

इति पंचमः सर्गः

षष्ठ सर्ग

इधर उस असुरने, जो राजकुमारको क्रोध करके हर ले गया था, राजकुमारको आकाशमार्गमें लेजाकर घुमाकर फेंका। वे राजकुमार मनोरम नाम सरोवरमें आकर गिरे। उसके गिरनेसे सरोवरके उग्र ग्राह आदि जीव ऊपरको उछल पड़े। आकाशसे सरोवरमें उन राजकुमारके गिरनेसे पानी जो चारों ओर उछला तो घड़ी भरके लिये जलमय स्थान स्थलमय हो गया और स्थलमय स्थान जलमय हो गया।

वे कुमार पूर्व-पुण्यकी शक्तिको प्रकट करके घने घूंसे और कुहनियोंके प्रहारोंसे मछली आदि जलजन्तुओंको चूर्ण करते हुए पानीसे तैरकर किनारे आ गये। श्वेत-अरुण-श्यामवर्ण दृष्टि डालकर सब दिशाओंको विचित्र वर्णकी बनाते हुए उस सरोवर-तटस्थ वीर कुमारने पुरुषा नाम एक अटवी (जंगल) देखी। वह जंगल सब ओरसे अगम्य था। उसमें चारों ओर लम्बे चौड़े घने वृक्षोंके झुंड छाये हुए थे।

सूर्यके पाद (किरण, पक्षान्तरमें पैर) भी जैसे कुश-कण्टकके भयसे ही उस जंगलके भीतर नहीं पड़ते थे। उस जंगलके भीतर सिंहके तमाचेसे फटे हुए हाथियोंके मस्तकोंसे गिरकर बिखरी हुई गजमुक्ताओंको देखकर जान पड़ता है कि वहांके ऊँचे वृक्षोंकी डालियोंसे टूटे हुए तारागण आकाशसे गिर पड़े हैं।

अत्यन्त भयानक भीलोंके भल्ल बाणोंसे घायल मृगोंके रुधिरसे लाल हुई वहांकी भूमि, वनदेवियोंके पैरोंके महावरसे रंगीसी मनोहर रहती है। बहेलियोंके हाथों मारे गये बाघोंकी खालें एक ओर पेड़ोंकी शाखाओं पर पड़ी सूखती हैं, और दूसरी ओर सिंहोंके मारे हाथियोंकी हड्डियोंके ढेर लगे हुए हैं। वह जंगल मृत्युपुरीके समान लोगोंके लिए भयानक हो रहा था।

तरह घुस आया है। क्या तुझे अपने बलका बड़ा घमण्ड है या तू कोई विशेष विद्या जानता है? मैं इन विशाल बाहुओंसे इस शिखर-सहित पर्वतकी रक्षा करता हूं। मेरी आज्ञाके बिना देवता या दानव, कोई भी यहाँ घुस नहीं सकता। जलके झरनोंसे मिलकर ठण्डी हवा यहाँ चलती है।

ऐसे इस पहाड़ पर मेरे प्रतापके कारण सूर्यकी किरणें भी ठण्डी ही रहती हैं, तपती नहीं हैं। हे मूर्ख! तुझे किसने बहका दिया है जो तूने मरनेके लिये मेरे विरुद्ध यह कार्य किया? अथवा तूने मेरा नाम ही नहीं सुना। क्योंकि जानने बुझनेवाला आदमी सोचे विचारे बिना काम नहीं करता।

जयलक्ष्मीके आधार-स्वरूप राजकुमारने उस पुरुषको ऐसी घमण्डभरी और बाणके समान मर्म्मस्थलोंको काटनेवाली वाणी सुनकर कुपित होनेपर भी स्हूलियतके साथ यह उत्तर दिया-इन तेरी बे-मतलबकी बातोंसे कायरोंके सिवा निर्भय हृदयवाला वीर पुरुष कभी डर नहीं सकता। मैं अकेला सुरों और असुरोंसे भिड़नेवाला योद्धा हूं। तुझ सरीखे मनुष्यकीटोंकी गिनती ही क्या है? इस लिए अब इस बकवादको बन्द कर। सज्जन लोग बहुत थोड़ी बातचीत करते हैं। अगर पौरुष हो तो वार कर। नहीं तो अभी मेरे घूँसेसे पिस जायगा।

राजपुत्रके यों कहते ही उस पुरुषने वेगसे वह लोहेका लठ चलाया। राजपुत्रने भी उस प्रहारको बचाकर उस पुरुषको अपनी भुजाओंके भीतर दबा लिया। लड़नेके लिए जिनके अंगोंमें खुजली उठ रही हो ऐसे दो लोकपालोंके समान एक दूसरेसे लिपटे हुए वे दोनों योद्धा देख पड़ते थे। छिपी हुई वनदेवतायें निश्चल होकर वृक्षजालोंके भीतरसे यह तमाशा देख रही थीं।

पैंतरे, लपट और हाथों पैरोंकी चोटोंसे प्रचण्ड शक्तिवाले दोनों योद्धा बहुत देर तक लड़ते रहे। कभी एककी और कभी

लिए हिरण्य नामक देव हुआ। पहले जन्ममें मैं ही सूर्य था। वह शशि पहलेका वैर चुकानेके लिए इस जन्ममें तुमको हर लाया है। मैं तुम्हारा मित्र हूं।

वह हिरण्य नामक देव इस प्रकार मधुर मनोहर अक्षरोंवाले वचन कहकर सहसा अन्तर्द्धान हो गया।

राजकुमारने उस देवताके प्रभावसे अपनेको उस घोर वनके किनारेपर खड़ा पाया। राजकुमार अपने मनमें कहने लगा कि यह कैसी अद्भुत घटना है कि मैं एकाएक वनके किनारे आ गया।

तब राजकुमारको मालूम पड़ा कि यह सब उसी हिरण्य नामक देवताकी महिमा है। तब वह राजकुमार वनको छोड़कर ऐसे देशमें आया जहां निरन्तर नगर और गांव बसे हुए थे। उसने देखा कि सब तरफ डरके मारे लोग भागे जा रहे हैं।

तब डरके मारे जिसके रोमांच हो आया है ऐसे एक आदमीके पास जाकर राजकुमारने कौतूहलवश भागनेका कारण पूछा। राजकुमारके इस प्रश्नसे विरक्त होकर उस पुरुषने कहा कि तुम क्या आकाशसे फट पड़े हो जो इस प्रसिद्ध बातको भी नहीं जानते?

यह धन-धान्यसे परिपूर्ण प्रसिद्ध अरिंजय नामक देश है। नवीन अन्नोंके अंकुरोंसे हरीभरी यहांकी पृथ्वी कभी शोभाहीन नहीं होती। इस देशकी नाभि अर्थात् बीचोबीचमें श्रेष्ठ विपुलपुर है। वह अपने नामके अनुसार विपुल अर्थात् भारी है। ऊँचे महलोंकी चोटियोंसे आकाशको छूता हुआ वह पुर विद्याधरोंकी नगरीके समान जान पड़ता है।

इस नगरका राजा विजयी जयवर्मा है। जिसके कोमल कर (राजाके पक्षमें जमीनका लगान और चन्द्रमाके पक्षमें किरणें) से सन्तापहीन पृथ्वीको चन्द्रमाके उदयकी पर्वा नहीं रहती।

सूर्यकी आभाकी तरह आशा (दिशा और रानीके पक्षमें प्रार्थियोंकी आशा) पूर्ण करनेवाली, कामदेवकी पत्नी रतिकी तरह कामसुख (रतिसुख और दूसरे पक्षमें कामनाका सुख) देनेवाली, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली उन युद्धमें विजयलक्ष्मी पानेवाले राजाकी स्त्रीका नाम जयश्री है। इन स्त्री-पुरुषोंके परम सुन्दरी शशिप्रभा नाम कन्या हुई। चन्द्रमाके समान उसका सुन्दर शरीर अपनी लुनाईके सागरमें जैसे तैर रहा था। महेंद्र नामक एक राजाने जयवर्मासे उसकी कन्यासे विवाह करनेकी इच्छा जताई।

राजा राजी हो गया। लेकिन ज्योतिषीने मना किया, कहा—इसकी मृत्यु निकट है। मनोरथ विफल होनेपर सब राजोंके साथ मिलकर उसने जयवर्माके ऊपर चढ़ाई कर दी है।

इस समय युद्धमें जयवर्माकी सब सेनाको मारकर वह पुरको घेरे हुए है। सो अपने विनाशकी आशंकासे इस राष्ट्रके सब आदमी भागे जा रहे हैं।

उस पुरुषका यह कथन सुनकर अजितसेन युवराज विपुल नगरकी ओर चला। उसने वहाँ जाकर देखा, शत्रुकी सेना उस नगरको इस तरह घेरे हुए है जैसे चन्द्रोदय होनेपर उमड़े हुए समुद्रकी लहरें किनारेके जलको घेर लेती हैं। अननुमत होनेसे अविचलित-बुद्धि वह राजकुमार राजाकी निषेधकी आज्ञा न मानकर हाथियोंसे परिपूर्ण मार्ग होकर पुरके फाटककी तरफ चला।

तब महेंद्र राजाके सैनिकोंने उससे कहा—क्या तू अपने जीवनसे ऊब गया है? या तुझे अपने शिरसे काम नहीं है? जो अन्यके लिये अनतिक्रमणीय राजाकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर बे-खटके इधर चला आ रहा है? उसके यों कहने पर राजकुमारको क्रोध चढ़ आया। धीर कुमारने यह कहते कहते

एकके हाथसे धनुष छीन लिया कि अगर तुममें ताकत हो तो अपने राजाके साथ अपने प्राण बचाओ।

वह चतुरंगसेना समुद्रके समान थी। पहाड़ जैसे ऊंचे हाथी उसमें उग्र घड़ियाल थे। चालमें हवासे लागडाँट रखनेवाले घोड़े ही उसमें लहरी-लीलाका अनुकरण कर रहे थे। पुरवासियोंने उस समुद्रमें युवराजको मन्दराचलके समान फिरते देखा। विप-वह्नि-शिखरके समान बाण-वर्षा करते हुए सर्पसदृश योद्धा लोगोंको गरुड-समान युवराजने विमुख कर दिया।

उसके बाद महेन्द्रके पास वह पहुंचा। सूर्यकी उल्का-ज्वालाके समान बाण-समूहकी वर्षा करनेवाले महेन्द्र पर लीलापूर्वक एक बाण चलाकर युवराजने उसकी राज्यलक्ष्मीको विधवा कर दिया।

शत्रुपक्षके लिए दावानलके समान उस अकारण मित्र राजकुमारको साथ लेकर जयवर्माने अपने पुरमें प्रवेश किया। पुरमें सब मकान और महल सजाये गये और बड़े बड़े उत्सव होने लगे। राजाके पीछे चलते हुए राजकुमारने बड़े बड़े झंडोंसे सुशोभित राजभवनमें प्रवेश करते समय पुरवधुओंके हृदयोंमें उन्मादके ऐसे विविध भाव पैदा कर दिये।

राजा जयवर्माने कुमारका इन्द्रके समान सुडौल सुन्दर शरीर और कान्ति तथा अद्वितीय पौरुषको देखकर बात किये बिना ही यह जान लिया कि यह किसी उच्च जाति और ऊँचे घरानेका लड़का है। इन्द्रके समान पराक्रमी कुमार राजासे सत्कार पाकर कुछ दिन वहाँ रहे। अपने प्रतापसे सब राजाओंको दबाकर कुमारने सारी पृथ्वीपर जयवर्माका राज्यासन फैला दिया।

एक दिन राजा और रानी दोनों एक पलंग पर बैठे हुए थे। इसी समय पराये मनका भाव जान लेनेमें चतुर शशिप्रभाकी सहेलीने आकर पहले प्रणाम किया और फिर वह इस प्रकार कहने लगी—राजन्! आपकी कन्याने महेंद्रको परास्त करनेवाले

उस युवकको जबसे देखा है तबसे यह हाल है कि वह न सुगन्धित अंगराग लगाती है और न माला इत्यादि धारण करती है।

इस प्रकार उसे अपने शरीरकी भी सुधबुध नहीं है। वह उदास शून्य मनसे कुछ सोचा करती है। उसके कपोल पीछे पड़ गये हैं। दासियाँ अन्न-जल ले जाती हैं तो वह बिना ज्वरके भी अरुचि दिखलाती है। उसके अँग पालेके मारे कमलके समान हो रहे हैं। उसके हृदयमें चिन्ता उठते हो गर्म आँसुओंसे उसके भीतरी तापका पता लग जाता है। वियोगकी आगके धुएँके समान गर्म और लम्बी साँसोंसे कमलके धोखे मुँहके पास आनेवाले भौंरे दूर हट जाते हैं।

"इसके मुखकी शोभाने मेरी शोभाको चुरा लिया है" मानों यही सोचकर चन्द्रमा कोपसे मृगनयनी राजकुमारी पर बारबार विष बहानेवाली किरणोंको छोड़कर उसे मूर्च्छित कर देता है। सखियाँ उसके सन्तापको कम करनेके लिए जो नवपल्लवोंकी सेज बनाती हैं वह भी उसके कमलकोमल शरीरको दावानलकी ज्वालाके समान जलाती है।

भुजंगके साथी मलयाचलके चन्दनका लेप अगर ताप पैदा करे तो ठीक भी है; लेकिन आश्चर्य तो यह है कि दक्षिण पवन भी उसे जलाता है। रतिके रूपको हरनेवाली राजकुमारी पर बहुत ही कुपित होकर कामदेव अवश्य ही उसके विनाशके लिए असाधारण प्रयत्न कर रहा है। स्वामिन्!

इस लिए विचार कर जो अच्छा समझिए वह शीघ्र कर डालिए। नहीं तो वह कमलमुखी कामदेवकी दसवीं दशा (मरण)को प्राप्त हो जायगी। अपने इरादेके अनुकूल ही अपनी कन्याकी रुचि देखकर हर्षसे राजाके रोमाञ्च हो आया।

दूसरे दिन राजाने एकाएक ज्योतिषीको सादर बुलाकर मुहूर्त

पूछा। उसने जो शुभ दिन बताया उस दिन जयवर्माने कन्याका वाग्दान कर्म सम्पन्न किया। प्रसिद्ध प्रतापी राजकुमार कामदेवके बाणोंकी चोटें सहते हुए उस दिनसे प्रियतमासे मिलनेके लिए उत्कण्ठित होकर ब्याहके दिन गिनने लगे।

अपने शिखरोंसे तारागणको ऊपर उठाये और अपने विस्तारसे उस दिशाको रूंधे हुए विजयार्ध नामक एक प्रसिद्ध पर्वत है। उस पर आकाशचारी विद्याधर लोग बसते हैं। वह बहुतसी पृथ्वीसे सुशोभित चाँदीका पहाड़ चारों ओर चन्द्रमाकी ऐसी श्वेत किरणोंको फैलाता हुआ आकाशरूपी सर्पकी श्वेत केंचुलके समान जान पड़ता है।

उस पर्वतके दक्षिण ओर आदित्यपुर नामक एक भारी रमणीय पुर है। चांदीकी चमकसे उज्ज्वल वह पुर, जान पड़ता है, देवलोकका प्रतिबिम्ब पृथ्वी पर आपड़ा है। उस पुरका शासक बलवान् धरणीधर नामका एक विद्याधर था। जिसने इन्द्रके समान सब आकाशचारी राजों (इन्द्रके पक्षमें पर्वतों) को विपक्ष (पर्वतोंके पक्षमें पक्षहीन और राजोंके पक्षमें शत्रु) बनाकर विनष्ट कर दिया—सिर उठाने लायक नहीं रक्खा।

एक दिन वह राजा अपनी सभामें बैठा था। उसने देखा कि श्रावक-व्रत-निरत और जपमाला आदि यतियोंके चिह्न धारण किये प्रियधर्म नामक ब्रह्मचारी आ रहे हैं। विद्याधरराजने स्वयं सिंहासनसे उठकर बहुतसे धन-रत्नादिके साथ पूजा करके उनका स्वागत किया। यह बात निश्चित है कि उचित कर्तव्यकी जान-कारी प्राप्त करनेके लिये बड़े लोगोंकी बुद्धियां पराये उपदेशकी अपेक्षा नहीं रखतीं।

चरणसेवाके लिए आये हुए सब विद्याधर बन्धुओं और मन्त्रियोंको विद्याधरराज, मैं योगी हूं, तथापि न जाने क्यों मेरा मन बान्धववत्सल जो तुम हो उनके प्रति स्नेह करता है।

अहो, संसारमें यह मोह बड़ा ही प्रबल है। हे मानहीको अपना सर्वस्व समझनेवाले महाराज, मेरी मति सब तरह तुम्हारा प्रिय करना चाहती है। मैं सब तरह तुम्हारा शुभचिन्तक हूं। मैंने सुधर्मा नामक मुनिसे जो तुम्हारे संबंधमें सुना है वह कहता हूं, सुनो-अरिंजय नामक देशमें इन्द्रपुरीके विपुल नामक नामक नगर है।

सब वैरियोंको अपने वशमें किये हुए जयवर्मा नाम राजा उसका स्वामी है। मृगनयनी होने पर भी विलासचतुर और चन्द्रमुखी होने पर भी लांछन हीन शशिप्रभा नाम उस विजयी और पृथ्वी मण्डलसे कर लेनेवाले राजाके एक कन्या है। कामदेवके धनुषके समान लोचदार अंगोंवाली उस कन्याको जो भाग्यशाली पुरुष ब्याहेगा वह पुण्यशाली पुरुष तुमको मारकर इस भरतक्षेत्र पर आधिपत्य करेगा।

भाग्यके वज्रके समान चोट पहुंचानेवाली यह मुनिकी वाणी सहसा सुनकर विद्याधरराजको बड़ा खेद हुआ। घबराहटके मारे शरीरसे इतना पसीना निकला कि वे भींग गये। यतिवरसे उन्होंने कहा—हे गुणवत्सल! इस बारेमें मेरी चिन्तासे आप व्याकुल न हों। मैं ध्यान देकर इसका कोई प्रतीकार करूंगा।

इस प्रकार उन विद्याधरराजाने कहकर सिर नवाकर उन मुनिवरको विदा किया। मनमें अपने कर्त्तव्यको सोचकर उस भावको छिपाये हुए विद्याधरराजने वह दिन विताया। दूसरे दिन सारी सेना साथ लेकर मणिमय क्षुद्रघंटिकाओंसे युक्त विमानोंके द्वारा उसने जयवर्माके पुरको जाकर घेर लिया। सब पुरवासी भयभीत होकर उसके इस उद्यमको निहारने लगे। उद्धत नामक बातचीत करनेमें होशियार दूतको अपना अभिप्राय बतलाकर उसने जयवर्माके पास भेजा। उस दूतने सभामें जाकर, अपना परिचय देकर, जयवर्मासे कहा—

हे राजन्! जिनकी आज्ञाको कोई नहीं टाल सकता वे धरणीध्वज इस सार्थक नामको धारण करनेवाले विद्याधर चक्रवर्ती मेरे द्वारा आपसे कहते हैं कि—आपके कोई सचमुच ही चन्द्रमाकी प्रभाके समान सुन्दरी शशिप्रभा नाम कन्या है। मैंने लोगोंसे सुना है कि तुमने किसी विदेशीको अपनी वह कन्या दे डाली है। आप ऊँचे घरानेके हैं। आपका यश निर्मल है। आपको ऐसा करना कभी उचित नहीं है। ऐसा करिएगा तो सारे पृथ्वीमण्डलमें आपकी बदनामी हो जायगी।

यदि अपनी कन्याकी प्रीतिके कारण घर आये हुएको कोई दामाद बनाना चाहे तो उसे भी अवश्य ही कुलका ख्याल करना चाहिए। क्योंकि वरमें वही मुख्य देखनेकी बात होती है। इसको तुम अपना पुण्य ही समझो जो तुमने अब तक अपनी कन्या उसे नहीं ब्याह दी। सो बस अब अपने हाथसे मेरे हठ करनेके पहले ही अपनी वह कन्या मुझे देदो।

दूतके इस कथनसे कुपित होकर जयवर्माने संक्षेपमें यह उत्तर दिया—दूत! तू बुद्धिमान होने पर भी लौकिक व्यवहारमें कुछ भी जानकारी नहीं रखता। कुलीन हो या अकुलीन, जिसे मैं कन्या दे चुका उसे दे चुका। अब वह बात पलट नहीं सकती है अगर कोई बलपूर्वक उसे लेनेकी शक्ति रखता हो तो वह शीघ्र आवे, विलम्ब क्यों कर रहा है? दूतको विदा करके जयवर्माने शीघ्र ही यह सब समाचार अजितसेनको सुनाया।

तब क्रोधसे भौंहें टेढ़ी किये कुमारने भुजदण्डोंको देखते देखते अपने ससुरसे कहा—शत्रुओंके सिरमें शूल पैदा करनेवाले मेरे बने रहते आपको इस प्रकार व्याकुल न होना चाहिए। आप इस दुष्ट विद्याधरको अभी कालके गालमें जाते देखिएगा।

इस प्रकार जयवर्माको धीरज देकर अजितसेनने अपने हृदयमें हिरण्य नामक देवका स्मरण किया। स्मरण करते ही वह दिव्य

शस्त्रोंसे परिपूर्ण रथ लेकर सामने उपस्थित हुआ। विस्मित पुर-वासियों और शत्रुओंके सामने उस रथ पर राजकुमार सवार हुआ। हिरण्य उसका सारथी बन गया।

वह बाणोंकी वर्षा करता हुआ शत्रुसेनाकी ओर चला। सूर्यके समान तेजसे दुर्निरीक्ष्य राजकुमारको देखकर भारी लज्जासे विवश होकर बाण, शक्ति, चक्र, कुन्त आदि शस्त्रोंको हाथोंमें लिये हुए विद्याधरोंने क्षात्र धर्मका ख्याल न करके एक-साथ कुमार पर आक्रमण किया।

धैर्यशाली राजकुमारने, सूर्य जैसी अपनी किरणोंसे कुमुदसमूहको संकुचित कर देता है वैसे ही फुर्तीके कारण जिनका छूटना नहीं देख पड़ता उन बाणोंसे सबको संकुचित कर दिया। राजकुमारको मनुष्योंके अस्त्रशस्त्रोंसे अजेय समझकर और अपनी सेनाको नष्ट होते देखकर धरणीध्वज विद्याधरने मोहित करनेके लिए तामस अस्त्र छोड़ा। कुमारने देखा, वह अस्त्र सब दिशाओंके प्रकाशको मिटाकर अन्धकार करता हुआ आ रहा है, हिरण्यके दिये हुए सूर्यास्त्रको छोड़कर राजकुमारने उस अस्त्रके प्रभावको कम कर दिया।

राजकुमारने शत्रुके सर्पास्त्रको गरुड़ास्त्रसे, अग्न्यस्त्रको वारुणास्त्रसे, पर्वतास्त्रको वज्रास्त्रसे, मोहन अस्त्रको उद्यमास्त्रसे, मेघास्त्रको पवनास्त्रसे और सिद्धयक्षको विघ्नविनायकास्त्रसे रोका। सब शस्त्रोंके प्रतिहित होने पर म्यानसे तरवार निकाल कर क्रोधके मारे वेगसे वह विद्याधर दौड़ा।

शशिप्रभाके प्यारे अजितकुमारने अमोघशक्ति मारकर धरणी-ध्वजको मार डाला। शत्रुसेनाके नायकके मरजाने पर सेनाके बचे हुए विद्याधर पक्षियोंके समान भागकर आकाशमें उड़कर विजयार्ध पर्वत पर चले गये। तब हिरण्यको विदा करके अक्षत-शरीर राजकुमारने पुरवासियोंके किये उत्सवोंसे मनोहरपुरमें प्रवेश किया।

६

थोड़े ही समयमें सब प्रकारकी तैयारियाँ करके महान् इच्छावाले जयवर्माने एक पवित्र दिनमें भारी उत्साह और उत्सवके साथ कन्याका ब्याह कर दिया ।

विधिपूर्वक राजकुमारीसे ब्याह करके कुछ दिन वहाँ रहकर ससुरकी अनुमतिसे उत्सुक बन्धुबान्धवोंसे मिलनेके लिये राजकुमार अपनी पुरीको चल दिये । पिताको आश्वासन देनेके लिए चञ्चल हो रहा है चित्त जिनका ऐसे राजकुमारने उस बहुत दिनोंके रास्तेको बहुत थोड़े समयमें समाप्त कर दिया । सच है, बन्धु-समागम किसे उत्सुक नहीं बना देता ?

अजितसेनके पिताने जब सुना कि शत्रुको मारकर भारी सम्पत्ति और स्त्री प्राप्त करके राजकुमार आये हैं तब आनन्दके मारे उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया । परिजन और पुरवासियोंके साथ पुरके बाहर आकर राजाने पुत्रका स्वागत किया । आंखोंमें आनन्दके आँसू भरे हुए राजाने पुत्रको आगे करके पुरमें प्रवेश किया ।

इति षष्ठः सर्गः
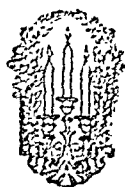
सप्तम सर्गः

पूर्वजन्ममें पुण्यकर्म करनेवाले इन्द्रके समान तेजस्वी चक्रवर्ती अजितसेनको शत्रुचक्रको काटनेवाला एक श्रेष्ठ चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। किरणोंके जालसे आकाशमण्डलको व्याप्त किये हुए होनेके कारण दुस्सह और दुर्निरीक्ष्य उस चक्ररत्नको देखकर मनुष्योंने समझा कि सेवा करनेके लिए राजाके पास मानों सूर्यका बिम्ब आया है। शत्रुओंको डरानेवाली और अपनी कान्तिसे आकाशको प्रकाशित करनेवाली तर्वार (खड़गरत्न) उन चक्रवर्ती महाराजको प्राप्त हुई। मानों उस तर्वाररूपी जीभको निकाले स्वयं यमराज उनकी सेवा करने लगे।

वज्र, धूल, जल और घामको रोकनेवाला चन्द्रमाके समान श्वेत छत्ररत्न उनके सिरपर देखकर जान पड़ता था कि लक्ष्मीने अपनी सेवा जतानेके लिये उनके सिरपर अपना करकमल रक्खा है। समुद्रके जलमें तैर जाने आदि कामोंमें उपयोगमें आनेवाला श्रेष्ठ चर्मरत्न उन महाराजको पुण्यके वैभवसे प्राप्त हुआ। उज्ज्वल ज्योतिवाला और विस्तृत मण्डलवाला आकाश मानों उन चक्रवर्तीकी महिमासे परास्त हो संकुचित होकर चर्मरत्नके रूपमें पृथ्वी पर उनके आश्रयमें आ गया।

पर्वत और वज्र तोड़नेमें प्रवीण श्रेष्ठ दण्डरत्न उन्हें पूर्वजन्मके लिये शुभ कर्मोंके द्वारा प्रेरित होकर प्राप्त हुआ। अपनी प्रभासे सम्पूर्ण आकाश और दिशाओंको प्रकाशित किये हुए वह दण्डरत्न अजितसेनके भयसे जिनकी छाती धड़क रही है उन इन्द्रके हाथसे गिरे हुए वज्रके समान शोभायमान हुआ।

सूर्य आदिके प्रकाशकी पहुंच जहाँ पर नहीं है वहांके अन्धकारको मिटानेवाला चन्द्रकलाके समान उज्ज्वल काकिणी नामक रत्न किङ्करके समान उनकी सेवामें उपस्थित हुआ। वर्षाकालीन

घनघटाके समान घने अन्धकारको दूर करनेमें समर्थ, लक्ष्मीका रत्न-दर्पण ऐसा, प्रज्वलित दीपककी शिखाके समान प्रकाशमान चूड़ामणि नामक रत्न उन्हें प्राप्त हुआ। उनके वहते हुये मदजलसे शोभित और चलते हुये चंवरोंसे सेवित गजरत्नको देखकर यह जान पड़ता था कि उनके गौरवगुणसे परास्त महामेरु पर्वत हाथीके मिससे सेवा कर रहा है। उनकी अप्रतिहत-गति बड़े बली मनोजव अश्वरत्नको देखकर जान पड़ता था कि स्वयं वायु-देव अश्वके मिससे उनकी सेवा कर रहे हैं।

उनका सेनापतिरत्न भी बड़ा ही शूर और शत्रुओंको भयंकर होनेके कारण कार्तिकेयके समान था। कार्तिकेय शत्रुओंके लिए असह्य-शक्ति नामक शस्त्रसे भयानक है और वह भी शत्रुओंके लिए असह्य-शक्ति (सामर्थ्य) से भयानक था। कार्तिकेयने तेजसे तारकाधिप अर्थात् तारकासुरको जीता है और उसने भी तेज अर्थात् कांतिसे तारकाधिप (चन्द्रमा) को जीत लिया था। देवता, मनुष्य और अशुभ ग्रहोंकी लाई हुई आपत्तियोंको दूर करनेकी क्षमता रखनेवाला उनके घर पुरोहितरत्न देहधारी पुण्य-पुञ्जके समान जान पड़ता था।

अभिलाषा करते ही उसी समय इन्द्रके महलोंके समान भवनोंको बनानेवाला ब्रह्मा या विश्वकर्माके समान सब बातोंमें कारीगर स्थपति (शिल्पिरत्न) उनने यहाँ था। अपने चित्तपटल पर ही आमदनी-खर्चका हिसाब नोट करलेनेवाला, नित्यकृत्य और गृहकार्यमें निपुण, लोकचरित्रका ज्ञाता उदार धीर बुद्धिवाला उनका गृहपतिरत्न था। इस प्रकार उस भाग्यशाली राजाको शशि-प्रभा सहित उक्त चौदहों रत्न प्राप्त हुये। पुण्यके उदय होने-पर क्या दुर्लभ है?

पुण्यात्मा अजितसेनके घरमें रत्न जैसी नवो निधियाँ उपस्थित हुयीं। नित्य उपस्थित निधियोंके देवता मनचाही विचित्र वस्तुएं

राजाको देते थे। उनमें पांडु नामक निधि भूख-प्यासके हरने-वाले उर्द, चने, अलसी, तिल, धान, चाँवल, लव, मूंग, कोदो आदि अन्नोंको नित्य देती थी।

पिंगल नामक निधि रत्नोंकी कान्तिसे मनोहर चितचाहे सुन्दर कुण्डल, अंगूठी, चन्द्रहार, मणिमेखला आदि आभूषणोंको देती थी। काल नामक निधि सब ऋतुओंमें होनेवाले वृक्ष-गुल्म-लता आदि वनस्पतियोंके मनोहर चितचाहे फलों ओर पल्लवोंको देती थी। शंख नामक निधि उन चक्रवर्ती राजाको बांसुरी, मुरज, वीणा आदि कानोंको सुख देनेवाले बाजे देती थी।

पद्मक नामक निधि विचित्र सूक्ष्म वस्त्र, चीनके रशमी वस्त्र, कमरबन्द, लाल कम्बल, दुपट्टे और अन्यान्य साधारण वस्त्र सुख-दायक मनोहर कपड़े देती थी। महाताल नामक निधि सुन्दर ताम्बे, सुवर्ण, शीशे, चांदी और लोहेके बने सब मन्दिरके सामान देती थी। माणव नामक निधि प्रास, बाण, चक्र, मुद्गर, शक्ति, शंकु, खड्ग, तोमर आदि शत्रुओंको नष्ट करनेवाले चमक-दार शस्त्रोंको देती थी।

नैसर्प निधिने तकिया, बिछौना, पलंग आदि सब देहको आराम पहुंचानेवाली कोमल वस्तुएं उन राजाको दीं। विचित्र रत्नों और मणियोंकी किरणोंसे आकाशमें इन्द्र धनुषकी शोभा प्रकट करते हुये सर्वरत्न नामक निधिसे राजाकी सब कामनाएं पूर्ण होती थीं।

मदको पैदा कर देनेवाली ऐसी लक्ष्मीको पाकर भी अजित-सेनको कुछ भी घमण्ड नहीं हुआ। सज्जनोंका परम्परागत धर्म ही यह है कि वे वैभव पाकर अपने स्वभावको नहीं छोड़ते। सुन्दर श्रेष्ठ चन्दन, धूप, पुष्प और परम सम्पत्तिके द्वारा अजितसेनने बन्धु-बान्धवोंके साथ वीतराग भगवानके चरणोंकी पूजा करके निधियों और रत्नोंकी पूजा की।

एक दिन स्वयं उनके पिताने राजगणको बुलाकर उनके आगे चक्रवर्तीके वैभवके अनुरूप कुमारके पट्टाभिषेकका उत्सव किया। कुमारके अभिषेक जलसे केवल पृथ्वीतल ही दूर तक उच्छ्वसित नहीं हुआ, उसके साथ ही आनन्दसागरमें मग्न इष्ट मित्रोंका मानस भी उच्छ्वसित हो उठा।

प्रसाद और विकाससे सुशोभित तारा (नेत्रतारा)वाला और निर्मल अम्बर (वस्त्र) से मनोहर पुरनारियोंका मंडल ही नहीं हुआ; बल्कि प्रसाद और विकाससे सुशोभित तारा (तारागण) वाला और निर्मल अंबर (आकाश) से मनोरह दिशाओंका मण्डल भी देख पड़ा। सुगंधिगुणको पाकर जिनके विकसयुक्त दलोंको भौंरोंके झुण्ड घेरे रहते हैं ऐसे पृथ्वी परके फूलोंसे ही पृथ्वी परिपूर्ण नहीं हुई; बल्कि स्वर्गके फूलोंने भी पृथ्वीको पाट दिया।

नित्यके उत्सवमें मन लगाये हुए मित्रोंके ही मन्दिर उदित-केतु (जिनमें झण्डे फहरा रहे हैं) नहीं हुए, बल्कि जिनपर आपत्ति आनेवाली है, उन शत्रुओंके घरोंपर भी केतु (बुरे ग्रह) का उदय हुआ। (अथवा 'उ' को आश्चर्यके अर्थमें अलग कर लेनेसे 'दितकेतु' बचता है; अर्थात् खण्डित ध्वजावाले)। वेश्याओंके आश्चर्य बढ़ानेवाले नाचने-गानेसे केवल पृथ्वीतलने ही मनोहर भाव नहीं धारण किया; बल्कि किन्नर कामिनियोंके नाचने गानेसे स्वर्गका भी वही हाल हुआ। राजाके मन्दिरके आंगनमें नट-नर्त्तक आदि आकर मङ्गल गान करने लगे।

वैसे ही आकाशमें कोयलकी ऐसी मीठी आवाजवाले तुम्बरु आदि गन्धर्व भी गाने-बजाने लगे। छिड़काव करनेवाले लोगोंने ही सड़कोंपर छिड़काव करके धूलको नहीं दबाया; बल्कि बार२ बादलोंने भी फुहारें गिराकर उस काममें सहायता की।

उस पुण्यात्मा राजाने रत्नबन्धसे प्रकाशमान सिंहासनको ही

नीचे नहीं रक्खा; बल्कि गुरुजनोंकी अभिलाषासे भी बढ़ी हुई लक्ष्मीको प्राप्त करके गुरुजनोंके आशीर्वादोंको भी नीचे रक्खा।

पिताके हाथोंसे अभिषेक हो जानेपर चक्रवर्ती राजाकी संपत्ति पाकर सहज ही प्रकाशमान अजितसेन सूर्यके तेजसे सूर्यकांत मणिके समान और भी अधिक शोभायमान हुए।

इसी समय बड़े बड़े देवता जिनके चरणोंमें सिर नवाते हैं वे स्वयंप्रभ नामक जिन भव्य लोगोंको प्रबोध देते हुए वहां पधारे। सिंहासनपर विराजमान उन अविनाशी जिनको पास ही अवस्थित सुनकर चक्रवर्ती पुत्रसहित राजा अजितंजय जल्दीसे उन्हें प्रणाम करनेके लिये चल दिये। बड़े ध्यानी तपस्वी मुनियों करके सेवित निर्मल तीर्थस्वरूप उन महामुनिको बड़ी भक्तिसे हाथ जोड़कर बन्धन और मोक्षके सम्बन्धमें राजाने यह प्रश्न किया।

नाथ! बतलाइए, यह जीव इस संसारमें शुभाशुभ कर्मोंके द्वारा किस प्रकार बन्धता या उससे मुक्त होता है? देव, संशय और विपर्ययसे व्याकुल यह सारा जगत् आपमें स्थित है--आप सारे संसारको प्रत्यक्ष जानते हो। वस्तु-स्थितिको जाननेकी इच्छा रखनेवाले राजाकी यह वाणी सुनकर अधरोष्ठ-स्पन्दनहीन भावसे एक योजन तक सुन पड़नेवाली गम्भीर वाणीसे तीर्थंकर भगवानने यों कहना आरम्भ किया--मिथ्यादर्शन*, +अविरति, ×प्रमाद, ÷कषाय और ‡योग ये बन्धके कारण हैं। इनके द्वारा जीव ज्ञानावरण आदि कर्मबन्धको प्राप्त होता है।

---

*जीवादि पदार्थोंके असत् श्रद्धानको 'मिथ्यादर्शन' कहते हैं। इसके पांच भेद हैं। +हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापोंके न छोड़नेको 'अविरति' कहते हैं। इसके बारह भेद हैं। ×धार्मिक क्रिया--सामायिक, पूजनपाठादिमें अनादर करनेको प्रमाद कहते हैं। इसके पन्द्रह भेद हैं। ÷आत्मस्वभावका घात करनेवाले और

चुम्बककी ओर आकृष्ट लोहेकी तरह आठ प्रकारके कर्मोंके वशवर्त्ती होकर वह शरण रहित जीव संसार-सागरमें गोते खाया करता है। प्रमाद (कषाय) के कारण कर्मोंके वशवर्ती जीव बहुतसी योनियोंमें घूमता हुआ, गंजेके सिरपर बेलका फल गिरनेकी तरह अनायास, कभी मनुष्य योनिमें उत्पन्न हो जाता है।

कठिनाईसे मनुष्य जन्म पाकर भी पुत्र, बान्धव, स्त्री आदिके मोहमें पड़ा हुआ जीव उन कर्मोंका सञ्चय करता है जिनसे फिर बुरी योनियोंमें जाना पड़ता है। यह जान कर, जन्म मरणके दुःखसे डरनेवाले अच्छी बुद्धिके लोग कर्मबन्धनसे मुक्त करनेवाली सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यकचारित्रकी संपत्तिका संग करते हैं।

आत्मज्ञानियोंने पदार्थोंके सच्चे ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहा है, जिन मतपर विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहा है। और हिंसा आदि कर्मोंकी निवृत्तिको सम्यकचारित्र कहा है। इन तीनों बातोंके एकत्र होनेसे सब कर्मोंकी निवृत्ति हो जाती है।

इन तीनों बातोंमेंसे एक एकके होनेसे वह बात सिद्ध नहीं होती। ये तीनों अंधे और लंगड़ेके समान परस्पर सहायसापेक्ष हैं। सम्यग्ज्ञानसे भावी कर्मका आगमन रुद्ध होता है; सम्यकचारित्रसे पूर्वार्जित कर्मका नाश होता है और सम्यग्दर्शनसे इन दोनोंकी पुष्टि होती है। इस प्रकार ये तीनों परस्पर उपयोगी हैं।

मूर्ख लोग केवल, ज्ञानको ही संसारक्षय-कारक समझते हैं,

दुर्गतिके कारण क्रोधादि परिणामको कषाय कहते हैं। इसके पचीस भेद हैं। †मन, वचन और शरीरकी क्रिया द्वारा कर्मोंके आनेकी शक्तिको योग कहते हैं। इसके पन्द्रह भेद हैं।

ये पांचों कर्मबन्धके कारण हैं। इनका विस्तारसहित वर्णन 'गोम्मटसार', 'राजवार्तिक' आदि ग्रन्थोंसे जानना चाहिए।

पर यह ठीक नहीं। सम्यक्चारित्रकी भी बड़ी आवश्यकता है। केवल दवाका नाम जान लेनेसे रोग शान्त नहीं होता; उसके लिए दवा पीनेकी जरूरत होती है।

जिनदेवके मुखारविन्दसे इस प्रकार बन्धन और मोक्षका कारण सुनकर तत्क्षण अजितञ्जय महाराज विरक्त हो गये। भव्यता सदैव मोक्षके लिए शीघ्रता कराती है। शान्तचित्त अजितञ्जय बन्धु, पुत्र, स्त्री आदिके प्रेमको छोड़कर, अजितसेनको राज्य देकर श्रमणों करके सेवित मोक्षपद पानेके लिए प्रस्तुत हुए।

मन-वाणी-कायासे शुद्ध चक्रवर्ती राजा अजितसेनने भी जिनमत पर विश्वास स्थापित किया। सज्जनों द्वारा पूजित जिनेश्वरकी तीन परिक्रमायें करके बड़े ऊँचे विशाल फाटकोंवाले पुरमें उन्होंने प्रवेश किया।

एक समय राजवृन्द सहित राजा अजितसेनने अपने तेजस्वी सेनापतिको आगे करके दिग्विजयकी इच्छासे युद्धयात्रा की। उफने हुए फेनके समान श्वेत छत्र यात्राके समय राजाके सिर पर ऐसा जान पड़ता था, मानों छत्रके बहाने स्वयं चन्द्रमा उनकी सेवा करने आया है। विचित्र रत्नोंसे परिपूर्ण कोखवाले गंभीर ध्वनि करते हुए समुद्रोंके समान सब निधियाँ चलते हुए रथके रूपसे उनके साथ चलीं। सहस्रों व्यन्तर देवताओं द्वारा सुरक्षित और अपने अपने कामके करनेमें लगे हुए सब रत्न उनके मार्गमें आगे आगे चले।

उन चक्रवर्तीकी सेनाके घोड़ोंकी टापोंसे उठे हुए रजोराशिने सूर्यका मार्ग रूँध लिया। उस रजसे परिपूर्ण दिशायें किरणोंके भयसे ही मानों अदृश्य हो गईं। यह बड़ी विचित्र बात हुई कि राजा अजितसेनके बहुत दूर रहने पर भी उनकी दौड़ती हुई सेनाकी धूलने शत्रुनारियोंकी आँखोंमें घुस कर ऐसा किया कि उनके बराबर आँसू गिरने लगे। सब रत्नोंको अपने वशमें किये हुए महाबली उन चक्रवर्तीको आगे आया जानकर सब राजा

लोग भेंटें लिए हुए हाथ जोड़े आ आकर मिलने लगे। अद्वितीय देवबल-सम्पन्न और विस्तृत कीर्तिसे सब दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले वे राजा शक्तिसे बढ़े हुए नरपतियोंको झुकाते हुए समुद्र तट पर पहुंचे।

उसी समय क्षोभको प्राप्त सिंहासनसे उठकर प्रभास नामक देवताने चक्रवर्ती राजाको समीप आये हुए जानकर, सामने उपस्थित होकर, हाथ जोड़कर और यह कह कर कि "देव! प्रसन्न रहिए, जय हो, पृथ्वीकी रक्षा करिये" मागध (मगध-नरेश)ने भी सचमुच मागध (वन्दीजन) का काम किया। मुकुटको झुकाकर मद-मान-शून्य वरतनु नामक देवने भी द्वीप समुद्र और खानोंकी चीजोंके मनोहर तोहफे देकर परिवारकी तरह उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

अजितसेनने पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशाके नरपति, विद्याधर और देवता आदिको जीतकर आकाशगमनका गर्व रखनेवाले विजयार्ध पर्वतके निवासियोंको भी जीत लिया। प्रभुशक्ति, उत्साह-शक्ति और मन्त्रशक्तिसे युक्त अजितसेन सबको जीतनेकी शक्ति रखते थे। उन सूर्यकी कान्तिको भी फीका बना देनेवाले तेजस्वी राजाने अगर विजयार्ध पर्वतके निवासी विद्याधरोंको जीत लिया तो आश्चर्य ही क्या है?

शत्रुओंके पराक्रमको नीचा दिखानेवाले अजितसेन विविध रत्नोंसे युक्त पृथ्वीको वशमें करते हुए नित्य वैभवको बढ़ाकर सब लोगोंसे प्रीति करने लगे। नित्य प्रति उनके सभामें जाने पर बत्तीस हजार पृथ्वीके मुख्य राजाओंके मस्तकों पर उनके चरणोंकी रज पटवासचूर्णकी शोभाको प्राप्त होती थी।

पूर्वजन्मके किये अलौकिक पुण्यके प्रतापसे छानवे हजार स्त्रियोंके मुखकमलके रस लेनेवाले भ्रमर वे चक्रवर्ती राजा थे। उनके मन्दिरका आंगन वर्षाकालके विना भी मंदगामी चौरासी

लाख हाथियोंके मदजलकी कीचड़से दुर्लंघ्य बना रहता था। उनकी सेनाका समूह, तरंगोंसे समुद्रके समान, वायुके समान चञ्चल चालवाले अठारह करोड़ उत्तम घोड़ोंसे सदा क्षोभको प्राप्त रहता था।

शुद्ध कुन्दकुसुमके समान उज्ज्वल तीन करोड़ गउओंसे व्याप्त अजितसेनके राज्यान्तर्गत वनभूमियाँ शरदऋतुके बादलोंसे परिपूर्ण दिशाओंके समान देख पड़ती थीं। कामदेवके समान सुन्दर अजितसेनकी समुद्रमेखला पृथ्वी एक करोड़ हलोंसे जोती जाकर इच्छानुरूप अन्न देती थी।

समर्थ अजितसेनको सेना, नाट्य, निधि, रत्न, भोजन. आसन, शयन, पात्र, वाहन, पुर—यह दश प्रकारका भोग प्राप्त था। पृथ्वीके तिलकस्वरूप उन महाराजकी सेवा सोलह हजार अमर करते थे। उन्होंने इन्द्रके समान अपने दुःसह तेजसे पृथ्वी और आकाशको व्याप्त कर दिया।

अजितसेनने कुछ ही दिनोंमें मनुष्य, विद्याधर, देवता और बहुतसे रत्नोंको उत्पन्न करनेवाली खानोंसे परिपूर्ण आर्यखण्डको म्लेच्छखण्ड सहित अपने अधीन कर लिया। प्रचण्ड धनुषसे शत्रुओंको मारनेवाले बलवान् पृथ्वीतिलक सम्राट् अजितसेन इस प्रकार छह खण्डोंसे सुशोभित भरतखण्डको अपने वशमें कर उसके बाद वे उत्कण्ठित बन्धुजनोंसे परिपूर्ण अयोध्यापुरीको लौट आये। पुरीमें बाजारोंमें तरह २ की सजावटें और सफाईयां की गई थीं।

दरवाजों पर तोरण स्थापित किये गये थे। उसके भीतर कामदेवके समान सुन्दर महाराजने जब प्रवेश किया तब उन्हें देखनेके लिए झुण्डकी झुण्ड पुरनारियां उमड़ चलीं। प्रवेशकालमें बजते हुए डंडेकी आवाजसे सचेत होकर राजमार्गकी ओर दौड़ती हुई स्त्रियोंको गुणयुक्त होनेपर भी कुचकलशों और नितम्बोंका भार खल गया। राजाके रूपको देखनेमें मोहित नेत्रवाली किसी

स्त्रीके कमरका कपड़ा शिथिल गांठ हो जानेसे गिरने ही वाला था, किन्तु बुद्धिमान् पुरुषकी तरह पसीनेसे उसे उस जगहसे हटने नहीं दिया। किसी स्त्रीने घरकी दीवारोंमें विचित्र चित्र बनाना छोड़ दिया और झरोखेसे टकटकी लगाकर वह राज-कुमारको देखने लगी।

वह चकोरनयनी राजाका रूप देखनेसे और ही चित्र अपने चित्तमें अङ्कित करने लगी। अन्य जनोंसे भरे हुए मार्गमें जाती हुई किसी दुर्बलांगी रमणीके पसीनेकी बून्दोंसे सुशोभित कुचकलशोंके बीचमें शोभा न पानेसे लज्जितसी होकर माला टूट गई। कोई स्त्री पैरोंमें उसी समय महावर लगाकर आई थी, उसके अधर भी लाल थे। जान पड़ा कि राजाके रूपको देखकर उसके भीतर इतना अनुराग उत्पन्न हुआ कि वह भीतर नहीं समाया और बाहर निकल पड़ा; वह स्त्री इस प्रकार जा रही थी।

एक स्त्री उँगलियोंसे उँगली मिलाकर दोनों हाथोंको सिरपर धनुषाकार करके जंभाई लेने लगी। जान पड़ा कि राजदर्शनसे हृदयमें प्रवेश किये कामदेवके लिए वह मंगलसूचक तोरण बना रही है। एक आँखमें रुचिर अंजन लगाये और दूसरी आँख वैसे ही लिये हुए एक स्त्री दौड़ी जा रही थी। उसे देखकर मुसकाते हुए लोगोंको शिवके अर्धनारीश्वर रूपका स्मरण हो आया। बिखरे हुए बालोंको एक हाथसे संभाले हुई अन्य एक स्त्रीको उसके शिथिल नीवीवाले वस्त्रको रोके हुए और रोमोद्गमकी वृद्धिसे तकलीफ पहुंचानेवाली करधनी एक-साथ ही कोप और प्रेमका पात्र (शृङ्गारके कारण प्रेमका पात्र और चलनेमें तकलीफ पहुंचानेके कारण कोपका पात्र) बनी।

कादम्बरी मदके समान अन्तःकरणको मोहित करता, चित्त-भ्रमके समान स्मृतिशक्तिको मिटाता और वायुके समान देहमें कम्प उत्पन्न करता कामदेव महतुल्य होकर स्त्रियोंमें क्रीड़ा करने

लगा। नीतिनिपुण, क्षोभशून्य, शत्रुओंको क्षीण करनेवाले, कमल-नयन, तेजसे सूर्यको जीत लेनेवाले राजाने इसप्रकार बिजलीके समान कान्तिवाली पुरनारियोंको मोहित करते हुए, स्थापित कलश आदि मङ्गल वस्तुओंसे शोभित राजभवनके द्वारपर पहुंचकर उसमें प्रवेश किया।

राजा अजितसेन मन्दिरके भीतर प्रवेश करके उत्सवकी चौक पर बैठे, और वृद्धाओंकी उतारी मांगलिक आरतीको स्वीकार कर हाथ जोड़े गुरुजनोंके चरणोंमें उन्होंने प्रणाम किया। इस प्रकार झुककर भी उन्होंने उन्नति प्राप्त की; यही परम अद्भुत हुआ।

चक्रवर्ती अजितसेनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी आज्ञाको शिरपर धारण करके राजा लोग, विद्याधर लोग और देवगण दूसरे दिन अपने अपने स्थानोंको गये। दिव्य रूपवाली स्त्रियोंके साथ दशांग भोग करनेवाले अजितसेन सब प्रकारके भोग भोगने लगे। इस प्रकार निःशंक होकर शत्रुओंको राज्यभ्रष्ट करके अजितसेन पूर्व पुण्यके प्रतापसे साम्राज्यका शासन करने लगे।

इति सप्तमः सर्गः

अष्टम सर्ग

चरणकमलोंमें प्रणत जनसमूहकी रक्षा करनेवाले अजितसेनके पृथ्वीका शासन करने पर गिरते हुए मधुको पीनेवाले भ्रमरोंको प्रसन्न करता हुआ वसन्त आ गया। अश्रुपूर्ण रमणीय नेत्रोंसे रमणियोंका मनोरञ्जन करनेवाले विरही लोग नव वृक्षोंके नव मुकुलों पर स्थित भ्रमरोंकी पंक्तिको न देख सके।

कामदेवको उत्पन्न करनेवाला सूक्ष्म चंपेका पराग झड़ते देखकर दु:खित पथिक सुरकामिनी सदृश मनोरम वाणीवाली प्रियाका स्मरण करने लगे। कलियुगके समान श्यामवर्णवाली नागकेसरके वृक्षकी कली प्रियतमके स्थान पर न पहुंची हुई स्त्रियोंके चित्तमें भारी कामपीड़ा उत्पन्न करने लगी।

अन्त:पुरके बागोंमें कमलपुष्पको हिलाकर अनेक प्रकारका मधु पीते हुए भ्रमरोंके समूहने और चारों ओर शब्द करती हुई कोकिलाओंने कामिनियोंके कलेजे फाटना शुरू कर दिया। बौराये हुए आमको देखकर कामदेवके बाणोंसे घायल होकर किस स्त्रीने प्रसन्नता प्राप्त कराने वाली सुरति प्रियसे नहीं की?

वनभूमिके शीतल वायुने प्रियके पास जानेके लिए व्यग्र हुई स्त्रियोंको उत्कण्ठापूर्ण करते हुए उनके मुखकमलको प्रफुल्लित करके हरएक पल्लवसे सुन्दर नृत्य कराना आरम्भ कर दिया। कोकिलाओंका शब्द पथिकोंसे मानों यह कहता था कि फूलोंके गुच्छोंसे झुका हुआ कुरवकका पेड़ तुम्हें क्यों नहीं सन्ताप पहुंचाता, जो तुम परदेशमें बसे हुये हो।

प्रियतमके साथ किये गये मानको न सह सकनेके कारण कुलकामिनियाँ आम्रमञ्जरीके परागसे परिपूर्ण और कामकी कुमुक पाये हुये वायुसे पीड़ा पाने लगीं। फूलोंसे झड़ते हुये मधुमें आसक्त भ्रमरसमूहका बीपम गुञ्जरण सुनकर परदेशमें पड़े हुये

पुरुषको चन्दनमाला आदि प्यारी चीजें विषके समान जान पड़ने लगीं।

उन दिनों वसन्तऋतुके फूलोंको देखकर नित्यतपोनिष्ठ यतियोंके चित्तमें भी कामविकार उत्पन्न हो गया। धीरे धीरे हिलते हुए मौलसिरीके पेड़ोंकी सुगन्ध लिये हुए पवनके शरीरमें लगनेसे और मधुर कोकिलाका पञ्चम राग सुननेसे स्त्रियोंको अपनी सुधबुध नहीं रही।

एक सखी दूसरी सखीसे कहती है—वह प्राणप्रिय मुझ प्राणप्यारीसे दगाबाजी करता है, इसीसे मेरा शरीर दुबला होता जा रहा है। मैं तुमसे कैसे छिपा सकती हूं? तुम मिलनेके लिए आग्रह न करो। उसको मेरी ममता भी नहीं है, इसीसे मेरे मनको बड़ा सन्ताप है।

सो हे सखि, इसी कारण उसके पैरों पड़नेसे भी मेरा सन्ताप नहीं घटता। जो सैकड़ों अपराध करनेवाला भारी दुर्जन है उस पतिके होनेसे क्या सुख मिल सकता है?

इससे महिमा करानेवाला मान ही करना हमें ठीक जान पड़ता है। इस दुःखित शरीरके तापको न चन्दनका जल दूर कर सकता है और न चन्द्रमा ही। तथापि नित्य अप्रिय करनेवाले प्रियको घर लानेके लिए मैं चेष्टा नहीं करती। जो स्त्रियाँ अन्य ऋतुओंमें दूतीसे इस प्रकार कहती थीं—वसंतने इन्हें सुन्दर और कामदेवके प्रतिनिधि प्राणवल्लभके वशमें गजराजकी तरह कर दिया।

अन्य कोई कमलनयनी नायकके साथ क्रीड़ा करनेकी इच्छासे इस प्रकार विनती वचन कहने लगी, जिसमें आगे विरहका दुःख न उठाना पड़े। उसने कहा—सब कलाओंसे (६४ कला विद्या, दूसरे पक्षमें चन्द्रमाकी सोलह कला) युक्त चन्द्रमाकी

समान सज्जनों (नक्षत्रों और सज्जन पुरुषों) को सन्तोष देनेवाली, समर्थ, तुम सरीखी सखी मुझे बड़े पुण्योंसे मिली है ।

इसलिये हे सखि ! प्राणनाथके पास जाकर प्यारे और उचित वचन कहना। क्योंकि जो बात मीठे बोलसे मिलती है वह बात अप्रिय वचन कहनेसे नहीं प्राप्त होती। हे मृगनयनी ! मैं सदा तुम्हारी दासी बनी रहूंगी। मेरा मन सन्तापयुक्त और संभोगकी इच्छा रखनेवाला है। तुम प्राणनाथको यहां ला सकती हो।

अत: प्रियतमको लाकर मुझे सुखी करो। हे सम्माननीये ! मेरे दु:खित मनको ये वसन्तके दिन बहुत ही जलाते हैं। इस कारण महान् ऐश्वर्य और सम्मानसे युक्त मेरे प्रियको मीठी बातोंसे मुझपर सदय बनाओ।

अनुपम, परदेशी और वसन्तमें सुखदायक अपने पतिका स्मरण करते करते कामरूप बहेलियेके बाणोंसे घायल होकर अनेक स्त्रियाँ प्राणोंसे हाथ धो बैठीं। सर्प मनुष्य देवता आदिको प्रसन्न करके बकुलके पुष्प प्रफुल्लित देख पड़ते हैं, और वे शरदऋतुके श्वेत बादलोंके समान उज्वल स्त्रियोंकी हँसीकी उपमाको प्राप्त होते हैं।

चमकसे उज्वल बिजलीको भी लजानेवाले कचनारके फूलोंपर मतवाली रसीली भौंरियाँ मन्द गुञ्जरण करती हुई रमने लगीं। "हे नीतिचतुर ! आपके वियोगशोकसे मलिन हृदयकमलमें पीड़ित उस स्त्रीको चन्द्रमाकी किरणें जलाती हैं और कामदेव भी मारता है।

हे स्वरूपसे कामदेवको जीतनेवाले ! सबौर सिंगारकी चेष्टासे रहित और पालेकी मारी कमलिनीके समान मुरझाई हुई उस स्त्रीकी रक्षा करोगे तो यह तुम्हारा गुण है। अथवा उसे तिलांजलि देदो। रातोंमें जो कामदेवका बाण उसके हृदयके भीतर घुसकर स्थिर हो गया है उसे अगर संभोगके द्वारा निकालोगे तो वह उस हृदयके साथ न जायगा।

हे सुभंग, इस कारण लोहेकी ऐसी कठिनताको छोड़कर जाओ, और प्यारीको रमाओ। हे कामदेवकी पीड़ाको मिटानेका रहस्य जाननेवाले! वह चन्द्रमुखी विरहबाधा सहनेके योग्य नहीं है" कुपित नायकने इस प्रकार दूतीके वचन सुनकर तत्क्षण अरी मानको त्याग कर प्रियाके पास प्रस्थान किया।

विधवाओंके लिए अन्तकस्वरूप कनेरका फूल गन्ध-गुणसे शून्य देख पड़ा। विधाताने यद्यपि बड़ी विचित्र सृष्टि की है, तथापि योग्यको योग्य वस्तु देनेमें अकसर वह चूकता ही चला गया है। वृक्षपंक्तिरूपिणी स्त्रीके ओठोंके समान अपार शोभाधारी टेसूके फूलोंको देखकर जान पड़ता था कि वे वसन्तके खूनसे तर तरवार है।

शमदममें हानि पहुंचानेवाले भौंरेका गान शुरू होनेपर दक्षिण पवन पुष्पपराग परिपूर्ण लताओंको नृत्यकी शिक्षा देने लगा। अशोक वृक्षकी कुमुक पाये हुए कामदेव विरहिणी स्त्रियोंके भारी गर्वको याद कर उन्हें एक साथ ही मृत्युके समान लीले लेता है। पहले जो विरहिणी स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न रहती थीं वे अब वसन्तमें अत्यन्त दुस्सह कामदेवसे सताई जाकर दुःख पाने लगीं।

हे सखि! कामजनित शोकसागरसे उठे हुए रोदनको छोड़ो। लोग कहते हैं कि सुमेरुके समान अटल दृढ़ धैर्य ही सब विपत्तियोंको नष्ट कर सकता है। जिस वसन्तऋतुमें लोगोंको मनोरम लाभ पहुंचानेवाले वृक्ष अपने गुणोंसे सज्जनोंके समान उज्ज्वल आभावाले पुष्पोंसे शोभा पाते हैं उस वसन्तको तुम्हारे प्यारेने आनेकी अवधि कहा था। नायकका चित्त कोमल और वियोगिनी स्त्रियोंका हितैषी है।

वह इस समयको आते देखकर अब परदेशमें नहीं रह सकता। इसलिए इस शरीरको नियम पालन पूर्वक सुरक्षित रक्खो। ऐसा न करो कि यमराज इसे शीघ्र ही नष्ट कर सकें।

थोड़े ही दिनोंमें तुम उसके साथ रमण करोगी। वह तुम्हारे विरहको सह नहीं सकता।

जिसकी वियोग व्यथासे कान्ति फीकी पड़ गई है, जिसको अपना ही मान दुःखदायक हो रहा है, जिसे जीनेकी चाह नहीं है, जिसका पति दूर देशमें है और जिसने चन्दन-माला आदि शौककी चीजोंको छोड़ दिया है उससे सखीने इस प्रकार हितके वचन कहे—

हे सुन्दर भौंहवाली! तुम्हारा यह भौंहें टेड़ी करना कुटियोंकी समताको प्राप्त होता है। मुझ प्रियतमके दासभाव स्वीकार करनेपर भी तुम्हारा मुख क्यों कोपयुक्त देख पड़ता? तुम्हारी रतिके बिना मुझे कुछ भी सन्तोष नहीं है। मैं तो तुम्हें हाथ जोड़ता हूं। मैं गर्व छोड़कर प्रणाम कर रहा हूं। फिर तुम क्यों वृथा मान कर रही हो?

आकाशके समान अनन्त कान्तिरूपी जलमें डूबा हुआ तुम्हारा मुख, कमलके समान जान पड़ता है बहुतसे हावभावोंसे युक्त तुम्हारे मुखकमलको मैं भ्रमरके समान पीनेके लिए उत्सुक हो रहा हूं।

हे सुन्दर शरीरवाली! हे पीन-पयोधरवाली! मेरे चित्तको यह कामदेव दिनरात पीड़ा पहुंचाता है; इसलिये भयभीत हो रहा है। क्रोध कम करके मुझे भजो और मानको छोड़ो। इस प्रकार नायकके कहनेपर किसी स्त्रीने उसी समय उससे प्रेमका व्यवहार किया। समझदारोंके रसीले वचन किसे नहीं प्रसन्न कर देते?

चन्द्रमाके समान उज्ज्वल नदियोंसे परिपूर्ण कुबेरकी (उत्तर) दिशामें स्थित अन्धकारमय हिमवान् पर्वत पर, जिसकी कन्दराओंमें सर्पके समान घना काला अन्धकार भरा हुआ है, सूर्यनारायण पहुंच गये। भ्रमर समूहके बैठनेसे तिलकके समान काले रंगवाली तिलक नामके वृक्षोंकी कतार विकासको प्राप्त हुई।

उसे देखकर आनन्दशून्य चित्तवाली मानिनीके मनमें काम-

देवकी भारी पीड़ा सहनी पड़ी। भ्रमर समूह भौंरियोंके साथ, प्रसन्न कर देनेवाले पुष्प मधुको पीकर गुञ्जरण करने लगे। उसे सुनकर किसे ताकत थी कि उस मार्ग होकर जाता।

शीतल समझकर पंखोंमें पानी छिड़ककर सखा-सखीके पवन करनेपर उसकी छींटें गर्म पानीकी बून्दोंके समान विरहियोंको दुख देने लगी। भारी हानिसे युक्त पद्मवनको देखकर कुपित सूर्यने दिनोंको गर्म कर दिया। तेजस्वी लोगोंका हृदय सर्वथा अभिमानी होता है।

कामदेवके स्वाभाविक मित्र वसन्तके आनेपर इस प्रकार भ्रमर गुञ्जनसे सब दिशाओंके परिपूर्ण होने पर अजितसेनने एक दिन अपनी इच्छासे अंतःपुरमें प्रवेश करके गोदमें बैठी हुई शशिप्रभा रानीसे यों कहा—

प्रिये! देखो, कोकिलाओंके शब्दके मिससे, तिलकपत्र (स्त्रीपक्षमें तिलक और वनलक्ष्मीके पक्षमें तिलकका पेड़) की विचित्र शोभासे युक्त स्त्रीके समान पुरके उपवनकी शोभाको देखनेके लिये मानों यह चैत्र मुझे बुला रहा है। कामदेवके सखा वसन्तके सत्कारके लिये मलयमारुतसे हिलती हुई शाखावाले वृक्षोंसे परिपूर्ण वागमें मैं चलना चाहता हूं।

हे कुच भारसे कुछ झुके अंगवाली! तुम भी वहां चलकर अदृश्य वनदेवताओंके नेत्रोंको सफल करो। वहाँ अगर लज्जित होकर मेरे नेत्रोंको सुख देनेवाले नृत्यको छोड़कर अगर मोर भागना चाहे तो हे सुमुखि! कामदेवके निवास स्थल नर्तकको चूमनेवाला केशपाश रेशमी वस्त्रसे ढक लेना।

हे सुन्दरी! आमके बौर खानेसे कसैला हो गया है कण्ठ जिनका ऐसी कोकिलाओंका झुण्ड अत्यन्त मधुरता प्राप्त करनेकी इच्छासे चुप होकर तुम्हारी वाणीको सुनेगा। तुम्हारे चरणोंकी चोट पाकर वहां हे सुमुखि! दोनोंको सदृश अवस्था होगी।

अशोकका वृक्ष तो शीघ्र ही कलियां धारण कर लेगा और मेरे रोमाञ्च हो आवेगा।

हे हरिणनयनी! स्वाभाविक धीमी चालसे टहलती हुई तुम्हें देखकर वनके सरोवरमें रहनेवाली हंसियाँ तुम्हारे शिष्य होनेका गौरव प्राप्त करनेकी इच्छा करेंगी। हे सुन्दरी! वारवार हाथसे हटाया जाने पर भी नव विद्रुमसदृश तुम्हारे अधरको अशोकका नवपल्लव समझ कर दौड़नेवाला भ्रमर बागोंमें किसे हंसाये विना रहेगा?

हे भोली आँखोंवाली! वनके भीतर बने हुए लतामण्डपोंमें आसपास लगे घने पेड़ोंके द्वारा रोकी गई सूर्यकी किरणें नहीं प्रवेश कर सकतीं। तथापि हमें अन्धकारका सामना न करना पड़ेगा। तुम्हारे मुखचंद्रके प्रकाशसे सब अन्धकार दूर हो जायगा।

हे चन्द्रमुखी! वहां सखियाँ तुम्हारे पैरोंको दवावेंगी। तुम विहार करना। तुमको मतवाले भँवरोंमें नेत्रोंका, लताओंमें शरीरका, केलोंमें ऊरुओंका और कुँदरुके फलोंमें ओठोंका सादृश्य देख पड़ेगा।

पूर्ण प्रेम करनेवाली प्रियतमाको इस प्रकार मधुरवाणीसे क्षणभर एकान्तमें रमाकर अजितसेनने अपने नगरमें लोगोंको आनंद देनेवाली वनविहारकी यात्राका ढिंढोरा पिटवा दिया। यात्राकी सूचना देनेवाला डंकेका शब्द मदजलयुक्त दिग्गजोंको दूसरे हाथीका भ्रम दिलाकर कुपित करता हुआ, जलभरे बादलकी आवाजका भ्रम दिलाकर मयूरोंको उत्कंठित करता हुआ, नागोंको चौंकाकर उत्तेजित करता हुआ, पर्वतोंके शिखरोंको हिलाता हुआ आकाशमें व्याप्त हो गया।

इति अष्टमः सर्गः

नवम सर्ग

परिजनसहित नरेन्द्रने स्त्रीके समान रमणीय वनशोभा देखनेके लिए यात्रा की। स्त्री मधु (मद) से उत्पन्न विभ्रमों (विलासों) से अभिराम होती है और मदसे कोकिलाके समान सुन्दर शब्द करती है। वैसे ही वनस्थली भी मधु (वसन्त) से प्राप्त शोभासे मनोहर और मस्त कोकिलाओंके कलरवसे परिपूर्ण थी। ललित घनी अलकोंवाली (वनस्थलीके पक्षमें ललित घने तमालके पेड़ोंसे परिपूर्ण), मनोहर दांतोंसे सुहावनी (वनस्थलीके पक्षमें मनोहर पक्षियोंसे सुहावनी), तिलकसे सुशोभित (वनस्थलीके पक्षमें तिलकके पेड़ोंसे सुशोभित) रमणियाँ सर्वथा वनस्थलीके समान होकर स्तनों और जांघोंके बोझसे धीरे धीरे जा रही थीं।

बजती हुई सुन्दर करधनीकी ध्वनि सुनकर पीछे पीछे चलते हुए राजहंसोंके झुण्डों और स्त्रियोंकी ओर नौजवान लोग एकसी चाल देखनेके कौतुहलवश वारम्वार देखते थे। राजहंसकी चाल वैसी दर्शनीय नहीं और गजराजकी गति भी वैसी धीमी नहीं।

स्त्रियोंको ऐसी अनोखी चालकी शिक्षा देनेवाला गुरु उनका अपने ही नितम्बका भार हुआ। मृगनयनियोंके चञ्चल कटाक्षोंसे दोनों ओर व्याप्त हुआ आकाश पवनकम्पित नीलकमलोंसे परिपूर्ण सरोवरकी शोभाको प्राप्त हुआ।

हे मुग्धे! यह तुम्हारा ललित तिलक आदि शृङ्गारोंके करनेका प्रयास वृथा है। क्योंकि कमलके धोखे पास आते हुए भ्रमर-समूह ही तुम्हारे मुखकमलको अलंकृत कर रहा है।

हे कमलनयनो! आदरपूर्वक तुम जिस हारको धारण करती हो उसे भी मैं तुम्हारे लिए केवल वृथाका बोझ ही समझता हूं।

क्योंकि चलते समय स्तनोंके बीचमें जो कामजलकी बून्दें झलक रही हैं उन्हींसे तुम्हारी अपार शोभा हो रही है। कानों तक फैले हुए नेत्र क्या शोभा नहीं बढ़ाते जो हे मनोहर अङ्गवाली! तुम व्यर्थ ही यह नीलकमल कानोंमें धारण करती हो।

हे कान्ते! तुम व्यर्थ ही पैरोंमें बहुत घना महावर लगाकर देर कर रही हो। नव पल्लवके समान कान्तिवाले तुम्हारे चरण-तलमें ऐसे ही सुन्दर स्वाभाविक ललाई झलकती है। अपने शरीरको सिंगारनेमें लगी हुई किसी स्त्रीसे उसकी स्तन-जघन-भारसे धीमी चालको जाननेवाले प्रियतमने शीघ्र चलनेकी इच्छासे ये वचन कहे।

हे मनोहर अंगवाली! तुम्हारा प्यारा कहता है कि मूर्खताके कारण या बे-जाने एकबार अपराध बन पड़ने पर उससे निवृत्ति ही उसका दण्ड समझा जाता है। इसलिए अब मैं फिर वैसा अपराध नहीं करूंगा। तथापि हे सुमुखो! जब तक दूसरा कोई शिक्षा नहीं देता तब तक मनुष्य दोष करनेसे बाज नहीं आता।
सो हे सखी! तुम्हारे विरहसे सहानुभूति रखनेवाले कामदेवने उसे विनाशके निकट पहुंचाकर खूब शिक्षा देदी है। और हे सखी! तुम भी शरीरको दुबले बनानेवाले प्रिय-वियोगको सहजमें नहीं सह सकती हो। गर्म सांसोंके कारण सूखे हुए तुम्हारे ओठ ही भीतरी पीड़ाका पता दे रहे हैं। मेरा विरह इस समयकी तरह पीछे भी पीड़ा पहुंचानेवाला नहीं होगा, अपने इस मानको भी छोड़ दो। क्योंकि किसी कार्य या प्रतिज्ञाके आरंभमें चित्त जितना स्थिर रहता है उतना उस शुरू किये हुए कार्य या प्रतिज्ञाका अन्त तक निर्वाह करनेमें नहीं रहता।

अभिप्राय यह कि तुम मेरे विरहको इस समय जिस तरह सह रही हो उसी तरह अन्त तक भी उसे सहोगी-अपनी

आजकीसी दृढ़ता धारण किये रहोगी, यह असंभव है। इस प्रकार हित और मधुर तथा साँपका जहर झाड़नेके मन्त्रोंके समान सखीके वचनोंसे मनरूपी विष उतर जाने पर कोई स्त्री, मानों जाना नहीं चाहती इस तरह, धीरे धीरे पैर रखती हुई अपने प्रियतमके पीछे पीछे चली।

कोई कामी नायक प्रियाके कन्धे और पीठ परसे घुमाकर डाले हुए हाथमें उसके कुचाग्रको पकड़े गजराजकी तरह मन्द गतिसे धीरे धीरे चला। दूसरा नायक राह चलनेकी थकावटको दूर करनेके बहानेसे धीरे धीरे अलसगतिसे जाती हुई प्रियाकी जांघें सुहरा-कर कामोद्दीपन करता हुआ तंग राहमें भी मजेसे चला जा रहा था।

इस प्रकार कामदेवसे व्याकुल हुये हैं चित्त जिनके ऐसे पुरजनोंने तरह तरहकी चेष्टाएं करते हुये स्त्रियों सहित उपवनमें प्रवेश किया। उस उपवनमें बने हुये क्रीड़ा-शैल पर जाकर पहलेसे ही राजा अजितसेन ठहरे हुए थे। वृक्षोंकी डालियोंके अग्रभागको हाथसे पकड़े खड़ी, एकटक फल-फूलोंकी शोभा निहार रही हरिणनयनी स्त्रियाँ वनदेवताओंके समान जान पड़ने लगीं। वृक्षोंके पुराने पत्तोंपर अपने नखोंकी ललाई पड़ने पर उन्हें वनिताएं अपने भोलेपनके कारण नव पल्लव समझती थीं।

किसी कमलनयनीके प्रेमीने उसके कानोंमें जो बड़े आदरसे अशोक-पुष्प पहनाया वह अशोक होने पर भी उसकी सौतके लिए शोकका कारण बन गया। फूल चुननेकी इच्छा रखनेवाली मृगनयनीके सुजमूल (स्तन) देखनेकी लालसासे उसका पति झुकी हुई डालियोंवाले वृक्षोंके रहते भी ऊंचे ऊंचे पेड़ोंके पास ले जाता है। तिलकका वृक्ष पहले कहने भरको तिलक था।

उस समय कमलनयनियोंके सिर पर उसे लगानेसे सचमुच ही उसका तिलक नाम सार्थक हो गया। "हे सुन्दर दाँतोंवाली! तुम्हारे सुनहले रंगके शरीर पर चम्पेकी माला नहीं खुलती?"

यों कहकर प्रियाके स्तनतटको छूते हुये नायकने उसके हृदयमें मौलसिरीकी माला पहना दी। एक नायकने प्रियाके कानोंसे अशोकपुष्प निकालकर टेसूका फूल पहना दिया, इससे यह स्पष्ट हो गया कि संसारमें न कुछ सुन्दर है और न कुछ कुरूप है।

सुन्दर और कुरूपकी पहचान अपनी रुचि पर निर्भर है। समय पर शोभासम्पन्न होनेवाले वृक्ष-समूहोंके पत्तोंको पवनसे हिलते देखकर जान पड़ता था कि इनके पुष्पोंको जो स्त्रियोंने चुन लिया है इसीसे-अपना वैभव औरके काम आते देखकर ये प्रसन्नतासूचक नृत्य कर रहे हैं।

इस प्रकार वनविहार करते करते सबको और अपने लोगोंको भी थके हुए जानकर राजा अजितसेनने जलकेलिके योग्य वस्त्र पहनकर पवित्र जलवाले सरोवरमें प्रवेश किया। स्वभावसे ही डरपोक स्त्रियोंके रोएं खड़े हो आये और वे नाभितक पानीमें भी पतियोंके हाथ पकड़े हुये धीरे धीरे पैर रखती हुई बड़ी देरमें उतरी।

उस मारे पानीको अपने कठिन स्तनोंसे आगेको ठेलती हुई कमलनयनी स्त्रियाँ अपने विस्तृत और कठिन मस्तकसे पानीको हिलोरनेवाली जंगली हथनियोंका अनुकरण करने लगीं। निर्मल जलके भीतर युवतीके मुखको कमल समझकर चूमनेकी चेष्टा करनेवाला मतवाला भौंरा व्यर्थ श्रमके सिवा और कुछ न पाता था। सच है, मदसे मूढ़ मनुष्य हितको नहीं जानता।

सरल नवीन मृणाल-नालको बाहु और चंचल भ्रमरोंको नेत्र समझकर किसी कृशांगी स्त्रीने अपने शरीरका अनुकरण करनेवाली कमलिनीको धोखेसे लिपटा लिया। लहरोंसे कपड़ा हट जानेपर विस्तृत नितम्ब देशको नजर गड़ाकर देखते हुये पतिको देखकर लज्जित हुई कोई स्त्री थपेड़ोंसे जलको उछाल कर उसे मैला करने लगी।

नाभितक जलमें उतरकर शिथिल वेणीको बिखेर कर कौतूहलसे तैरती हुई किसी स्त्रीके स्तन ही "तोंबी" का काम करने लगे। लोगोंके भयसे पतिके उड़ जाने पर भी पानीके भीतर विमुग्ध भावसे युवतियोंके घने स्तनोंको चक्रवाक समझ कर देखती हुई चक्रवाकीको विरहकी बाधा नहीं हुई।

देखो, यहां इस स्वभावसे ही रम्य तटपर हे सुन्दर शरीर-वाली! यह राजहंसी स्थिर होकर नहीं रहती। तुम्हारी चाल सीखनेका अभ्याससा करती हुई यह राजहंसी इधर उधर आ-जा रही है।

यह सामने आता हुआ मधुर स्वरवाला भ्रमर भी कमलिनीके रसको छोड़कर मेरी तरह तुम्हारे स्वाभाविक सुगन्धयुक्त मुख-कमलका रस पीना चाहता है।

हे सुन्दर बालोंवाली! अपनेसे विमुख हुई स्त्रीको अनेक प्रिय वचनों और चेष्टाओंसे मनाता हुआ यह कोकपक्षी मुझे भी रूठी हुई प्यारीको प्रसन्न करनेवाली खुशामदकी बातें सिखला रहा है। यह मछली जलसे वारम्वार आकाशकी ओर उछल रही है। हे नतांगि! मेरी समझमें तुमने इसके विलासको नेत्रोंसे हर लिया है, इसीसे यह तड़फ रही है।"

इस प्रकार जलके मनोहर जीवोंको दिखलाता हुआ युवक

चकोरनयनी प्रियाके गलेमें बाँह डाले हुए सरोवरके भीतर उसे रमाने लगा। दूसरे पुरुषने कमलोंके बीचमें खड़ी हुई प्रियाके मुखको विशेष विलासोंके द्वारा पहचान कर भी 'यह कमल है' इस प्रकार कहकर पास जाकर धूर्ततासे अनजान बन चूम लिया।

कमलकी रजसे लाल हुए सौतके दोनों स्तनोंमें पतिके नख-चिह्नोंका भ्रम करके ईर्ष्यायुत दूसरी स्त्रीने प्रियतमसे कुछ कहा नहीं, किन्तु कुटिल कटाक्षोंकी वह मार मारने लगी। लोगोंके द्वारा दलीमली गई कमलिनीको देखकर जान पड़ता है कि अपने मधुर विलासोंसे शोभित जलविहार करती हुई स्त्रियोंके मुखचंद्रसे हारकर ही वह यों मलिन हो गई है। जलने स्त्रियोंसे यह अदलाबदली करली कि स्त्रियोंके ओठोंका (पानका) राग और पैरोंका (महावरका) राग स्वयं ले लिया और उनके चित्तको अनुरागसे भर दिया।

कठिन कुचोंकी टक्करोंसे चूर होकर भी पानी बार बार उनके हृदयपर पड़ता था। पण्डित भी जब स्त्रियोंमें मोहको प्राप्त हो जाते हैं तब जड़ोंकी क्या बात है? पतिको धोखा देनेके लिए मृगनयनीने पानीमें गोता लगाया। उसके अंगरागकी गन्ध पाकर भौंरे वहीं पर मड़राने लगे। इससे पतिको उसकी सूचना मिल गई।

"हे मनोहर अंगवाली! तुम्हारे शरीरकी कान्तिके पानी (आब) में ही मेरी जलकेलि समाप्त हो जाती है; मुझे और जलकी क्या जरूरत है?" यह कहकर दूसरेने जोरसे प्रियतमाको लिपटा लिया। बारबार गोता लगाती हुई स्त्रियोंको देखकर यह जान पड़ता है कि वे पतिसे यह कहकर कि "हमारा यह अरविन्दसुन्दर मुख स्वाभाविक है, हमने कमलिनीके मुखकी शोभा नहीं चुराई" शपथ ले रही हैं।

निरन्तर गिरती हुई लहरें मानों अच्छी तरह विट-वृत्तिका अभ्यास करनेके लिए उन विलासिनियोंकी अलकोंको खींचने, जंघाओं पर चढ़ने और छातियोंसे टक्कर मारने लगीं। मुसकानकी कान्तिसे शोभायमान मुखचन्द्रवाली कोई स्त्री मुखमें भरे जलको भरकर उवरे हुए शृङ्गार रसकी तरह प्रियतमके ऊपर डालने लगी।

जब तक एक स्त्रीके कुचमण्डल पर प्रियतमका फेंका हुआ पानीका चुल्लू पड़े तब तक उसकी सौतका हृदय आंसुओंके प्रवाहसे पहले ही भीग गया। शिथिल चोटीसे गिरे हुए फूलोंसे सरोवरका जल तारागण शोभित आकाशकी तरह जान पड़ता था। उसमें मृगनयनीका मुखकमल ही चन्द्रमाकी कमीको पूरा करने लगा। जलकंण-पूर्ण मानिनी स्त्रियोंके नेत्रों और तालावको नीलकमलोंमें भटक कर भ्रमर कहीं नहीं ठहर सकते थे।

जिनकी आँखें लाल हो रही हैं ऐसी स्त्रियाँ थककर दमभरके लिये जलकेलिको छोड़कर कौतुकके साथ तटपर बैठकर अपनी जांघोंसे भारी किनारेकी ऊंचाई मापने लगी। "अगर मैं मुंहकी हवा न दूंगा तो पानी पड़नेसे यह घायल ओठ तुमको पीड़ित करेगा।"

इस प्रकार कपट करके किसी नायकने दांतकी चोट खाये हुये प्रियाके ओठको खूब देर तक चूमा। मछलियोंसे परिपूर्ण पानीमें बारम्बार प्रवेश करते हुये स्त्रियोंके नेत्रोंने अवश्य ही अपनी प्रतिकृतिका बहना करके मछलियोंकी चंचलता चुरानेका इरादा किया है।

जिनके गोरे गालोंपर जलकण शोभायमान हैं ऐसी कमलवनमें खड़ी रानियाँ भ्रमर-भूषित लीला कमल हाथमें लिये हुये लक्ष्मी-देवीका अनुकरणसा कर रही थीं। जंघाओंके भारसे पग: पगपर

फिसल पड़नेवाली प्रियाओंको अपने दोनों हाथों पर उठाकर उनके स्तनोंका स्पर्श पानेके लिये लोलुप नौजवानोंने उन्हें प्रसन्न करते हुये किनारे पर पहुचाया।

कमलनयनियोंने किनारे पर आकर (सरीस लगे और दूसरे पक्षमें रसीले), राग (रंग, दूसरे पक्षमें अनुराग) से पूर्ण पुराने कपड़ोंको छोड़ दिया। उनसे पानी टपकते देखकर जान पड़ता है कि वे शोकसे आँसू बहा रहे हैं।

आकाशमें घूमनेसे थकसे गये सूर्य इधर अस्तातलके ऊपर विश्राम करनेके लिए चले, उधर ऐश्वर्यशाली राजा जलकेलिको समाप्त कर पुरमें पहुंचे। वहां जाकर उन्होंने परिजनों सहित खान-पान आदि किया।

इति नवमः सर्गः

दशम सर्गः

और लोगोंकी तो बात ही क्या, देवताओंका अभ्युदय भी बाधाहीन नहीं है, यह बात शरीरधारियोंको बतलानेके लिए सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुंच गये। प्रिय-संगके लिए उत्सुक अंगनाओंके कटाक्ष बाणोंसे घायल होनेके कारण ही मानों सूर्य-नारायणका शरीर अरुणकमलके समूहके समान लाल हो रहा है। पश्चिम दिशाका मुख दिननायकके आगमनसे (आनन्द मिश्रित लज्जाके कारण) लाल हो आया।

सन्ध्यारागसे वह ऐसी शोभायमान हुई मानों किसी आगत पतिकाने सारे शरीरमें कुंकुम लगाया हो। अस्ताचलने सूर्यको अस्त होनेके समय भी अपने सिर पर ही स्थान दिया। सच है, परोपकारी पुरुष कष्टके समय भी पूजा जाता है। मेरे देखते यह जगत् मलिन अन्धकारसे पूर्ण न हो, यह सोचकर ही जैसे सूर्यने अपने मण्डलको छिपा लिया। ऐसे प्रतापशाली दिननाथको भी अन्धकारने परास्त कर दिया। सच है, विधि ही बलवान है, शरीरधारियोंके पौरुष बुद्धि और सहाय इत्यादिका कुछ जोर नहीं चलता।

सूर्यके अस्त हो जानेपर भी मलिन अन्धकारने आकाशको छा लिया। क्या किया जाय? जिस देशमें गुणी नहीं रहते उस पर गुणहीन लोगोंका अधिकार हो ही जाता है। जोर जोरसे बोलते हुए अपने अपने घोसलेकी ओर जानेवाले पक्षियोंसे परिपूर्ण दिशाओंको देखनेसे जान पड़ता था कि सूर्यका वियोग होनेसे दिशारूपिणी रमणियां विलाप कर रही हैं।

सूर्यके अस्त होनेपर मलिन अन्धकारसे सब जगत्को व्याप्त देखकर दिशायें अपने विध्वंसके भयसे ही मानों अदृश्य हो गईं। जगद्रूपी भवनको प्रकाशित करके सूर्य-दीपके अस्त हो जाने पर

लोगोंने देखा कि आकाशमें उसके काजलके समान अन्धकार धीरे२ फैल रहा है।

इस प्रकार सारे जगत्को अपने संगसे मलिन बनाते हुए अन्धकारने यह बात प्रत्यक्ष कर दी कि लोगोंमें भले बुरे संगसे ही गुण और दोषका समावेश होता है। जिसकी दिनकी क्रियायें (पक्षान्तरमें आह्निक कर्म) निवृत्त हो गई हैं ऐसे प्रकाश (पक्षान्तरमें ज्ञान) से हीन और संभ्रम (पक्षान्तरमें भ्रम) से युक्त सारा विश्व, तम (पक्षान्तरमें अज्ञानान्धकार) से आवृत्त होकर जैसे परिवृत्ति व्यस्तभाव—(पक्षान्तरमें उन्मत्तवृत्ति या तिरस्कार) को प्राप्त हो गया।

निर्मल स्वभावका आदमी प्राणत्यागके अवसर पर भी कृतज्ञताको नहीं छोड़ता। देखो, सूर्यने दिनकी उन्नति की तो वह भी सूर्यके साथ ही अस्त हो गया। गुणी पुरुषकी सब लोग सेवा करते हैं और गुणहीनसे सब दूर भागते हैं। दिनके चले जाने पर कमलको देखो मलिन हो रहा है; लक्ष्मी (शोभा) ने उसे छोड़ दिया है।

दिशाओंमें अन्धकार-लेशको नाश करते हुए तारागण चमकने लगे। जान पड़ता है, ये मित्र (सूर्य) के विनाशको देखकर उग्र शोकसे पीड़ित आकाशके आंसुओंकी बूंदें हैं।

घोर अंधकारके समान काले चकवा-चकई मानों विरहकी आगके धुएंसे मैले पड़ गये हैं। वे सूर्यास्त होते ही आंसू गिराते और आर्त्त शब्द करते एक दूसरेसे बिछड़ गये। कमलकी डंडीके डोरोंके समान निर्मल चन्द्रमाकी किरणोंका समूह आकाशमें इस तरह जान पड़ता था जैसे समुद्रमें मोतियोंके प्रकाशकी राशि हो।

क्षणभर पहाड़की ओटमें आधा छिपा हुआ चन्द्रमा पूर्व दिशाके ललाटके समान शोभायमान देख पड़ा। उसका कलंकचिह्न ही फैली हुई अलकावलीके स्थान पर था। आकाशके ओर-छोर

तक फैली हुई किरणोंसे अंधकारको मिटाता हुआ चन्द्रमा क्रमशः ऊपर उठकर उदयाचलकी चूडामणिके समान शोभायमान हुआ।

उदयाचलकी चोटी पर विराजमान चन्द्रमाको देखकर जान पड़ता है कि उसके भीतर स्थित शश (चौगड़े) को मारनेकी इच्छासे अंधकाररूपी बहेलियेने जो बाण मारे हैं उनसे घायल होकर वह लाल हो गया है। प्रकाशरूपी धनुष हाथमें लेकर आकाश-रथ पर जब रात्रिके स्वामी चन्द्रमा चढ़े तब रात्रिको भोगनेवाला अंधकार परस्त्रीगमनसे डरकर ही मानों भागा। अंधकाररूपी घूंघटको खोले और नक्षत्ररूपी पसीनेकी बून्दोंसे सुशोभित मुखवाली रात्रि चन्द्रमाके संगममें सुरतनिरत स्त्रीके समान जान पड़ने लगी।

इस जगत्‌में बिना किसी कारणके भी किसी वस्तुके साथ किसी वस्तुका संघठन हो जाता है। चन्द्रमाके उदयमें खिली हुई कोकावेलीने यह बात स्पष्ट कर दी। खिली हुई कोकावेलीके मुख पर गिरते हुए भ्रमर चन्द्रमाके संगममें शृङ्गार किये कोका-वेलीका तिलकसे जान पड़ने लगे। गुणवान् पुरुषोंके आश्रयमें पुरुष अपने स्वाभाविक दोषोंको भी दूर कर सकता है।

आकाशने चन्द्रमाके संगसे अपनी मलिनताको मिटा दिया। उदयको प्राप्त चंद्रमाने समुद्रको उन्नति (वृद्धि) की पराकाष्ठाको पहुंचा दिया। बड़े आदमियोंका परोपकार करनेका स्वभाव सहज सिद्ध होता है। यह उनका गुण आधुनिक नहीं है। चन्द्रमाकी किरणोंके फैलने पर खिले हुए कुमुद कुसुमोंसे परिपूर्ण सरोवर और नक्षत्रगणमण्डित आकाश दोनोंकी एकसी शोभा हुई।

आकाशमार्ग नीच अन्धकारने स्पर्श कर लिया था, इसीसे इस रात्रिने अपनेको शुद्ध करनेके लिए चाँदनीके भारी सरोवरमें मानों प्रवेश किया है। पर्वतोंने कन्दराओंमें आकर छिपे हुए अन्धकाररूप हाथीको मारनेके लिए चन्द्रमारूपी सिंहको नहीं सौंप

दिया। सज्जनोंका शरणागतकी रक्षा करनेका स्वभाव कभी नहीं बदल सकता।

उदयके समय अरुणवर्ण चन्द्रमण्डलने आकाशमें ऊपर उठकर क्षणभरके लिए लोगोंके मनमें यह खयाल पैदा कर दिया कि वह पूर्व दिशाके मस्तक पर सुशोभित शिरोभूषणरूप गुड़हरका फूल है। समागमसे प्रसन्न चकई-चकवेका जोड़ा दिनको सुखी हुआ था वही रातको विरहसे विह्वल हो गया। जले विधाताको इस विडंबनाको धिक्कार है। स्त्रियोंने अपने प्रियों पर कोप करके तापित हृदयको जो मानसे कील लिया था उसे चन्द्रमा मानों किरणोंकी संसीसे उखाड़ रहा है।

पर्देके समान अन्धकारको जब चन्द्रमाकी किरणोंने (पक्षान्तरमें हाथोंने) हटा दिया, तब आकाशरूपी आँगनमें स्थित नक्षत्र श्वेत-पुष्प समूहके समान शोभाको प्राप्त हुए। चन्द्रमा करके किरणरूपी कुन्त शस्त्रके द्वारा धमकाया गया विश्वके भीतरका अन्धकार मूर्च्छाके मिससे वियोगिनी स्त्रियोंके चित्तोंमें घुस गया। रातरूपी वायुसे सुलगी हुई विरहकी आगमें जिनका चित्त जल रहा है उन विरहिणी स्त्रियोंको चन्द्रमाका मण्डल कामदेवके बाणों पर बाढ़ रखनेका 'सान' सा जान पड़ा।

चन्द्रमाकी किरणोंके स्पर्शसे प्रकट हुई पुष्पोंकी परागरजसे पुलकितसी कुमुदिनी जान पड़ी। प्रियसंगमके लिये जल्दी करती हुई स्त्रियोंके हृदयमें चन्द्रबिम्बको देखकर अनुरागका समुद्रसा उमड़ चला। महात्मा लोगोंका अभ्युदय स्वार्थके लिये नहीं, मित्रोंके उपकारके लिए ही होता है। कामदेवकी शक्तिरूप सम्पत्ति बढ़ानेके लिए ही चन्द्रमाका उदय हुआ।

पर्वतोंके शिखरों पर प्रकाशमान शिखाओंसे युक्त दिव्य औषधियोंको देखकर यह जान पड़ता था कि चन्द्रमाके आनेके उत्सवमें रात्रिरूपिणी स्त्रीने ये दीपक जलाकर रक्खे हैं। अपनी

कान्तिको बढ़ानेवाली रातको ही चन्द्रमाने नहीं प्रकाशित किया, साथ ही कुमुदिनीको विकसित किया। सज्जन लोग निरपेक्ष होकर परोपकार करते हैं।

रातके अधिक होने पर चन्द्रमाका प्रकाश पूर्णरूपसे फैल गया। तब स्त्रियोंको साथ लेकर कामीजनोंने संभोगके लिए एकांत स्थानमें प्रस्थान किया। झुकी हुई भौंहवाली स्त्रियोंके जो अंग विरहमें बहुत ही दुबले हो गये थे वे प्रियसंगसे उत्पन्न पुलकके द्वारा फिर मोटे-ताजे हो आये। हठ करते हुए प्रियकी चेष्टाके प्रतिकूल 'नहीं नहीं' करते स्त्रियोंको देखकर उसी क्षण अपनी आज्ञा टालनेसे कुपित कामदेवने धनुष उठाकर बाण चलाना शुरू कर दिया।

नव संगमसे उत्पन्न लज्जाके कारण सिर झुकाये कमलनयनी स्त्रियोंके अधरको प्रियतम हठपूर्वक सिर उठाकर डरते डरते पीने लगे। स्त्रीने अपने प्यारेको लिपटाने या ओठ चूमनेके लिए जो निषेध किया, इस निषेधसे, कामके विपरीत होनेके कारण, और भी उन कामोंके लिए अनुराग बढ़ने लगा। अन्तर रहित रतनोंकी आड़ पड़नेसे किसी स्त्रीको गिरा हुआ अपना वस्त्र न देख पड़ा।

प्रियके देखने पर उसीके अन्दाजसे उसने जाना कि मेरा वस्त्र खिसक पड़ा है, सहसा कपड़ा हटाकर जबतक कौतूहल युक्त नायक जघन स्थलको देखे तब तक नायिकाने मुखसे मुख मिलाकर चुम्बनमें उसे उलझा दिया। हाथसे अंग मसलना, मुख चूमना, लिपटाना, ओठ चूसना आदि विलासियोंकी विविध चेष्टायें कामकी आगमें घीकी आहुतिका काम करने लगीं।

मृगनयनियोंको उनके पतियोंने कसकर लिपटाया तो उनके हृदयमें रहनेके लिए अवकाश न पाकर बाहर निकले हुए संतोषके अंकुरोंके समान रोमाञ्च हो आया। हृदयमें संभोगके लिए अनुराग होनेपर भी सखियोंके पास आ जानेपर लज्जित होकर किसी स्त्रीने

मुख चूमनेकी चेष्टा करते हुए प्यारेको लिपटाकर उलझा रक्खा।

विरहकी गर्म लम्बी साँसोंसे जिसके अधर सूख रहे हैं ऐसी किसी स्त्रीने आये हुए पतिको अन्य बातें चढाकर दमभर उलझा रक्खा और मुख चूमने नहीं दिया। प्रेमके मारे बारम्बारं प्रणाम करके प्रिय वचन कहकर पतिने मानिनीको मनाया। तब उसने कामदेवसे पीड़ित प्रियतमको ढीले बाहुओंके बन्धनमें जकड़ लिया।

लिपटानेसे उत्पन्न रोमाञ्चने नायिकाके दुर्बल शरीरको परिपुष्ट करते हुए दृढ़ कमरबन्दकी गाँठ खोलनेके काममें विलासी पुरुषोंकी सहायता की। प्राणनाथके लिपटने पर स्त्रियोंके जो पसीना निकल चला उसे देखकर जान पड़ा कि उनके हृदयमें न समानेके कारण उबरा हुआ यह शृङ्गाररस उमड़ चला है। अत्यन्त मोटे स्तनवाली प्रियाको कसकर लिपटानेमें असमर्थ कोई पुरुष अपनी भुजाओंके और लम्बे होनेके लिए व्याकुलता प्रकट करने लगा।

प्रिय और मधुर वचन कहनेमें चतुर किसी रसिकने मानिनी नायिकाके मानको दूर करके उसके ओठके रससे अपने हृदयकी कामाग्निको बुझाया। बड़ी निर्दयताके साथ प्रियतमके नाखून मारने पर भी स्त्रियोंके स्तनोंको कड़े होनेके कारण वे नखक्षत नव कुंकुम केसरके समान ऊपर हो रहे।

कामी लोग अपनी प्यारी प्रियाओंके शरीरको भी हाथोंसे कसकर मसलने, उनके ओठ काटने, उनके नाखून मारने और बाल खींचने लगे। कामदेवकी लीला सचमुच टेढ़ी है अत्यन्त उपयोगके कारण मणिमालाकी तरह टूटी हुई भी कामियोंकी संभोगेच्छा स्त्रियोंके सीत्कार-गुण (गुण डोरेको भी कहते हैं) से फिर जुड़ गई।

सुरत-प्रसंगमें सुन्दर मधुर सीत्कार-शब्द, अव्यक्त मनोहर रव, और प्यारके वचन प्रियाओंके मुखसे सुनकर रसिकोंको

वह सुख मिला कि उसके आगे वे स्वर्ग-सुखको तुच्छ समझने लगे। इस प्रकार सुरतोत्सवके बढ़ने पर अजितसेनने शशिप्रभासे रमण किया। उसके बाद रानीके भुजपाशमें बंधकर कोमल सेजके ऊपर राजा सुखकी नींद सो रहे।

मंगलसूचक प्रातःकालकी तुरहीको घड़ीभर बजकर बंद हो जाने पर सूत-बन्दीजनोंने शयनगृहके द्वार पर जाकर स्तुतियोंके द्वारा राजाको यह जताया कि रात बीत गई। वे कहने लगे—

"हे नृपश्रेष्ठ! चन्द्रमाको अस्ताचलकी ओर जाते देखकर तुम्हारे मुखचन्द्रको इस जगत्की शोभाके लिए जगातीसी यह रात्रि फैली हुई तारागणकी कान्तिको दुपट्टेकी तरह समेटकर जा रही है।

हे राजन्! पूर्वदिशारूपिणी कुलकामिनीकी मांग पर फैले हुए सिन्दूरकी कान्ति धारण किये हुए यह प्रातःकाल शोभायमान हो रहा है। अब आप पलंगको छोड़िए। तुम्हारे मुखकानसे मिली हुई कान्तिको प्रातःकालके दीपक धारण करें।

ब्रह्माण्डभरमें फैले हुए आपके यशके समान शुभ्र शोभा धारण करनेवाला यह कुमुदवन खिलते हुए कमलोंकी ओर जानेवाले भ्रमरोंसे परित्यक्त होकर शोकके मारे संकोचको प्राप्त हो रहा है। हे स्वामिन्! ये चकई-चकवे तालावमें उत्सुकताके साथ मिल रहे हैं। ये काले रंगके पक्षी मानों विरहानलमें जलनेके कारण ही मटमैले हो गये हैं।

तुम्हारे हृदयमें स्थित कुंकुमलिप्त कामिनीके दोनों स्तनोंके समान ये जान पड़ते हैं। उदयाचलमें कुछ कुछ छिपा हुआ मण्डल जिनका ऐसे सूर्यकी कुन्त-सदृश किरणोंसे घायल होकर जंगलों और कन्दराओंमें घूमता हुआ यह अन्धकार आपके शत्रुओंका अनुकरण कर रहा है।

लतारूपी तरुणियोंको लिपटाये हुए ये वृक्ष सवेरे मोती ऐसी ओसकी बून्दोंसे अलंकृत अंगवाले होकर रतिके श्रमसे उत्पन्न पसीनेकी बून्दोंसे सुशोभित तुम्हारे रूपका अनुकरण कर रहे हैं। हे राजन्! पलंग पर पड़े हुए स्वामीको पृथ्वी पर एक पैर रक्खे हुए स्त्री जो बड़े प्यारसे चूमती है सो मानों भारी विरहके मार्गको तय करनेके लिए पाथेय ले रही है।

"हे सुतनु! अत्यन्त उन्नत दोनों कुचोंके इस विनाशहीन भारसे तुम्हारा शरीर यों ही खिन्न हो रहा है। इसलिए इस वृथाके कोपके भारको त्याग दो। अत्यन्त पीड़ितको पीड़ा पहुंचानेसे लाभ ही क्या है? मैं विरहके भयसे तुमसे यह नहीं कहता। क्योंकि हे कमलमुखी! मान-दोषसे दूषित होनेपर भी तुम सदा मेरे हृदयमें स्थित रहती हो।

मैं इसलिए कहता हूं कि यह बुरे परिणामवाला कोप तुम्हारे ही शरीरको सन्ताप पहुंचावेगा। देखो यह मुर्गा अपने शब्दसे सवेरा होनेकी सूचना देता हुआ मानों तुमसे कह रहा है कि मनका मैल मिटाओ, दयाका भाव धारण करो; चक्रवाककी वृत्ति धारण करनेवाले प्रणयी पर क्रोध करना ही क्या? हे सुन्दर केशोंवाली! मेरी यह धारणा नहीं है कि कठिन कुचोंके संसर्गसे तुम्हारा हृदय इतना कठिन है। विषके वनमें उत्पन्न अमृतमय वृक्ष अपनी मधुरताको क्या कभी छोड़ देता है?"

कोई रसिक प्रेमान्ध होकर प्रणय कोपसे मुंह फेरकर सोई हुई प्रेयसीको ऐसे प्रिय प्रवचनोंसे प्रसन्न करके उससे लिपट जाता है। नख-क्षतरूपी पल्लवोंसे वह स्त्री भी लताकी सम्पूर्ण उपमाको प्राप्त होती है।

घोड़ोंपर नवीन सूर्यका घाम पड़ता है। घोड़ोंका श्रृङ्गार करनेवाले लोगोंको उससे भ्रम हो जाता है कि उन्होंने किस

घोड़ेके शरीरमें कुंकुम लगाया है और किसके नहीं लगाया है। अतएव वे हाथमें कुंकुम लिये हुए सूर्यके और ऊपर चढ़नेकी प्रतीक्षा करते हैं।

प्रतापी राजाओंको नीचा दिखानेवाला यह राजा मेरा अपने ऊपर होकर जाना न देख सकेगा, यही सोचकर मानो भयके मारे सूर्यदेव धीरे धीरे ऊपर ऊठ रहे हैं।

ललित पद (स्त्रीपक्षमें पैर)-विन्याससे अभिराम प्रियाके समान ऐसी वन्दीजनोंकी वाणी सुनकर राजा अजितसेन, निरपन्द उच्छ्वासके साथ जिनके भीतर भ्रमर सो रहे हैं उन कमलपुष्पोंके साथ ही जागे—इधर कमल खिल पड़े और इधर वे जाग पड़े।

सूर्य इधर अरुण कांतिसे पूर्व दिशाको विभूषित कर चले और उधर किसी तरह गलेसे प्रियतमाके भुजपाशको हटाकर राजाने रातको रति-समरके प्रसंगमें गिरी हुई उज्ज्वल हारकी मणियोंसे परिपूर्ण होनेसे सागरतुल्य शयनको छोड़ दिया।

द्वारके अग्रभागमें लगी हुई निर्मल अरुण मणियोंकी फैली हुई ज्योतिसे सुशोभित शरीरवाले राजा अजितसेन, स्वाभाविक महान् तेजसे परिपूर्ण होनेके कारण, उदयाचलके शिखरसे उदित हुए सूर्यनारायणके समान शयनगृहसे, लोगोंको आनन्द देनेके लिए बाहर निकले।

इति दशमः सर्गः

एकादश सर्ग

प्रातःकाल होनेके बाद दिन चढ़नेपर राजा अजितसेन स्नान आदि नित्यकर्म करके वस्त्राभूषण धारण कर सभाभवनमें सिंहासनके ऊपर विराजमान हुए। शरणागतवत्सल राजा जब इस तरह आमदरबारमें आकर बैठे तब पहले प्रधान द्वारपालके द्वारा आनेकी सूचना देकर राजा लोगोंने भीतर प्रवेश किया और पृथ्वीपर सिर रखकर चक्रवर्तीकी वन्दना की।

प्रतीहार जब यथास्थान सब सभासदोंको बिठा आया तब सभाभवनके आंगनमें सेवाके लिए उपस्थित गजराजको राजाने देखा। राजाने देखा, वह गजराज अपने ही समान महा शक्तिशाली है। जैसे राजा बड़े वंशवाले हैं वैसे ही वह भी बड़े वंश (पीठकी हड्डी) से सुशोभित है। जैसे राजाके लम्बे लम्बे हाथ हैं वैसे ही उसका भी हस्त (सूंड) लम्बा है।

तब कौतूहलवश राजाने वीर पुरुषोंको हाथीसे लड़नेकी आज्ञा दी. राजाकी आज्ञासे एक धीर वीर पुरुषने आकर गजराजकी मोटी सूंडमें एक घूंसा मारा। जबतक गज उसके ऊपर धावे तबतक दूसरेने पीछेसे उसके अंकुश मारा। अत्यन्त कोपित गज घूमकर पीछेवालेकी तरफ मुड़ा, उधर दूसरेने फुर्तीसे उसकी दाहनी कोख पर चोट की।

इस प्रकार राजाकी आज्ञासे हाथीसे भिड़नेका अभ्यास करनेवाले लोग जब कुपित गजराजको सताने लगे तब उसने भागनेमें अशक्त किसी आदमीको आगे सूंड फैलाकर पकड़ लिया। मदांध हाथीने वशमें आये हुए उस पुरुषको, लोगोंके हाहाकार करते देखते हुए ही ऐसा जमीन पर पटका कि उसके सब अंग चूरचूर हो गये।

शरदऋतुके मेघके समान क्षणभरमें ही उस मनुष्यको शरीर

और प्राणके साथ विनष्ट होते देखकर राजाको बड़ी दया आई। उसी समय उनके हृदयमें इस प्रकार खेदके बाद निर्वेदका उदय हुआ—

अहो! संसारकूपमें पड़े हुये लोगोंकी अनियत स्थितिको देखो। यह जीवनकी स्थिति बिजली और शरदऋतुके मेघोंसे भी बढ़कर चंचल है। रोगसे छुटकारा मिला तो सिरपर बिजली गिरना चाहती है। उनसे बचे तो शस्त्र, विष, अग्निरूप कण्टक सामने खड़े हैं। अनेक मौतके सामानोंसे भरे इस संसारमें यह क्षुद्र मनुष्य कब तक जी सकता है।

शरीर-धारियोंका शरीर, धन, जवानी, आयु और अन्य चीजें भी सब अनित्य हैं। तथापि लोग इन सब चीजोंको नित्य समझते हैं। यह कैसा महामोह है? "आज यह करता हूं, कल यह करूंगा, परसों यह करूंगा," इस प्रकार सोचकर अनेक कर्तव्योंके झंझटोंमें पड़ा हुआ यह पुरुष सिरपर आई मौतको देख भी नहीं सकता।

सज्जनोंको नापसन्द पापसे नहीं डरता, होनेवाली दुर्गतिके दुःखको मानता ही नहीं, विषय रूपी मांसकी आशामें लुभाया हुआ मनुष्य इसी तरह सैकड़ों कुकार्य कर डालता है। मतवाली नारीके कटाक्षोंके समान चञ्चल लक्ष्मी सदा साथ नहीं रहती।

और, प्रज्वलित बुढ़ापेके अग्निवत्को जवानीका जंगल कबतक सह सकता है? पहले प्रिय और पीछे अप्रिय विनाशके होनेवाले और स्वयं छूट जानेवाले विषय, काल-सूर्यकी किरणोंसे नष्ट इन गौर शरीरका, जीर्ण कर डालेंगे। धन और सम्पत्तिको चाहनेवाले बान्धव मुझ श्रीहीनको धीरे धीरे छोड़ देंगे।

जब आमके पेड़में फल या मञ्जरी कुछ नहीं रहता तब कोकिलाएं उसे छोड़ जाती हैं। इस संसारमें लोगोंका जीवन पतनशील पके हुए फलके समान है। स्त्री-पुत्र-परिवार सम्पत्ति

आदि परिग्रह क्षणभंगुर है। किन्तु जीवके किये शुभाशुभ कर्मोंको कोई किसी तरह मेट नहीं सकता।

क्रोधादि कषायरूप ईन्धनसे प्रज्वलित और बहुत ऊंचे चढा हुआ संसाररूप अग्नि निरन्तर जल रहा है, वह अगर ज्ञानके जलसे बुझाया न गया तो शान्त नहीं होता। इस दुष्ट भयंकर संसारसे ही वध-बन्धन आदि अनर्थ हुआ करते हैं। अगर इस संसारकी जड़ काट दी जाय तो फिर वे अनर्थ नहीं हो सकते। बिना कारणके कहीं कार्य नहीं होता।

विषयवासनामें पड़ा हुआ मनुष्य शुभाशुभ कर्मोंके बन्धनमें बन्ध जाता है। जिसकी इसके विपरीत भावना होती है वह कर्मोंके बन्धनसे दूर रहता है। बादलसे पानी बरसते रहनेपर धूल आकाशमें नहीं जम सकती। जन्म-समुद्रमें पड़े हुए प्राणी इस चराचर जगतमें कोई भोग ऐसा नहीं जिसे नहीं भोगते। फिर ये लोग विषयांध होकर मोक्षके साधनोंसे क्यों विमुख रहते हैं?

स्वल्पसुखके लोभमें पड़कर जो जीव दुरन्त भोगोंकी ओर जाती हुई अपनी बुद्धिको निवृत्त नहीं करता वह वृद्धिको प्राप्त संसार-लताको किस तरह उखाड़ेगा? पाप कर्मका क्षय होनेपर किसी तरह इस दुर्लभ मनुष्य-जन्मको पाकर फिर जो लोग हित (मोक्ष) की ओर ध्यान नहीं देते वे आपदाओंकी खान इस संसारसागरमें गिरते हैं।

आनेवाले दुःखके कारण स्वरूप संसारके सुखकी अज्ञ लोग अगर प्रशंसा करते हैं तो फिर विष-मिले गुड़का खाना भी प्रशंसनीय होना चाहिए! प्रतिबंधक रूप क्रोध, मान आदि कषाय-शत्रुओंको शम-खड्गकी धारासे निश्चय मारकर इस समय मोक्ष-कामिनीको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले मुझको इस जगतमें कौन रोक सकता है?

गर्वित पाप-शत्रुओंको मारकर अपने कर्म और प्रकृति (पक्षान्तरमें प्रजा) को वशमें लानेवाले सिद्धिभागी मुझको तपोवनमें जानेपर भी वैसा ही अखण्डित निष्कण्टक राज्य प्राप्त रहेगा।

चित्त ! तूने भोग-लुब्ध रहकर कष्ट देनेवाली चारों गतियोंको चिरकाल तक देखा है। इस लिए तू शान्त हो जा। अब इसके बाद और क्या क्या क्लेश देगा ? जन्म मरणसे डरनेवाले, विवेकी, आपत्तिहीन सम्पदाओंमें मन लगानेवाले मेरे समान लोग भी अगर इन्द्रियसमूहको जीतनेमें समर्थ न हों तो निश्चय है कि मोक्षवधू बिना पतिके ही रहेगी।

इस प्रकार विषयोंकी ओरसे मन फिराकर पुनर्जन्मके भयसे डरे हुए चतुर राजाने राज्य छोड़कर तपोवन जानेका इरादा कर लिया। जो अपनी भलाईसे नहीं चूकता वही पण्डित है।

इसी समय मालीने आकर खबर दी कि बड़े बड़े गुणोंके आकर और अन्धकारको सूर्यके समान मिटानेवाले गुणप्रभ नामक मुनिराज अन्य बहुतसे मुनियों सहित विहार करनेके लिए बागमें आये हैं।

शिवंकर नामक उद्यानमें आकर ठहरे हुए मुनिके पवित्र आगमनकी खबर पाकर समर्थ राजा अजितसेन आनन्दसे " मैं कृतार्थ हो गया " यह कहते हुए शीघ्र अपने आसनसे उठ खड़े हुए। पुरवासी लोगोंके साथ अजितसेन पुरसे निकले और संसार-दुःखसे डरे हुए राजाओंसे धर्मकी बातें करते हुए मुनिके पास पहुंचे।

दर्शनके लिए उत्कण्ठित राजा जब बागमें पहुंचे तब मालीने वहां एकान्त जीव-जन्तु-हीन पवित्र और शोभासंपन्न महामुनिका आश्रम उनको दिखला दिया। वहां राजाने देखा कि ध्यानावस्थामें स्थित और तपसे कृश-शरीर एक मुनि, जिन्होंने मोहरूपी शत्रुकी

जड़ उखाड़ डाली है सूर्यकी किरणोंको सहते हुए आतप-योगकी साधना कर रहे हैं।

ऐसे ही राजाने विशुद्ध सिद्धान्त समुद्रके पारंगत दूसरे यति-वरको देखा कि वे जिनमतकी प्रभावनामें लगे हुए धर्म संबंधी कथायें कह रहे हैं। राजाने अन्य एक साधु-सूर्यको देखा कि वे शास्त्र प्रमाणरूपी उज्ज्वल किरणोंसे वादीरूप जुगनुओंको प्रभाहीन करते हुए लोगोंको ज्ञानका प्रकाश दे रहे हैं।

राजाने अन्य एक तपोधनको देखा कि वे त्रिकालके बीचमें स्थित, अज्ञानियोंके लिए अगोचर जो परोक्ष (इन्द्रियातीत) वस्तु है उसके सम्बन्धमें यथार्थ उपदेश दे रहे हैं, और अपने मुनि मार्गकी महत्ता उन्हें दिखला रहे हैं।

इस प्रकार स्वाध्याय आदि अनेक चेष्टाओंमें लगे, प्रशंसनीय प्रवृत्तिवाले मुनियोंके बीचमें स्थित योगीश्वर गुणप्रभको प्रणाम करके अजितसेन यों उनकी स्तुति करने लगे—हे नाथ! आप संसारका अन्त कर देनेवाले हैं। जो आत्मज्ञानी मनस्वी लोग क्षणभर भी आपका ध्यान करते हैं वे शुभको प्राप्त होकर कृतार्थ हो जाते हैं।

हे कृतार्थ! फिर तुम्हारे दर्शन होनेपर कृतार्थ होनेमें क्या विचार करना है? सूर्यसदृश जो आप हैं उनकी वचनरूपी किरणें अगर न सञ्चारित हों तो अज्ञानके पर्देसे आवृत्त और मिथ्यादृष्टिकी सेवासे भ्रमपूर्ण यह जगत् कैसे बोधको प्राप्त हो?

हे ईश। निराश्रय होकर अधोगतिमें गिरते हुए देहधारियोंके लिए आप अवलम्ब हैं। स्थिर लक्ष्मीके मुक्तिमहलके शिखरपर पहुंचनेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए आप ही सीढ़ी हैं। खिलते हुए कुन्दकुसुमके समान कांतिवाले अपरिमेय शांति, दया, दम आदि गुणोंसे आपने और तद्रूप किरणोंसे चन्द्रमाने जगत्‌को प्रकाशित कर रक्खा है।

हे सूर्यसदृश! आपकी वाणीरूपी प्रकाशशील किरणोंसे प्रकाशित हुए जगत्‌में जिन अभागोंने मार्गशुद्धि नहीं प्राप्त की वे अवश्य ही उल्लू हैं। अनेक जन्मके हार्दिक अन्धकारको नाश करनेवाले जगद्गुरु जो आप अपूर्व सूर्य हैं उनके मुखको जिन्होंने नहीं देखा उनका जन्म ही वृथा गया।

नाशरहित जिस मुक्ति पदवीको और लोग चिरकालमें भी नहीं पहुंचा सकते आपकी शरणमें आते ही वह पदवी प्राप्त हो जाती है; यही हमको बड़ा विस्मय है। अविनाशिनी मोक्षलक्ष्मीको रोकनेवाले क्रोधादिक वैरियोंको जीत लेनेसे जो आपका महान् अभ्युदय हुआ है उसका वर्णन आप ही ऐसे महानुभाव लोग कर सकते हैं।

मुनिकी ऐसी मनोहर स्तुति करके विनयपूर्वक जब राजा सामने बैठ गये तब उनको मूर्तिमान् विनय समझनेवाले मुनि लोग कौतूहलके साथ देखने लगे। मुनिवर और नरवरसे संभाषण होते समय दोनोंके मुख दोनोंकी कान्तिसे चन्द्रमाके समान देख पड़ते थे। जान पड़ा कि एक चन्द्रमाको धारण करनेवाले आकाशको परास्त करनेके लिए पृथ्वीने दो चन्द्रमा धारण कर लिये हैं।

सज्जनोंके नायक और निस्पृह गुणप्रभ मुनिने सबकी ओर देखकर, और अजितसेनको पवित्र धर्मवृद्धि देकर, उनके गुणोंपर प्रसन्न हो यों कहना शुरू किया—राजा होना स्वभावतः मदका कारण समझा जाता है। किन्तु इन महानुभाव महाराजमें उसके विपरीत देखा जाता है। इस अभ्युदयके अद्भुत आश्चर्यको तो देखो।

ये न्यायसे मनुष्योंको, वैभवसे देवताओंको, विनयसे पूर्णकाम योगियोंको और अपने तेजसे राजाओंको विस्मित करते हैं। कहाँ यह अतुल विनय और कहाँ यह साम्राज्यकी प्रभुता।

गुणालंकृत इन राजाको सब गुण मानों परस्पर प्रसन्न होकर एक-साथ भेजते हैं।

इन महाराजको जैसी चिन्ता परलोक बनानेके बारेमें है वैसी चिन्ता न अपना वैभव बढ़ानेके लिए है, न बान्धवोंके सम्बन्धमें है, और न मनोहर संसार-सुखके बारेमें है। महात्मा लोगोंके काम भलाईका ही अनुसरण करते हैं।

इस प्रकार कहते हुए मुनिवरके आगे विनयसे सिर झुकाकर चक्रवर्ती अजितसेनने संक्षेपमें कहा कि मैं आपके आश्रममें ही जानेवाला था। पर मेरे पुण्योंके कारण आप यहीं आ गये। जब मनुष्य दुर्गतिमें गिरने लगता है तब सेना आदि वैभव और बान्धव कोई भी आश्रय नहीं दे सकते। यह जानकर मेरा जी चाहता है कि मैं आपकी ही सेवामें रहूं।

हे वरदायक! इसलिए प्रसन्न होकर आप मुझे अपनी दीक्षा दीजिए। क्योंकि आपकी थोड़ीसी भी कृपा शुभ करके अशुभको मिटा देती है। सज्जनोंका अनुग्रह क्या नहीं कर सकता? इस प्रकार राजाने जब अपने हृदयकी बात कह दी तब समर्थ राजाके साहसकी परीक्षा करनेके इरादेसे मुनिवरने उन्हें उनकी इच्छासे फेरनेवाले वचन कहना शुरू किया—

राजन्! कठिन शरीरवाले मुझ सरीखे साधुजन जिस दुष्कर तपकी आँच नहीं सह सकते उसको तुम्हारे सरीखे कुंकुम लेपसे ललित सुकुमार लोग कैसे कर सकते हैं? तुम दयालु, धर्मको ही धन समझनेवाले और वैभवको परोपकारमें लगानेवाले हो। तुम्हारा चरित्र ऐसा नहीं है कि विद्वान् लोग उसकी निन्दा करें। तुम गृहस्थ हो, तब भी तुम्हारा आचरण तपस्वियोंके ही समान है।

इसलिए हे राजन्! आप दयालु साधुवत्सल मोक्षकामुक बने रहकर गुणधर इस पृथ्वीका शासन करो। तुम इन अनाथ लोगोंको

पालो और उबारो। दीनोंको उबारनेसे बढ़कर कोई तपस्या नहीं है।

मुनिके इस प्रकार कहने पर दृढ़-संकल्प राजाने मोक्षके मार्गमें दृढ़ होकर फिर इस प्रकार अपने पक्षका समर्थन आरम्भ किया—हे ईश! मैं परम पूजनीय जो आप हैं उनकी इस आज्ञाके विषयमें फिर जो कुछ कहना चाहता हूं उसका कारण जन्म-मरणके दुःखोंका जंजाल ही है।

इन जीवोंको इष्ट अनिष्टके वियोग संयोगसे यदि दुष्ट पीडायें न होतीं तो जिनेन्द्रचन्द्र द्वारा धारण किये गये इस सत्य और महा कठिन महाव्रतको कौन ग्रहण करता? यदि गृहस्थ रहनेपर भी विचित्र दुःख देनेवाला जन्म-मरणका चक्र मिट जाता है तो फिर आप ऐसे विवेकी महापुरुषोंका तपमें परिश्रम करना वृथा ही ठहरा।

जिन-दीक्षामें जिनका मन लगा हुआ है उन उदार चरित्र राजाके ये वचन सुनकर मुनिवरको यह निश्चय हो गया कि इन्होंने सोच विचार कर यही दृढ़ निश्चय कर लिया है। तब उन्होंने राजाकी प्रार्थनाको स्वीकार किया। परिवारके बन्धनसे मुक्त राजाने मुनिकी अनुमति पाकर अपने पुत्रको वह निष्कण्टक राज्य दे दिया।

उसके बाद उन्होंने परिग्रह छोड़कर संयमका अलंकाररूप तप ग्रहण कर लिया। घोर तप करते हुए भय-शून्य राजा पुर-बाहर पर्यङ्कासनसे स्थित रहकर हेमन्तकी रातें बिताने लगे। धैर्य-वस्त्रधारी राजा वहीं पाले और ठंडी हवाके वेगको सहते थे।

भयानक सैकड़ों उल्कापातोंसे दुस्सह और घोर घन-घटाओंसे अन्धकार फैला देनेवाली वर्षाऋतुकी रातोंमें समताशाली वे पेड़ोंकी जड़में बैठे हुए मूसलधार पानी सहते थे।

वे गर्मियोंमें सूर्यके सामने खडे रहते थे। तपी हुई सुईके समान शरीरमें चुभनेवाली सूर्य-किरणोंके लगनेपर भी वे ध्यानसे

नहीं डिगे। कर्त्तव्यकाम कितना ही कठिन क्यों न हो उसे करनेके लिए सज्जन लोग दृढ़ रहते हैं।

अनित्य आदिक बारह भावनाओंमें हरघड़ी मन लगाये हुये अजितसेनने मदको बिल्कुल मिटा दिया। भूख आदि परीषहकी बाधा उन्हें जरा भी पीड़ा न पहुंचा सकी। तपोलक्ष्मीसे आलिंगित और उत्तम क्षमादि दश धर्म तथा शुभ लेश्यारूप उज्वल परिणामोंसे युक्त अजितसेनने इस प्रकार विविध तप करके महान् गुणवाले पाँच परमेष्ठियोंका हृदयमें ध्यान करते हुए समाधि लगाकर अपने प्राण त्यागे। मरणके उपरांत अच्युत नामक स्वर्गमें जाकर वे अच्युत नामक इन्द्र हुए।

कमलनयन नयनाभिराम अच्युतेन्द्रने सम्यक्त्वरत्नसे विभूषित होकर बाईस सागर-परिमित आयु तक वहाँ दिव्य सुखका अनुभव किया।

जब स्वर्गकी आयु पूरी हो गई तब वहांसे आकर वही अच्युतेन्द्र इस जन्ममें तुम रत्नसञ्चयपुरके विजयी राजा कनकप्रभके पुत्र पद्मनाभ हुए हो। हे लोक मनोहर! तुम्हारी माताका नाम सुवर्णमाला है। मुनिजन जिनके चरणोंमें प्रणाम करते हैं वे मुनिवर इस प्रकार पूर्वजन्मका हाल कहकर चुप हो रहे।

पूर्वजन्मका हाल सुनकर जिनके रोमाञ्च हो आया है उन राजाने भी हाथ जोड़कर मुनिवरसे यों कहना शुरू किया—

भगवन्! आपकी कृपासे जन्मान्तरका हाल मैंने जान लिया; तथापि मेरे चित्तका संशय नहीं जाता। नाथ! इसलिए कुछ ऐसा विश्वास दिलाइए जिससे मेरी यह संशयसे डोलती हुई बुद्धि निःसंशय हो जाय। राजाके ये वचन सुनकर मुनीन्द्रने उनका सन्देह दूर करने लिए कहा—

राजन्! आजके दसवें दिन अपने झुण्डसे अलग होकर एक मदान्ध हाथी तुम्हारे नगरमें आवेगा। यह देखकर बहुत शीघ्र तुम खुद मेरे वचनोंके बारेमें विश्वास और निश्चय कर लोगे।

जगत्में बुद्धिमानोंका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ज्ञान सच्चा ही होता है, और इसी कारण प्रमाण माना जाता है।

इस प्रकार संतोष देनेवाले वचनोंसे संशयरूपी मलको दूर करके चुप हुए महाव्रतधारी वाग्मिश्रेष्ठ मुनिवरके चरणोंमें सिर रखकर अणुव्रत आदिसे विभूषित राजा पद्मनाभ अपनी राजधानीको लौटे। मुनीन्द्रने जिस दिन हाथीके आनेकी बात कही थी ठीक उसी दिन अकस्मात् चढ़ आई किसी शत्रुसेनाकी शंकासे डरकर "यह क्या है?" कहते हुए लोगोंका महा कोलाहल सुनाई पड़ा।

उस शब्दको सुनकर घोड़े कान खड़े करके उसी ओर देखने लगे, जिधरसे वह शब्द आ रहा था। "क्या, क्या, यह क्या है? जाओ, देखो" इस प्रकार राजाके पूछने पर एक आदमी वहाँ शीघ्र गया और वहांसे लौटकर लोगोंकी व्याकुलताका कारण जानकर आये हुए उस मनुष्यने कहा—हे देव! जिसके कपोलदेशसे मदजल बह रहा है ऐसे ऐरावतके समान बलशाली किसी एक हाथीने कहींसे आकर ऊधम मचा दिया है। वह गर्वित हाथी आपकी भुजाओं द्वारा सुरक्षित लोगोंको पुरके बाहर पाकर मार रहा है; इसीसे लोग चिल्ला रहे हैं। जो आदमी प्रकट होकर बाहर जाता है या भीतर प्रवेश करता है उसे वह सूंड़से पटक चूरचूर कर दिशाओंको बलिसी चढ़ा देता है।

बहुत कहनेकी जरूरत नहीं, वह हाथीका रूप धारण किये साक्षात् प्रलयकाल ही जान पड़ता है। मुनि जिसकी सूचना दे गये थे उस हाथीके आनेकी खबर पाकर राजा अपने हृदयमें प्रसन्न हुए। उदारबुद्धि राजा मनमें उस गजको काबूमें करना कठिन विचार कर कुछ विषादको भी प्राप्त हुए।

बाहुबल ही जिनका सहायक है उन राजाने अपने मनमें सोचा कि इस लिए अगर मैं इस दुष्ट हाथीसे अपने पुरवासियोंकी

रक्षा नहीं करता तो मेरी भूपति-पदवी ही वृथा है। यों सोचकर वे उस बली गजराजके सामने पहुंचे।

राजाने कसकर कमर बाँधी और सब सामन्तोंको मनाकर-दूर हटाकर अकले ही उसका सामना किया। वह भी बहुत कुपित हो सूण्ड बढ़ाकर और अपने अगले शरीरको ऊपर उठाकर उनके सामने दौड़ा।

राजाने उस आते हुए गजराजके मुख पर हथनीके मूत्रसे तर कपड़ा फेंका। जब तक वह उस कपड़ेमें उलझा तब तक वेगसे बगलमें आकर राजाने एक लाठी मारी। जब तक फिर वह घूमकर वेगसे सामने आवे तब तक राजा दूसरी बगलमें चले गये। उस हाथीने उधर मुड़कर जबतक सूंड़ चलानी चाही तब-तक राजा पद्मनाभ उसके पेटके नीचेसे होकर निकल गये। राजा फुर्तीसे इसी प्रकार उसके पीछे आगे और आसपास फिरने लगे। महलोंके आसपास चबूतरों पर चढ़े हुए सब लोगोंने उनको एकसाथ सब तरफ देखा।

इस प्रकार गजराजको थकाकर हाथमें अंकुश लिये पद्मनाभ उसके कन्धे पर चढ़ बैठे। देवता लोग प्रसन्न होकर स्वर्गसे उनके ऊपर भ्रमरसेवित स्वर्गीय फूलोंकी वर्षा करने लगे। बड़े धैर्यशाली अनुपम बल-वीर्यवाले सब देवगण भी सामने जाकर जिस गजराजको वश नहीं कर सकते थे उसको लीलाशाली पद्मनाभने खेलते खेलते अपने वशमें कर लिया।

सच है, पुण्यात्मा लोगोंके लिए इस जगत्‌में क्या असाध्य है? उदयको प्राप्त राजा पद्मनाभ वनमें केलि करनेके लिए बसे थे, इसलिए लोगोंने उस गजराजका वनकेलि यह यथार्थ नाम रक्खा। प्रसन्न पुरवासियोंके मुखसे यशोगान सुनते हुए राजाने पताकाओंसे सुशोभित उत्सवपरिपूर्ण पुरमें प्रवेश किया।

इति एकादशः सर्गः

द्वादश सर्ग

एक दिन एक कुशाग्रबुद्धि दूतने अपने स्वामीकी आज्ञासे सभामें स्थित पद्मनाभके पास आकर यों कहना शुरू किया—जिन्होंने सूर्यके समान कठिन महीभृतों (पर्वतों और दूसरे पक्षमें राजाओं) को अपने तेजसे तपाकर मित्र बान्धवोंके साथ ही शत्रुओंको भी महापद (मित्र-पक्षमें ऊँची पदवी और शत्रु-पक्षमें महाविपत्ति) को पहुंचा दिया है; और जिन्होंने श्रेष्ठ प्रभु-शक्तिकी समृद्धिसे सारी पृथ्वीका पालन करके अपने पृथ्वीपाल इस प्रसिद्ध नामको यथार्थ कर दिखाया है।

नीति, विक्रम और शक्तिसे शोभित जो बुद्धिमान् राजा प्रणतपुरुषोंको मान देकर और न झुकनेवालोंके मानको खण्डित कर, दोनोंके सम्बन्धमें मानद पदको प्राप्त हैं वे, हमारे स्वामी अपने मित्र जो तुम हो उनको आलिंगन कर मेरे द्वारा यह कहते हैं। क्योंकि दूत ही राजाओंका मुख होते हैं।

शरदृऋतुके मेघोंके समान उज्वल तुम्हारे गुण अत्यन्त दूर-वर्ती होने पर भी उसी तरह सत्पुरुषोंको प्रसन्न करते हैं जिस-तरह चन्द्रमाकी किरणें कुमुदोंको विकसित कर देती हैं।

सब दिशाओंमें फैली हुई तुम्हारी कीर्तिसे ही तुम्हारी विनय-वृत्तिका पता लगता है। जिस तरह महावृक्षकी फल-सम्पत्तिका अनुमान उसके फूलोंसे ही कर लिया जाता है। तुम्हारे धैर्यसे हारा हुआ समुद्र लज्जासे पानी पानी हो गया है। जिसमें समुद्रको अपने इस पराभवका अनुभव न हो इसीलिए—उसके तिरस्कारसे हुए शोकको शान्त करनेके लिए विधाताने पहले होसे उसे पानीका रूप दे दिया है। यह तुम्हारी नीति-प्रवृत्ति ही तुम्हारी हार्दिक सुशीलताको प्रकट करती है।

अपने स्वामीके अनुकूल रहनेसे ही हाथीकी भद्रता (भद्र-

मंसी, पक्षान्तरमें भद्र-नामक हाथियोंकी एक जाति भी होती है) जाहिर होती है। सो ऐसे गुणी होने पर भी तुम मुझे मदान्धसे देख पड़ते हो। क्योंकि तुम साधारण कार्योंमें भी पुरानी परिपाटीको छोड़कर उसके विपरीत चेष्टा कर रहे हो। हमारे तुम्हारे पूर्वजोंकी पूर्व स्थिति यह है कि हमारे वंशके लोगोंको तुम्हारे घरानेके लोग प्रणाम करते हैं।

मदमत्त हाथी जैसे अर्गला (जंजीर) को नहीं मानता वैसे ही तुमने इस पहली परिपाटीका पूर्णरूपसे उल्लङ्घन कर डाला है। मदान्ध हाथी बन्धनको प्राप्त होता है। यह देखकर भी अपना अनिष्ट करनेवाले गर्वको कौन बुद्धिमान् आश्रय देगा?

पैदायशी अन्धेके समान ही मदान्ध पुरुष भी इष्ट-अनिष्टको नहीं देखता। जन्मान्ध तो भला हृदयकी आंखों (बुद्धि) से देखता भी है, पर मदान्ध पुरुष तो न बुद्धिसे समझता है और इसी कारण आंखोंसे देखकर भी, नहीं देखता। शास्त्रज्ञ लोगोंने शरीरमें ही रहनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, हर्ष—ये छह शत्रु कहे हैं। जो राजा अपने हृदय-राज्यमें इनका शासन कर लेता है वही पृथ्वीका शासन कर सकता है, या करने लायक है।

जो राजा उक्त छह शत्रुओंके दलसे अपने मनको ही नहीं बचा सकता उसे, मानों अपने तिरस्कारके भयसे, सम्पदायें स्वयं छोड़कर खिसक जाती हैं। मैंने गजराजके समान तुम्हारी यह दुष्टतामयी अंकुशक्रिया बहुत दिनों तक उपेक्षाकी दृष्टिसे देखी। अब हमेशा ही अगर ऐसा बुरा व्यवहार तुम करते रहोगे तो वह मुझे दुस्सह जान पड़ता है।

मेरे जासूसोंने आकर खबर दी है कि मेरा वनकेलि-नामक गजराज तुम्हारे पुरमें स्वयं जाकर घुस गया था। उसे तुमने पकड़ लिया है। तुम्हें चाहिए था कि मेरी उस नष्ट वस्तुको तुम मेरे पास भेज देते। किन्तु तुमने मेरा कुछ ख्याल न कर

वह हाथी अपना लिया है। यह मैंने तुमसे निवेदन कर दिया। अब जिसमें तुम अपनी भलाई समझो, वह करो। अज्ञ पुरुषको हितकी बात सिखाई जाती है। तुम सरीखे नीतिसमुद्रके पारंगत पुरुषको उपदेश देनेकी कोई आवश्यकता नहीं।

राजन्! यह हमारे स्वामीकी उक्ति है। आपको उचित है कि नम्र होकर वह हाथी देदो! समुद्रके रहते नदियोंमें कहीं रत्न नहीं रह सकते। यह हाथी देकर अगर हमारे स्वामीको प्रसन्न कर दोगे तो वे तुम्हें और हाथी देंगे। और अगर वे दारुण कोप करेंगे तो न यह हाथी तुम्हारे हाथ लगेगा और न तुम्हारे ही हाथी तुम्हारे पास रहेंगे।

इस जयकी इच्छाको छोड़कर स्वामीके पास जाओ और उनके चरणोंकी सेवा करो। और अगर इस तरह तुम अधिक लाभ चाहोगे तो उस लाभकी जड़ भी जाती रहेगी। मैं जाकर स्वामीसे ऐसी बातचीत करूंगा कि वे आपकी इस ढिठाईको माफ कर देंगे। यह बात निश्चित है कि वे मेरे कहनेसे पानीको भी दूध माननेके लिए तैयार हो जायंगे।

हे परम प्रिय! अगर भला चाहते हो तो मेरा यह निष्कपट कहा मानो। अपनी स्त्रियोंसे " जय हो, जियो " यह कहलाते हुए एकान्तमें हमारे स्वामीकी सेवामें उपस्थित होकर अपनी रक्षा करो। इस प्रकार गर्वसे भरी शत्रुके दूतकी उक्तिका उत्तर देनेके लिए वज्रनाभने कुमारकी ओर देखा।

तब युवराजने यों उत्तर देना शुरू किया—तुम विनयप्रशमैक-भाषण (विनय और शान्तिसे वचन कहनेवाले; परन्तु श्लेषसे इसका अर्थ होता है-न्याय और शान्तिसे हीन वचन कहनेवाले) और परमन्यायसमर्थनके लिए उद्यत; (श्रेष्ठ न्यायके समर्थनके लिए उद्यत; परन्तु श्लेषसे अर्थ होता है-बिल्कुल अन्यायका समर्थन करनेके लिए उद्यत) हो।

तुम्हें छोड़कर और कौन ऐसे वचन कह सकता है ? तुम्हारे समान परमेधोद्यम-योग्यता (श्रेष्ठ बुद्धिको जागनेकी योग्यता; परन्तु श्लेषसे इसका अर्थ होता है-केवल ईंधन लानेकी योग्यता) से युक्त तुम सरीखे सचिव जिसके हैं उस तुम्हारे स्वामीके घरमें बहुतसी सम्पत्ति क्यों न हो पर तुम्हारे राजा संसारमें विनय-निरत (श्लेषसे नम्रताहीन) और महागुणी (श्लेषसे बिल्कुल गुणहीन) गिने जाते हैं। सज्जनों करके विशेषरूपसे निन्दित ऐसा करना ही उन्हें उचित है।

यदि दैवसंयोगसे यह गजराज हमारे यहाँ चला आया तो इतनेहीसे तुम्हारे स्वामीको इतना डाह क्यों हो गया ? पराई बढ़ती पर दुर्जनोंको डाह हुआ करता है।

हम पाई हुई अपनी चीज तुमको नहीं देते तो इसे तुम अन्याय कहते हो, किन्तु तुम जो पराई चीज अपनी कहकर लेना चाहते हो उसे क्या तुम न्याय कहोगे ? जानते हो, 'मैं पुरातनी प्रभु हूं" यह कहना कहां उपयुक्त होता है ? पृथ्वीका भोग खड्गके बलसे किया जाता है, पुरानी परिपाटीकी दुहाई देकर नहीं। गजराज हो या और कोई वस्तु हो, पुण्यात्मा पुरुषको जो वस्तु प्राप्त होती है उसे बली पुरुष अपनी कहकर बलपूर्वक लेले-लोकमें ऐसा न्याय कहीं नहीं देख पड़ता। और अगर वे अनाथवत्सल राजा मित्रतासे उस गजराजको मांगते हैं तो फिर 'हमने तुमको जता दिया' ऐसे धमकीके वचन क्यों सुनाते हैं ?

शत्रुपक्षको रोकनेवाले हाथी क्या उनके और नहीं हैं जो वे नासमझीसे इसी बहाने हम पर अभियोग लगाते या युद्ध करना चाहते हैं ? "मैं बलवान् हूं" यह अहंकार सर्वत्र सुखदायक नहीं होता। बादलको लांघनेकी कामना करनेवाले सिंहका अधिक उछलना ही उसकी मृत्युका कारण होता है ! बलके गर्वसे बड़ों

पर निष्फल आक्रमण या उल्लंघन करनेकी इच्छा रखनेवाला वह दुष्ट स्वयं अनुभव करके कड़ुए और मीठेके अन्तरको जान जायगा।

अगर क्षमा न रोकती तो इस प्रकार सोते हुए सिंहको जगानेवाला तुम्हारे स्वामीको हमारे स्वामी सहसा चढ़कर अवश्य मार डालते। जो शत्रुओंपर अपराध लगाकर आक्रमण करके उन्हें मारना चाहता है वह स्वयं अन्यके द्वारा अभियुक्त होकर विनष्ट हो जाता है। वायुकी सहायताको प्राप्त अग्नि जैसे औरोंको जलाता है तो स्वयं भी जलता है।

नाशको प्राप्त होनेवाले, काम-क्रोधादि व्यसनोंसे युक्त अथवा पुण्यहीन शत्रुको सहजमें जीता जा सकता है। बतलाओ, एक-एक जीतनेकी कामना करनेवाले तुम्हारे प्रभुने हमको इनमेंसे क्या समझा है? तुम्हारा मूढ़बुद्धि राजा क्या यह नहीं जानता कि अपनेसे बड़ेके साथ प्रीति और अपनेसे छोटेके साथ जबर्दस्ती करनेसे अभीष्ट सिद्ध होता है? अथवा प्रभुता पाकर किसे चेत रहता है?

क्या तुम नहीं जानते कि किसके बलसे तुम्हारा प्रभु अकण्टक राज्य कर रहा है? उस क्षुद्र निकम्मे पर हमारे स्वामीकी शङ्कासे ही शत्रुलोग आक्रमण नहीं करते।

शत्रुका दूत युवराजकी इस उक्तिसे बहुत ही क्रुद्ध गया। वह और भी आगे बढ़कर भारी गर्वके कारण गद्गद वाणीसे इस प्रकार कहने लगा—

सुकृतके उदय होनेपर मनुष्य अपने हितको अपनी ही बुद्धिसे जान लेता है। जिसके विधाता वाम है वह अपनी बुद्धिसे तो समझता ही नहीं, दूसरेके समझानेसे भी नहीं समझता! उपदेशक, शास्त्र या सत्संगसे अच्छी अथवा बुरी बुद्धि नहीं होती। मनुष्योंकी अच्छी या बुरी बुद्धिका होना दैवाधीन

है। जो अपने पौरुषका बखान करके वैसा ही कर दिखाता है उसीकी शोभा होती है। अपने पराक्रमका गर्व करनेवाले ऐसे बहुतसे मैंने देखे हैं जिनकी युद्धमें हंसी हुई है। जिसको अभ्युदयकी इच्छा हो उसे अपने और पराये अंतरको सोच लेना चाहिए। जैसे सिंह बादल पर बिना विचारे आक्रमण करके पत्थरोंमें अपने हाथ-पैर तोड़ लेता है वैसे ही उसका वह बिना विचारे किया हुआ पराक्रम बुरा ही फल करता है। अधिक भाग्य-सम्पत्ति पानेकी इच्छा रखनेवाला पुरुष अपनेसे छोटे या समानसे कलह करे तो ठीक भी है। बलवानसे उसका वैर ही क्या?

'मेरे बहुतसे आदमी हैं' इस ख्यालसे नष्ट हो गई है बुद्धि जिसकी वह सारे जगत्को जीता हुआ ही समझता है। वह यह नहीं जानता कि भारी काम आ पड़ने पर मेरा साथ कोई न देगा! गर्वसे स्तब्ध तट-तरु नदीके वेगसे गिर जाता है।

यह देखकर ही विद्वानोंने यह बात स्वीकार कर ली है कि प्रबलके आगे झुकना चाहिए। नदी और सागर दोनों ही बहुत सत्त्व (प्राणी और पक्षान्तरमें शक्ति) से युक्त, स्थिर आशय (हृदय और पक्षान्तरमें बुद्धि) वाले और अलंघ्य होते हैं; तथापि उन दोनोंमें परस्पर बड़ा भारी अन्तर है। हांमें हां मिलानेवाले इन खुशामदी बुरे सेवकोंपर आप व्यर्थका विश्वास न करें। अगर समुद्र क्षोभको प्राप्त हो तो वह वृक्ष-वेष्टित पहाड़को भी प्लावित कर सकता है। मेरा यह कहना स्वयं संग्राममें प्रकट हो जायगा। जबानसे मजा चक्खे बिना किसीको उसका भेद नहीं जान पड़ता। अथवा अपने विपक्षको हितका उपदेश करना ही व्यर्थ है। मुझे क्या, तुम जो चाहो सो करो। मित्रको हितकी शिक्षा देनी चाहिए, क्योंकि वह मान लेगा।

शत्रुके प्रति तो उपेक्षा ही करनी चाहिए। इसलिए चाहो तो पुत्रसहित वैरभाव छोड़कर हमारे स्वामीकी सभा भूमिको अपने

झुके हुए कमल सदृश मस्तकोंसे अलंकृत करो और चाहो धड़से अलग हुए मुण्डोंसे रणभूमिकी शोभा बढ़ाओ।

उस दूतके इस कथनसे युवराजसहित सारे सभासदोंको क्रोध हो आया। राजाने यह कहकर सबको शांत किया कि यह तो दूसरेकी उक्ति कह रहा है; इसमें इसका क्या दोष है? जाओ, इसके योग्य रहने खाने-पाने आदिका प्रबन्ध कर दो। इसप्रकार सचिवको आज्ञा देकर राजाने सभासदोंको छुट्टी दे दी और आप उठ खड़े हुए।

इसके बाद सलाहको समझनेवाले राजाने सलाहघरमें सब मंत्रियोंको बुलाया और आप भी युवराजसहित वहाँ उपस्थित हुए। बोलनमें प्रवीण राजाने मंत्रियोंसे यों कहना शुरू किया—हम भी नीतिशास्त्रमें निपुण हो गये, यह आप ही लोगोंकी महिमा है।

दिन जो सब जगतको प्रकाशित करता है सो वह सूर्यहीका प्रताप है। माता पुत्रको अपने कौशलसे बढ़ाती है, चतुरता सिखाती है, सावधान रखकर रक्षा करती है। यही सब सलूक आप लोगोंकी बुद्धि भी हमारे साथ करती है।

जिसके आप सरीखे गुरु सब कामोंकी देखभाल करते रहते हैं वह मैं सुमेरुके समान प्रयोजन आ पड़नेपर भी व्याकुल होनेवाला नहीं। अगर अंकुशतुल्य आप ऐसे गुरु सिरपर न हों तो गजसदृश मदमत्त होनेके कारण पगपर गिरनेवाले जो हम लोग हैं उन्हें कुपथमें जानेसे कौन रोके?

आप ही लोगोंकी बुद्धिके सहारे आगे बढ़कर मेरा पराक्रम शत्रुओंपर आक्रमण करता है। तेजस्वी होनेपर भी सूर्य सारथीके बिना आकाशके पार नहीं जा सकते। सभामें कान लगाकर आप लोगोंने सुना ही है कि उस दुष्टने दूतके मुखसे मुझे कैसी कड़ी कड़ी बातें कहला भेजी हैं।

उसके असंयत वचनोंको सुनकर मेरे मनको क्षोभ हो आया था। पर मैंने यह सोचकर उस क्रोधको शांत किया कि लोग मेरी सभाकी निन्दा करेंगे कि उस स्थानपर क्या कोई मंत्री न था जो दूतवधरूप दुष्कर्मसे उन्हें रोकता। रोगकी तरह उदय-कालमें ही जिसकी दवा कर दी जाती है वह शत्रु अपने वशमें रहता है। इसी कूटनीतिसे प्रोत्साहित होकर उसने हमपर हाथी ले लेनेका धोपा रक्खा है और इस तरह लड़ाई पैदा करके वह हमें मारना या वश करना चाहता है। इस कारण मेरी समझमें दण्डके सिवा उसे ठीक करनेका और कोई अच्छा उपाय नहीं है। अगर हो तो बतलाओ। क्योंकि सर्वज्ञोंतक एकसे बढ़कर एककी बुद्धि होती है।

इस प्रकार सोहती हुई बातें कहकर जब राजा चुप हो रहे तब पृथ्भूति नामक मन्त्रीने महती विभूतिके देनेवाले ऐसे नीति-युक्त वचन कहे—आपहीके प्रसादसे हम ऋद्धि और बुद्धिके पात्र बने हैं। अतएव आप ही इस पृथ्वीपर हमारे गुरु, स्वामी, सुहृद् और एकमात्र बन्धु हैं।

कार्यको समझनेवाले और परम्पराको देखे हुए जो आप हैं उनके आगे नीतिशास्त्रका बहुत थोड़ा ज्ञान रखनेवाले मुझ सरीखे मनुष्यका लज्जित होना ही स्वाभाविक है।

कार्यको समझनेवालेके आगे शास्त्रका बोलना अच्छा नहीं लगता। जो मर्मज्ञ नहीं है उसकी सभी बातें सन्देहकी होती हैं। तथापि अच्छे अधिकार पर स्थित लोगोंका धर्म है कि वे अपनी शक्तिभर प्रभुको सलाह दें। भूमीमें पड़े हुए चावलकी तरह कभी कभी बालकसे भी कोई थोड़ीसी अच्छी बात मिल जाती है। जयकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको सदा नीति और पराक्रमके दोनों वृक्षोंको पकड़े रहना चाहिए। इनको छोड़ कर फलसिद्धिका दूसरा कारण नहीं देखा जाता। नीति और

पराक्रममें भी नीति श्रेष्ठ है। नीतिहीनका पराक्रम वृथा है।

मस्त हाथीको फाड़ डालनेवाले सिंहको व्याध भी मार लेता है। नीतिके अनुगामी प्रबल शत्रुको भी सहजमें वश कर लेते हैं। शिकारी लोग मस्त हाथीको भी उपायसे बांध लेते हैं। नीति-मार्गानुगामी पुरुषका काम अगर बिगड़ भी जाय तो उसमें पुरुषका कोई दोष नहीं है। वह सब पापकर्मका प्रभव है। जो पुरुष नीतिशास्त्रके दिखलाये मार्गपर नहीं चलता वह कुबुद्धि बालकोंकी तरह कष्टरूपी जलती लकड़ीको हाथसे अपनी ओर खींचता है।

आप श्रेष्ठ विवेकी हैं; इसलिये शत्रुके ऊपर सहसा दण्डका प्रयोग न कीजिए। वह राजा अभिमानी होनेके कारण केवल साम (प्रिय वचनों)से ही शान्त हो जायगा। अभिमानी मनुष्य दण्डकी धमकीसे बिगड़ जाता है, शान्त नहीं होता। आगसे कहीं आग बुझती है? बुद्धिमान् पुरुष सिद्धिके लिए शत्रुके प्रति सामका प्रयोग करते हैं। उसके बाद दाम और भेदका प्रयोग किया जाता है। दण्डसे पीड़ा पहुंचाना विवेकी पुरुषोंका अंतिम उपाय है। पुरुषकी एक प्रिय बात सैकड़ों अपराधोंको धो डाल सकती है।

वज्रपात करनेवाले बादल शीतल जल देनेके कारण ही लोगोंको प्यारे हैं। 'दान' में धनहानि होती है, 'दण्ड' में दल (सेना) की हानि होती है, 'भेद' में कपटी होनेका अयश फैलता है। इस कारण 'साम'से बढ़कर और कुछ अच्छा नहीं है।

इस प्रकार न्याययुक्त वचन कहकर पुरुभूति नाम मन्त्री जब चुप हो रहा तब युवराजने पौरुषपूर्ण और ईर्षाहीन वचन इस तरह कहे—इस कार्यमें कहना और चीज है और कर्तव्यका ज्ञान और चीज है। हल चलानेकी योग्यता रखनेवाला बैल सवारीको काम नहीं दे सकता। कृत्यका निरूपण न करनेवाली और सीरकी

तरह मनोहर इस वाणीकी ओर कौन आकृष्ट होगा ? फल (निष्पत्ति) बीज (कारण)के पद (शब्द) पर स्थित है, और बातें तो सब वृथा वाणीका आडम्बर हैं ।

पराई बढ़ती पर डाह करनेवाले, व्यर्थ शत्रुता रखनेवाले उस पृथ्वीपालके साथ सामका व्यवहार कैसा ? उससे प्रिय वचन कहे जायंगे तो वह और क्रूरताका व्यवहार करेगा । दुर्जनकी प्रकृति ही ऐसी होती है कि वह अनुकूल नहीं किया जा सकता । योग्य पुरुषके प्रति प्रयुक्त होनेपर ही अच्छा उपाय सफल होता है, अन्यथा नहीं । वज्रसे तोड़ने लायक पहाड़ पर टाँकी कुछ काम नहीं करती ।

मदान्ध और पराया अपमान करनेके लिए तैयार पुरुषके प्रति दण्डका प्रयोग करना ही बुद्धिमानोंकी सलाह है । जो नया नहीं है वह बेल क्या सहजमें वश होता है ? जब तक शत्रु आक्रमण नहीं करते तब तक मनुष्य सुवर्णके समान भारी रहता है । वही जब शत्रुओंसे तौला जाता है तब वह तत्क्षण तृणके समान हलका हो जाता है ।

क्षमा बेशक कल्याणका कारण कही गई है; लेकिन वह व्रतधारियोंके लिए गुण है, राजाओंके लिए नहीं । संसारके अनुयायी और मुक्तिकी कामना करनेवालेके मार्गोंमें बड़ा अंतर है । चंद्रमाके पादसंग (चरण संग और पक्षान्तरमें किरणोंका संग)को सब लोग चाहते हैं । किन्तु सूर्यको लोग आँखसे देख भी नहीं सकते । यह सब तेजकी ही महिमा है ।

पराये मनके माने मार्गपर चलनेवाले नित्य पीड़ित हीन पुरुषके जीवनको धिक्कार है । क्या कुत्ता पूंछ आदि डुलाकर, ललित अनुनय विनय करके अपना पेट नहीं पाल लेता । अपने अपने उचित महत्त्वको छोड़कर जो दुष्ट पुरुषसे प्रिय वचन कहता है वह आप जलशून्य बादलकी तरह गरजकर अपनी

असारताको प्रकट करता है। चाहे जन्मके पहले ही मर जाय या विनष्ट हो जाय, किन्तु पराधीन होकर रहना अच्छा नहीं! मानके विनाशको कौन सह सकता है? स्वाभाविक तेजसे रहित पुरुषको बलपूर्वक बैलकी तरह पकड़कर कौन नहीं चलाता? इसी लिए महान् लोग सिंहकी वृत्तिको पसन्द करते हैं।

राजन्! आप मेरे इन वचनोंको बिलकुल नीतिहीन न समझिएगा। काल और बलको देखभाल कर मैंने ये वचन कहे हैं। क्या प्रभो! आप नहीं जानते कि प्रबल हिस्सेदारोंसे लड़नेके कारण इस समय उसकी सेना क्षीण हो गई है और उसके मित्र भी संकटमें पड़े हुए हैं। आप उससे बढ़े चढ़े हुए हैं और वह क्षयको प्राप्त है। इसलिए भी इस समय आपको उस पर चढ़ाई कर देनी चाहिए। शत्रुके स्थान पर चढ़कर भी भाग्यशाली पुरुष ही सम्पत्तिको पानेमें समर्थ होता है।

युवराज सुवर्णनाभकी कर्त्तव्य-मनोहर यह वाणी सुनकर और विचार कर पद्मनाभने प्रीतिपूर्ण दृष्टिसे भवभूति नामक मन्त्रीकी ओर देखा। तब उसने यों कहना शुरू किया—विधिपूर्वक कर्तव्य पर सम्पूर्ण विचार करके युवराजने जो कुछ कहा है उससे बढ़-कर और क्या सलाह हो सकती है? दूसरा कोई जो कुछ इस बारेमें कहेगा वह तोता-मैनाके पढ़नेके समान इसीकी प्रतिध्वनि होगी। ऐसे स्पष्ट, क्रमयुक्त, नीतिपूर्ण और शोभन वचनोंको शायद ही बृहस्पति कह सकें। तथापि मैं सहसा इस सम्मतिसे सहमत नहीं हो सकता। कर्त्तव्यके निर्धारणमें जब ब्रह्माको भी मोह हो सकता है तब मुझ सरीखे व्यक्तिको मोह होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

बुद्धिमान् पुरुष अच्छी तरह विचार करके ही किसी कामको शुरू करता है और या कार्यारम्भ ही नहीं करता। जल्दीसे काम करना पशुओंका धर्म है, वह मनुष्यमें न होना चाहिए।

अगर पशु और मनुष्य दोनों ही विवेकको छोड़कर कार्य करें तो फिर दो सींगोंके सिवा मनुष्यों और पशुओंमें अन्तर ही क्या रह जायगा? युवराजहीकी सलाह मानी जाय। लेकिन हमें उसके लिए कुछ समयकी अपेक्षा करनी चाहिए। समझदार लोग शत्रुओंके बलकी थाह लेकर सन्धि-विग्रह आदि छह बातोंमेंसे किसी कर्तव्यको निश्चित करते हैं। जासूसोंके द्वारा शत्रुके सब हालको सब तरह जानकर अपने और पराये अन्तरको जाननेकी आप भी चेष्टा करें। उसके भृत्योंको दूनी तनख्वाह देकर वशमें कर लीजिए और जाली चिट्ठियाँ भेजकर उसके सामन्तोंको उससे बिगाड़ दो।

आप शीघ्र ही भीमरथ राजाके पास पत्र भेजकर उन्हें यह सब वृत्तान्त जताइए। उनके समान आपका कोई मित्र नहीं है। वे आपका पत्र पाकर बिना आये न रहेंगे। वे आपके सुख-दुःखको अपना ही सुख-दुःख समझते हैं। वही तनय है जो संकटमें काम आवे, वही राजा है जो प्रजाका पालन करे और वही कवि है जिसकी उक्ति नीरस न हो। उन अद्वितीय तेजस्वी प्रबल राजाकी सहाय पाकर आप वैसे ही शत्रुओंके लिए दुस्सह होंगे जैसे शरदऋतुमें तेजस्वी सूर्यका तेज नहीं सहा जाता।

आप शत्रुके दूतसे निश्चित रूपसे कुछ न कहकर यह कह दीजिए कि आजसे तीसवें दिन या तो मैं हाथी दूंगा और या समर ही करूँगा। आलस्य रहित राजा पद्मनाभने प्रधानमन्त्री भवभूतिसे सबको पसन्द ये हितवचन सुनकर उन्हें स्वीकार कर लिया और इसी सलाहको श्रेष्ठ समझा। अभ्युदयकी इच्छा रखनेवाले लोग हितैषी गुरुओंकी बातको नहीं टालते।

इति द्वादशः सर्गः

त्रयोदश सर्ग

इसके उपरांत पराक्रमी, नीतिज्ञ और प्रजाके सब कष्टोंको दूर कर चुके राजा पद्मनाभने भीमरथ आदि सहायकोंको साथ लेकर शत्रुको जीतनेकी इच्छासे यात्रा की। सब लोगोंके मनको हरनेवाला, खिली हुई कोकाबेलीके समान शुभ्र और दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला छत्र मार्गमें राजाके सिरपर उनके यशके समान शोभायमान हुआ।

पद्मनाभका वक्षःस्थल आकाशके समान विशाल था, उसमें भारी हारकी मणियां देखकर जान पड़ता था कि चन्द्रमाके भ्रमसे तारागण मुखकमलकी उपासना करनेके लिए आये हैं।

श्रेष्ठ कुण्डलोंमें जड़े हुए पद्मराग मणियोंके टुकड़ोंकी फैली हुई कांतिके पड़नेसे राजाकी दोनों भुजायें गीली गेरूसे रंगी हुई हाथीकी सूण्डोंके समान जान पडती थीं। राजाके सिरपर जो मुकुट था उसमें अनेक रत्न जड़े हुए थे और उनकी मिली हुई विचित्र चमक इधर उधर छिटक रही थी।

इस प्रकार वर्षाकालके समान राजाने आकाशमें इन्द्रधनुषकी शोभा दिखला दी। "शत्रुजयके लिए निकले हुए ये राजा न झुकनेवाले सब माँडलिकों (छोटे छोटे राजाओं, और पक्षान्तरमें मण्डलवालों) को परास्त करेंगे" यही सोचकर मानों सूर्य और चन्द्रमा (क्योंकि इनके भी कुण्डल है) अंगद (एक प्रकारका हाथका गोल गहना) के रूपसे उनकी भुजाओंके आश्रयमें आ गये। मोरके गलेके आकारवाली, काञ्चीके रत्नोंकी कान्तिसे निरंतर परिपूर्ण राजाके नाभिसरोवरने यमुनाके अगाध जलकी शोभाको फीका बना डाला।

राजा पद्मनाभ इन्द्रके समान आगे थे और अन्य राजगण देवताओंके समान उनके पीछे। इन्द्रका मन गुरु (बृहस्पति) को

सलाहसे निर्मल है और राजाका भी मन गुरु (मन्त्री) की सलाहसे निर्मल है और दोनों दिव्य (सुन्दर, पक्षान्तरमें स्वर्गीय) शरीर धारण किये हुए हैं।

रास्तेमें भयसे लड़के-बच्चे इधर उधर भाग रहे थे। वहाँ सवार अपने घोड़ोंको दोनों हाथोंसे रास कसकर रोके हुए लिए जा रहे थे। इतना कसे हुए थे कि घोड़ोंके पुट्ठोंमें पीड़ा पहुंच रही थी। सवार लोग यत्नसे घोड़ेके वेगको रोके हुए थे और घोड़े आकाशकी ओर जैसे उड़नेके लिए उछल रहे थे।

उनकी इस गतिसे आकाश-समुद्रमें मानों तरंगें उठने लगीं। शीघ्र चलते हुए घोड़े, जिन्होंने सारी पृथ्वीपर पद (चरण, पक्षान्तरमें अधिकार) स्थापित किया है, अगर अपने ओज (वेग, पक्षान्तरमें पराक्रम) से अनिल (वायु, पक्षान्तरमें पृथ्वी रहित) को जीत गये तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

पृथ्वीतलपर बेशुमार फैली हुई राजाकी चतुरंगिणी सेनाने मेरी (अनन्त होनेकी) महिमाको मिटा दिया, यह सोचकर ही जैसे घोड़ेकी टापोंसे उड़ी हुई धूलमें आकाश छिप गया। बिजलीसे सुशोभित मेघ आकाशमें जो शोभा दिखलाते हैं वही शोभा पृथ्वीपर रत्नजटित झूलोंसे सुशोभित होकर चलते हुए भौंरोंसे काले गजोंने दिखलाई।

महावतकी डिंडिम ध्वनिसे लोग सचेत होकर इधर उधर हट जाते थे, रास्ते खाली हो जाते थे। मस्त हाथी कुपित और निडर दृष्टि डालते हुए मनमाने ढंगसे चले जा रहे थे। हाथियोंके मदजलसे भीगे हुए कपोलों पर मंडराते हुए भ्रमर मानों यही कह रहे थे कि यह राजा पद्मनाभ ही अकेले सब शत्रुओंका नाश कर सकते हैं, फिर तुम क्यों साथ जा रहे हो?

घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूल जब राजयात्राके समय जय-सूचक हाथियोंके मदजलसे शान्त हो जाती थी तब लोगोंको

राह सूझ पड़ती थी। खुरोंसे मिट्टी खोदकर वेगशाली घोड़ोंने मार्गको ऊंचा-नीचा बना दिया। उस पर चलनेवाले गो-रथोंके पहिये नीचे गिरते और ऊपर उछलते चले जाते थे। यह विजयी राजा किसी औरके करपात (हस्तक्षेप और पक्षान्तरमें किरण डालना)को नहीं सह सकता, यही सोचकर सूर्यने बहुतसी रथकी पताकाओंके वस्त्रोंमें अपनेको छिपा लिया। रथोंने राजाके पराक्रमरूपी बीजको बोनेकी इच्छासे पृथ्वीतलको जोत डाला, उसे भरी हुई भौंरोंकी भीड़से सुशोभित गण्डस्थलवाले हाथियोंने अपने मदजलसे सींच दिया। सब दिशाओंको अपने शब्दसे बहरी बनाते हुए रथोंके शब्दको सुनकर यह जान पड़ा कि चलते हुए पहाड़के समान भारी सेनासमूहसे दबी हुई पृथ्वी चिल्ला रही है।

राजा लोग थोड़ेसे अनुचरोंके साथ टहलते टहलते जब तक कुछ कदम आगे बढ़े तब तक उनके सब अनुचर और सैनिक जल्दीसे सेवामें आकर उपस्थित हो गये। लोहेका कवच पहने रहनेके कारण नीले रंगकी देख पड़नेवाली पैदल सेना अपने मण्डलसे पृथ्वीको छिपाये हुए राजाके आसपास थी। उसे देखकर जान पड़ता था कि सूर्यके भयसे अन्धकार राजाकी शरणमें आया है।

उन्नत वंश (बाँस, पक्षान्तरमें घराना) से उत्पन्न और गुण (डोरी, पक्षान्तरमें पातिव्रत्य आदि गुण) से विभूषित हस्तगत धनुष वीरोंको कुलकामिनीकी तरह प्यारा हो रहा था। घनघटाके समान श्याम हथनियोंपर बैठी हुई, रत्नोंकी चमकसे सुशोभित, चमकीले शरीरवाली अंतःपुरकी स्त्रियां बिजलीके समान जान पड़ती थीं।

राजाको देखनेके लिये आये हुये तमाशाई लोगोंकी इतनी भीड़ हुई कि दशों दिशाओंमें उसका समाना कठिन हो गया। मालूम पड़ता था, यह नगर जैसे फट पड़ा है। बहुत दूर देखे

हुए भी राजाको देखकर पुरनारियोंके नेत्र-कमल, सूर्यको देखकर कमल-कुसुम जैसे खिल उठते हैं, तैसे खिल उठे। रमणीय वस्तु सदा आश्चर्यकी चीज बनी रहती है।

लोगोंके शब्दसे डरकर भागते हुये खच्चरकी पीठ परसे गिरती हुई अन्तःपुरवासिनी स्त्रीके स्तनादि अंगोंसे कपड़ा हट जानेपर उन्हें देखकर नौजवान लोगोंका चित्त चलायमान हो उठता है।

सेनामें हाथीसे डरकर कर्णकटु शब्द करता हुआ ऊँट लम्बी गर्दन किये बोझा फेंककर भागा और इस तरह नटके समान उसने हास्यरसकी अवतारणा की। हाथीकी फुफकारसे बिचक कर गाड़में बैल जो भागे तो छकड़ेके दोनों धुरे टूट गये। बड़े मुनाफेके लिए घूमते हुए बनियेके घीके घड़े उसके हृदयके साथ ही फूट गये।

एक ग्वालिन जा रही थी। अचानक हाथीके आ जानेसे डरके मारे वह हिल उठी। सिर परसे बड़ा भारी दहीका घड़ा गिरकर फूट गया। घड़ीभर खड़ी खड़ी वह इस नुकसानके लिए सोच करती रही और उसके बाद सड़क परसे लौट गई। भारी भारके मारे जिनकी कमर कमान हुई जा रही है उन बड़ी देरसे चलते हुए कुलियोंने अपनेसे पहले निकले हुए सेनाधिपतियोंको पीछे कर दिया।

रानियोंकी पालकियोंसे परिपूर्ण सेनाको देखकर लोगोंको अनेक नौकाओंसे परिपूर्ण समुद्रका स्मरण हो आया। राजाके निकलनेकी प्रतीक्षा करते हुए राजाओंकी उत्साहपूर्ण सेनासे व्याप्त पुरकी सड़कें भारी तरंगोंसे भारी नदियोंके समान शोभायमान हो रही थीं।

सवारोंके हाथके इशारेपर नाचते हुए चंचल तुरंगोंकी तरंगोंसे युक्त राजाकी सेना, यात्राके समय, समुद्र-जलके समान बहुमुखी होकर बह चली। बारबार बजते हुये राजाके निकलनेकी

सूचना देनेवाले डंकेके शब्दने अपनी प्रतिध्वनिके रूपमें सब सेनाधिपतियोंके घरोंमें जाकर उन्हें चलनेका न्यौता दिया या बुलाया। प्रसन्न मनुष्योंसे और भी बढ़ी हुई पुरकी शोभामें जिनके मन और नयन लगे हुये हैं उन राजाने विस्मित होकर सहसा देखा कि वे पुरके बाहर आ गये हैं और उनका रथ पुरकी चहारदीवारीके नीचे खड़ा हुआ है।

पुरके फाटकसे बाहर निकलते समय घोड़ोंकी कसामसी देखने ही योग्य थी। हाथियोंके महावतोंको सिर झुकाकर निकलना पड़ता था। पताकायें झुका झुकाकर निकाली गयीं। कमलोंको हिलाकर और खाईके जलको छूकर आते हुए शीतल वायुने मित्रकी तरह हृदयसे लगकर राजाको सुखी बनाया। भ्रमरोंके शब्दको सुनकर जान पड़ता था कि वह वायु राजासे स्नेहसंभाषण कर रहा है।

राहमें फूले हुए कमलों और निर्मल जलवाली नदियोंकी सैर करते जाते हुए राजाको यह शरदयात्रा बहुत ही प्रिय जान पड़ी। हृदयहारी वय (अवस्था, दिशाओंके पक्षमें पक्षी) वाली, निर्मल अम्बर (वस्त्र, दिशाओंके पक्षमें आकाश) वाली, चौड़े ऊँचे पाण्डुवर्ण पयोधर (स्तन, दिशाओंके पक्षमें मेघ) वाली दयिताके समान दिशाओंको राजाने बारम्बार आदरके साथ देखा।

मनोहर कम्बल ओढ़े हुए और अदबके साथ इज्जत करते हुए गोपोंके चौधरियोंने दही-दूध आदि सामग्री, राहमें मिलकर, अर्पण की; राजा उन्हें देखकर उन पर बहुत प्रसन्न हुए। कुचोंके भारसे तोतोंको रोकनेमें असमर्थ किसी धानके खेतकी रखवाली करनेवाली स्त्रीको देखकर राजाने सोचा कि कहीं बहुत गुण भी दोष बन जाता है।

बड़ी बड़ी डौकियोंके बोझसे झुके हुए छप्परोंके पास खड़ी हुई ग्वालिनोंकी प्यासी आंखें मानों कान्तिजलसे परिपूर्ण राजाके

रूपको पिये लेती थीं। संपूर्ण और अभीष्ट महती फल-सम्पदा पाकर झुके हुए धानोंको देखकर राजाको सज्जनोंका स्मरण हो आया।

क्षणभर दूसरी हंसीके पास रहकर आये हुए हंसका अनादर करती हुई राजहंसीको देखकर राजाने समझ लिया कि शठता स्त्रियोंका स्वाभाविक गुण है। चन्द्र किरणके समान निर्मल गो (गायें, पक्षान्तरमें वाणी) वाले, खलों (धान्यराशि, पक्षान्तरमें मर्यादा) में साफ और सुशोभित पण्डितोंके समान ग्रामोंको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए।

सरोवरमें चोंचमें लेकर प्रणयसे अर्पित कमल-नालको न लेकर रूठ गई हृदयेश्वरीको मनाते हुए पीछे जाते चक्रवाक पक्षीको देखकर राजा खुश हुए। मेघके शब्दके सदृश गम्भीर अकारणध्वनिको सुनकर उत्सुक हो नाचते हुए मयूरोंको गाँवोंके आसपास देखकर राजा गोकुल-निवासकी प्रशंसा करने लगे। धानोंकी रखवाली करनेवालोंकी बाँसुरीके शब्दको ध्यान लगाकर सुनते हुए मृगोंको सेनाके लोगोंने सहजमें मार लिया।

यह देखकर राजाने जान लिया कि इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त लोगोंके लिए सदा विपत्ति रक्खी हुई है। राजाने देखा कि राजहँस लोग अपने ही समान सुचाल चलनेवाले, भावित मानस (मानस सरोवरका ध्यान करनेवाले, राजाके पक्षमें सम्यग्ज्ञान आदिकी भावनासे युक्त मनवाले) और विमल पक्ष (पंखों राजाके पक्षमें विमलों-सज्जनोंका पक्ष लेना) से विभूषित हैं। उनकी ओरसे आँख फिराना राजाके लिए कठिन हो गया।

फले हुए अन्न-समूहसे भरी हुए और अत्यन्त मनोहर हलकी रेखाओंसे सुशोभित पृथ्वी पर गऊकी तरह राजाकी दृष्टि चिरकाल तक इच्छापूर्वक बिना किसी बाधाके विचरती रही।

लोगोंके हृदयरूपी पलंग पर सोते हुए कामदेवको जगानेके

लिए मानों की गई मस्त हंसोंकी कलध्वनिको राजा थोड़ी देर
तक कान लगाये सुनते रहे। थोड़ी थोड़ी दूर पर मार्गमें झूलदार
हाथियोंकी सेनाको विश्राम कराते हुए राजा समुद्रके समान
जलसे परिपूर्ण जलवाहिनी नामकी नदीके पास पहुंचे।

तरह तरहके आकारवाली लहरोंके अग्रभागमें स्थित और
बर्फके समान श्वेत फेनकी राशिसे वह नदी शरदृऋतु बादलोंसे
सुशोभित पहाडोंवाली पृथ्वीके समान जान पड़ती है। स्नान
करते हुए जंगली हाथियोंके कपोलोंसे बहते मदजलके ऊपर
मँडराते भ्रमरोंसे तिलक लगाये कामिनीके समान वह नदी जान
पड़ती है।

उसके दोनों तटों पर परस्पर केलि-कल्लोल करते हुए मधुर
गीतके समान शब्द करनेवाले पक्षी उस नदीके सुभाषित अथवा
विनोद-विलास जान पड़ते हैं। उस नदीके दोनों किनारे
चमकीली इन्द्रनील शिलाके है।

उसकी चमक पानीमें पड़नेसे वह नदी पृथ्वी पर निराधार
आकाशके प्रतिबिम्बके समान शोभा पाती है। इस नदीमें मछ-
लियोंके बराबर उछलनेसे ऊपर उठे हुए चन्द्रकान्तमणि जैसे
उज्ज्वल जलकण आकाशमें तारागणके समान शोभा पाते हैं।
किनारेके घने वृक्षोंकी आड़में सूर्यके छिपे रहनेसे इस नदीकी
रेतमे खूब ठंडक और अँधेरा रहता है। वहाँ पर रमण करते
हुए आकाशचारी विद्याधरों और विद्याधरियोंके रतिश्रमसे उत्पन्न
पसीनेको सोखता हुआ वायु उन्हें रमाता है।

घने और स्नानार्थ आई हुई रमणियोंके स्तन आदि अंगोंसे
छूटे हुए अंगरागसे अनुरंजित जलके द्वारा सम्पूर्ण दिशाओंको
और आकाशको सुगन्धित करनेवाली सुवाससे वह नदी ऊपर
आकाशमें होनेवाली विद्याधरियोंकी जलकेलिकी लीला दिखा
रही है।

हाथियोंके बहुतसे मदजलसे और थके हुए घोड़ोंके मुंहके फेनसे उस वाहिनी (सेना) ने उस नदीको भी स्नेहसे अपना ही नाम 'वाहिनी' (नदीको भी वाहिनी कहते हैं) दे दिया और उसके प्रवाहको बढ़ा दिया ।

उदययुक्त (अभ्युदय, ग्रहोंका 'उदय') राजा आकाशके समान उस नदीके पार चले गये । आकाशमें कर्क, मीन, मकर आदि राशियाँ होती हैं तो उस नदीके तटपर भी कर्कट (केकड़े) चल रहे थे, मीन (मछलियाँ) भी थीं, और बीचमें मकर (मगर) उछल रहे थे ।

इति त्रयोदशः सर्गः

चतुर्दश सर्ग

मणियोंकी प्रभासे प्रदीप्त मणिकूट नामक पर्वत राहमें मिला। उसे देखकर जान पड़ता है कि बादलोंकी दो घटायें, जिनमें बिजली चमक रही है, आपसमें (टकराकर) आकाशसे गिर पड़ी हैं। रात्रिके समय शिखरोंमें विचित्र रत्नोंका अद्भुत अलंकार (कंकण) धारण किये पर्वतके सिरपर चन्द्रमा चूड़ामणिके समान जान पड़ता है।

उसकी सोनेके समान चमकीली ऊँची मेखलाओंके आसपास फिरता हुआ नक्षत्र मण्डल उज्ज्वल कांतिसे प्रकाशमान मणि-किंकिणियोंका काम करता है। वहाँ कपड़े बसानेके लिए देवता-ओंकी स्त्रियाँ इतना काला अगर जलाती हैं कि उसके धुंएके बादल आकाशमें छाये रहते हैं और इस प्रकार सदा वहाँ वर्षाऋतुकी शोभा देख पड़ती है।

वहाँ किन्नर नारियोंके गानमें कान लगाये निश्चल बेहोशसे खड़े हुए मृगोंको देखकर आकाशचारी विद्याधरोंको सजीव चित्रका धोखा हो जाता है। कन्दराओंके द्वारोंपर रहकर बादल सूर्यकी किरणोंको भीतर आने नहीं देते, लेकिन बीच बीचमें बिजलीकी चमकसे प्रियतमाके मुखको दिखला देते हैं। इसीसे देवगण उनको देखकर सन्तुष्ट होते हैं।

महती औषधि आदि ऋद्धियों प्राप्त प्रभावशाली योगियोंके प्रभावसे उस रमणीय विशाल शिखरवाले पर्वतपर जानेवाला कोई मनुष्य रोग पीड़ाको नहीं प्राप्त होता। पर्वतकी निचली भूमि इतनी ऊँची है कि बादल प्रायः उसके नीचे ही बरसा करते हैं। तथापि ऊपरसे गिरते हुये झरनोंका पानी उनमें भरा रहता है और विद्याधरियोंको जलक्रीड़ाके लिए जलकी कमी नहीं रहती।

चन्द्रकान्तमणिकी शिलाओंसे बहे हुये अमृत तुल्य पानीको पीकर पेड़ सदा हरे बने रहते हैं और उनमें नित्य नई कोंपल निकला करती है। वहाँ चन्दनोंके वनमें जितने काले सांप हैं वे दिव्य औषधियोंकी महकसे निर्विष हैं। इसीसे वहाँ पर स्त्रियाँ अपने प्यारे पतियोंके साथ बे-खटके क्रीड़ा किया करती हैं।

उस पर्वतकी मनोहर शिलायें मेघसी जान पड़ती हैं और उनके ऊपर चमकीली घनी देवताओंके शरीरकी कान्ति बिजलीसी देख पड़ती है। दिनको तपी हुई सूर्यकांत शिलाओं परसे जल्द जल्द जानेमें असमर्थ किन्नरोंकी स्त्रियां अपने भारी स्तनोंके भारको ही अनखाती हैं। जलते हुए लोहपिण्डके समान सूर्य वहाँ शिलाओंके नीचेसे निकले हुए झरनोंकी जलराशिमें जुड़ाकर गर्मियोंमें भी जोरसे नहीं तपते।

उस पर्वतपर वायु अगर रतिकी थकान मिटाकर विद्याधरियोंका उपकार करता है तो वे भी अपने मुख-कमलकी सांसोंसे उसे सुगन्धित कर देती हैं। वृक्षोंके कारण जहां सूर्यकी छाड़ ही घनी रहती है उस पर्वतके तट पर अंकुरित और बढ़ी हुई लताओंके समूहमें विचित्र उज्ज्वल चन्द्रचिह्नधारी मनोहर मयूरोंकी बड़ी ही बहार देख पड़ती थी।

वहाँ मधुरसको पीकर मनोहर गान करते हुये मनमें विकार उत्पन्न करनेवाले भ्रमरसमूह कुपित कान्ताओंके मनानेमें नौजवानोंकी सहायता करते हैं। वहां मेघध्वनिके समान झरनोंके शब्दको सुनकर नाचते हुये मोर पक्षी शिखरोंपर विहार करनेवाले देवताओंको ऐसा मोहित कर लेते हैं कि वे अप्सराओंके नृत्यकी चाह नहीं करते।

उस पहाड़ पर सिद्ध लोग जाड़ेमें तो शीतशून्य कन्दराओंके भीतर, गर्मीमें फुहारेदार कन्दराओंके भीतर और वर्षामें उन शिखरोंपर, जिनके नीचे बादल आते-जाते हैं, सुखसे रहते हैं।

अन्धकारको नाश करनेवाले चन्द्र-सूर्यको अपनी कान्तिसे जीतने-वाले, उन्नत मस्तक, शक्तिमें साक्षात्-रुद्रके तुल्य, पृथ्वीके एकमात्र पालक राजासे सेनापतिने कहा—

"यह पहाड़ देखकर किसे विस्मय न होगा? इसकी उत्तम कन्दरायें रहने योग्य हैं, बहुतसे झरने इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं, इसपर हाथी और चमरी (नील गाय) बहुत हैं, यहांके माधवी-कुञ्जोंमें देवगण विहार करते हैं, कमलके फूल खिले हुए हैं और निर्मल पत्थरोंकी उज्ज्वल कांतिसे यह प्रकाशित हो रहा है। बर्फके समान सफेद रेत जिसके दोनों ओर है और कमलपरागसे जिसका जल रंगीन हो रहा है वह स्वादिष्ट जलवाला सिन्धुनद और अनेक दिशाओंको अलंकृत करनेवाले सरोवर इस पर्वतसे उत्पन्न हुए हैं।

इसके शिखरोंपर शुक्लपक्षकी रातोंमें देवोंकी स्त्रियां जब कुन्द-कमलका शृङ्गार करना चाहती हैं तब चन्द्रमा आरसीका काम देता है। यहां पुष्पहीन वृक्ष, मणि-दीपक-रहित कन्दरा देवगण-रहित शिखरभूमि और कमलहीन सरोवर नहीं है।

यहाँ कन्दराओंसे निकल कर आकाशचारी विद्याधर लोग सुगन्धित साफ कपड़े पहने स्त्रियोंको साथ लिए सुरतिके बाद शिखरोंके ऊपर भ्रमरोंके गुञ्जनको सुनते और क्रीड़ा करते हैं। इसके शिखरोंपर भ्रमरसमूह-चुम्बित स्थल-कमलोंके समूह देखकर अनेक चन्द्रमण्डलसे युक्त आकाशखण्डका भ्रम हो जाता है।

यहांके लतामण्डपोंमें मङ्गलके लिए जलाये गये दीपक अगर हवासे बुझ जाते हैं तब भी रतिके समय आकाशचारी विद्याधर-गण दिव्य औषधियोंके उजियालेमें स्त्रियोंके मुखकमलोंको देखते हैं। यहां कन्दराओंमें रत्नदीपक, जिनको पवन बुझा नहीं सकता, जला करते हैं।

यहां जब विद्याधर लोग अपनी स्त्रियोंके नितम्ब परसे वस्त्र हटाने लगते हैं तब वे और उपाय न देखकर अपने प्रियतमोंकी आँखें हाथोंसे मूंद लेती हैं। जिनमें पुष्पगुच्छ परिपूर्ण लताओंके प्रतिबिंब दिखाई पड़ रहे हैं उन बिजलीके समान चमकीले पहाड़की सुवर्णमयी भूमियोंपर गिरते हुये भ्रमर इन्द्रनीलमणिकी कांतिके पड़नेसे श्यामवर्ण शरदऋतुके बादल कभी अपने श्वेतरंगमें नहीं देख पड़ते. मानके उन्मादको हटानेमें चतुर मधुर कोकिलाओंकी बोली चैत्रके आरम्भमें युवकोंसे युवतियोंको मिलाकर दूतीका काम करती है।

इस पर्वतपर विद्याधरियाँ आसपासकी जमीनमें गूंजते हुये गानको ऊंचे स्वरसे गाकर क्रीड़ा करती हैं। आकाशचारी विद्याधरगण प्रसन्नतापूर्वक यहांकी स्वर्णभूमिमें यथेष्ट रूपसे दिव्य भोगोंको भोगते हैं।

इस पर्वतकी रत्नमयी भूमिमें आकाशचारी पक्षियोंके प्रतिबिम्बको चपलताके साथ पकड़नेकी चेष्टा करते हुए जंगली बिलावोंके बच्चोंको देखकर देव-वनितायें ऐसी मुग्ध हो जाती हैं कि उनकी दृष्टि दूसरी ओर नहीं जाती।

बारम्बार झुक रही फूले हुए वानीर-वृक्षोंकी कतारकी रक्षा करता है।

इस पर्वत पर घातिया कर्मोंके विनाशके कैवल्यको प्राप्त मुनि लोग सब कर्मोंको नष्ट करनेकी इच्छासे प्रतर-पूरण आदि समुद्घातों द्वारा शेष अघातिया कर्मोंकी स्थितिको आयुःकर्मकी स्थितिके बराबर बनाते हैं। वृक्षोंकी शाखाओंके बीचसे आकर फैली हुई सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित शिखरकी इन्द्रनील-शिलाओंकी कान्तिका समूह बिजलीका अनुकरण करके अकालमें ही मयूरोंको मस्त बना देता है।

इस पर्वतमें रातको शिखरों परके कुटजवृक्षोंकी ऊंची चोटियों पर लिपटेसे नक्षत्रसमूह फूलोंके गुच्छेसे जान पड़ते हैं। इस पर्वत पर अन्धकारको नष्ट करके ऊपर आकाशको पहुंची हुई सूर्यकी किरणें, मणियोंकी कान्तिसे फीकी पड़कर, रातको जैसे चन्द्रमाकी किरणें धीमी होती हैं वैसी हो जाती हैं।

इस पहाड़के शिखरोंसे निकले हुए, निरन्तर उत्तम पद्मराग मणियोंके प्रकाशसे पूर्ण दशों दिशायें खूब लाल वस्त्रोंसे सुशोभित स्त्रीके समान शोभाको प्राप्त होती हैं।" अमृत-जैसे राजाने ललित शब्दोंसे युक्त सेनापतिके इन वचनोंको सुनकर मणियोंकी कान्तिसे सुशोभित उस पहाड़ पर कुछ दिन रहकर रमण करनेका विचार किया।

दोपहरके समय थके हुए राजाने फूलोंकी सुगन्धसे सब दिशाओंको सुगन्धित करती हुई पहाड़के शिखरों परकी कुञ्ज-भूमियोंको देखते देखते सेनाके ठहरनेके लायक स्थान पाया। पसीनेकी बूंदोंसे सुशोभित स्त्रियोंके कपोलोंको देखते हुए राजाको उस समय पीड़ा पहुंचानेवाला भी सूर्य अप्रिय नहीं हुआ।

आगे चलकर दूकानदारोंने जिन्हें सजाया है उन भारी कपड़ोंकी बनी दूकानोंसे शोभित बाजारोंको देखते देखते राजा

पद्मनाभ ऊंचे फाटकवाले अपने निवास-भवनमें गये। राजासे विदा होकर अपने अपने डेरेको जाते हुए घोड़ों पर सवार राजाओंके चलनेसे वह सेनाका पड़ाव लहरोंसे परिपूर्ण समुद्रके समान क्षोभको प्राप्त हुआ।

राजाधिराज पद्मनाभके मन्दिर, घुड़साल, वेश्याओंके डेरे और बाजार आदिको देखकर पीछे आनेवाली प्रजाने समझा कि यही हमारे रहनेका स्थान है। राह चलनेसे थके हुए परिचित पुरुषोंके सत्कारके लिए अपने कनातोंके डेरोंके द्वार पर खड़ी हुई वेश्यायें सैनिकोंको यहांकी ही रहनेवाली-सी जान पड़ती थीं। अधिक परिश्रमसे जिनकी आंखें थक गई हैं, ऐसे देरमें आये हुए लोग अपने डेरोंको जाननेमें असमर्थ होकर किंकर्तव्यविमूढ़से अपने साथियोंके डेरेका पता लगाते हुए इधर उधर घूमने लगे।

तब उसमें पहाड़के समान ऊँची लहरें उठने लगीं। पानी पीकर और नहाकर निकले हुए घोड़े पानीकी बूंदोंके मिससे मानों श्रम-कणोंको फेंकते हुए घुड़सालमें, जिनमें घोड़ोंके बाँधनेके लिए शिलायें डाल दी गई हैं, एकसाथ घुमने लगे और बड़ी मुश्किलसे बांधे जा सके।

भ्रमरोंके समान काले हाथी पताका, फूल, आभूषण और अस्त्र आदिके बोझेको उतार कर जब जल पीने और जलकेलि करनेके लिए चले तब वहांकी पृथ्वी प्रलयकालकी हवासे क्षोभको प्राप्त पर्वत शिखरोंसे परिव्याप्तसी जान पड़ी। जलमें डूबे हुए प्रमत्त गजराजोंके झुण्डने जो अपने सिन्दूर-लिप्त पुष्कर (सूंड, पुष्कर कमलको भी कहते हैं) उठाये तो वे सैनिकोंके द्वारा लूटे गये हैं कमल जिसके उस जलाशयमें लालकमलकी शोभाको प्राप्त हुए।

पर्वतोंके ऊंचे शिखरोंका अनुकरण करनेवाले सन्ध्याकालके लाल बादलोंसे आकाशके किनारोंकी जो शोभा होती है वही शोभा सिन्दूरसे रंगे हुए शरीरवाले हाथियोंके जलमें प्रवेश करनेसे नदीकी हुई। पहाड़ी नदियोंके जलमें घुसते हुए सेनाके हाथियोंको जो प्रवाह सहजमें पार जाने लायक था वही हाथियोंके कपोलोंसे बहते हुए मदजलके प्रवाहसे परिपूर्ण होकर पार जानेवालोंके लिए दुस्तर हो गया।

गर्वित जलके हाथियोंसे दमभर लोगोंके मनमें कौतूहल उत्पन्न करनेवाला युद्ध करके जीते हुए गजराज हथनियोंके पीठे अपनी सूंड रक्खे हुए लीलापूर्वक मन्द गतिसे डेरोंको लौटे।

जंगली हाथीके मस्तक घिसनेसे जिसमें उसके मद जलकी गन्ध आ रही है उस पेड़के पास बांधनेके लिए जब महावत हाथीको लाया तब उसने क्रोधके मारे अपने नाशको सिद्ध करनेवाले वृक्षकी डालोंको तोड़ डाला। असावधान पर वैर करनेमें भलाई नहीं होती।

नीले मेघके समान कृष्णवर्ण, विशाल-वंश (पीठकी हड्डी, पक्षान्तरमें बाँस) से युक्त, स्थित मद-निर्झरके जल (मदजल, पक्षान्तरमें झरनोंका जल) से परिपूर्ण और ऊंचे पेड़ोंकी कतारमें बन्धे (पक्षान्तरमें वृक्षोंकी कतारोंसे परिपुष्ट) हुए गजराज उस पर्वतके चलते फिरते अंगोंके समान जान पड़ते थे ।

रुचिके जाननेवाले महावत लोग रुचिके लिए जो सल्लकी-वृक्षके पल्लव ग्रासोंमें हाथियोंको देते थे उनसे हाथियोंको जंगलकी याद हो आती थी और वे उस कौरको लेनेमें उदासीनता ही दिखाते थे ।

बोझ उतारनेसे हलके हुए बड़े बैल कामको मिटानेवाला पहाड़ी नदियोंका पानी पीकर डहकते और तटभूमिको खोदते इधर उधर घूमने लगे । खलप्रिय (खली जिनको प्यारी है, पक्षान्तरमें दुष्ट जिन्हें प्यारे हैं) लोगोंके साथ उपकार करना कहाँ शान्तिका कारण होता है ? घास और पानी पाकर तृप्त हुए बैल पेड़ोंकी छाँहमें बैठकर पागुर करने लगे । जान पड़ा कि इस बहानेसे राहकी थकानको ही ये अलस नेत्रवाले बैल चबाने लगे ।

बोझ उतारनेके समय ऊंटोंके किये कटु शब्दको कन्दराओंमें स्थित किन्नरगणने कानोंको सुखदायक अपने गानको छोड़कर सुना । सच है, रम्य वस्तु वैसा कुतूहल नहीं करती जैसा कि अपूर्व वस्तु । छोटे और बड़े वृक्षोंके पल्लवोंको बहुत लम्बे कन्धेवाले ऊंट जब खाने लगे तब उन पेड़ोंसे जो दूध टपकने लगा वह उस पहाड़के आनन्दके आंसूओंके समान जान पड़ा ।

महान् (ऊंचे और बड़े) लोगोंको परोपकार करनेमें प्रसन्न होना उचित ही है । निर्मल और ऊंचे फेनपुञ्जसे चन्द्राकार पट-मण्डपोंको, निरन्तर उठते हुए तरंग समूहसे चंचल घूमते हुए घोड़ोंको और चलते हुए भयंकर ग्राहोंसे मस्त हाथियोंको समुद्र अगर किसी तरह जीत ले तो वह अपार कहा जा सकता है ।

इस प्रकार उस पहाड़ पर सेना समेत आकर पड़े हुए पद्मनाभकी खबर जासूससे पाकर क्रोधके मारे अपनी सेना लेकर पृथ्वीपाल राजा भी निकट ही आ गया उन दोनों प्रतापी राजाओंकी चतुरंगिणी सेनाको देखनेके लिए कौतुकपूर्ण होकर चन्द्रमासे विभूषित और विकसित तारागण ही जिसके नेत्र हैं वह रात्रि शीघ्र ही आ गई।

पराई सेनाकी थाह पाये हुए पद्मनाभने रक्षाका प्रबन्ध करके कुछ देरतक अपने वीरोंके साथ होनेवाले संग्रामकी चर्चा करनेके उपरान्त सोनेके लिये शयन गृहमें प्रवेश किया।

वहाँ प्रकाश पूर्ण पलंगपर लेटकर मस्त स्त्रियोंको लिपटाने आदि विनोदोंसे धीरवीर राजाने रात बिताई। त्रिभुवन-भवनके दीपक स्वरूप चन्द्रमाका बिम्ब जब नियतिवश अस्त होने लगा तब ताराख्प नेत्रोंको बन्द करके चन्द्रमाके विरहका पश्चात्ताप करती हुई रात्रि लीन हो गई।

इति चतुर्दशः सर्गः

पंचदश सर्ग

सवेरेके समय दोनों चर और अचरके स्वामियों (नरराज और पर्वतराजके कटक सेना और तट) को क्षुब्ध करनेवाला संग्राम-सूचक डंकेका शब्द होने लगा। मेघध्वनिके समान गम्भीर और दिशाओंमें फैलनेवाले डंकेके शब्दसे शत्रुसेनाकी कौन कहे, अचला पृथ्वी भी काँप उठी। शत्रु-कीटोंकी कौन कहे, मदसे उद्धत आकारवाले दिग्गजोंने भी उस शब्दको सुनकर मद (मदजल, पक्षान्तरमें घमण्ड) छोड़ दिया।

होनेवाले संग्रामके लिए उत्साहित सुभटोंके मन हर्षसे और शरीर रोमांचसे परिपूर्ण हो गये। हर्षसे अंग फूलनेके कारण पहलेकी लड़ाइयोंके भरे हुए घाव जिनके फिर फूट चले हैं वे वीरगण वीर-रसके आवेशसे कवच आदि पहनकर युद्धके लिए तैयार होने लगे। किसी वीर पुरुषका शरीर हर्षसे ऐसा फूल आया कि कवच छोटा पड़ गया।

उसने वह कवच उतार डाला और वह यों ही युद्धमें जानेको तैयार हो गया। दूसरे भीरु पुरुषने बचानेके लिये वही कवच उठाकर पहन लिया। किसीकी स्त्रीने शरीरपर हाथ फेरकर कहा—नाथ! तुम्हारा कवच इस समय कुछ कसा जान पड़ता है। स्त्रीके कर-स्पर्शसे वह और भी हृष्ट-पुष्टसा हो गया।

शृङ्गार रसके आवेशसे जब वीर नायकके शरीरमें दूना रोमांच हो आया और कवचका शरीरपर ठीक होना कठिन हो गया तब उसकी प्रिया क्षणभरके लिए वहांसे गायब हो गई। शत्रुओंपर कोप होनेसे लाल हुई आंखोंकी चमक पड़नेसे सुशोभित हो रहे हैं कवच जिनके ऐसे शत्रुओंके लिए भयानक सुभट संध्याकालीन मेघके समान शोभायमान हुये।

बहुत भयानक, गम्भीर शत्रुपक्षके हाथियोंकी आवाज सुनकर

कुपित और सुराके समान मदजलवाले पद्मनाभके हाथियोंने अपनी सूंडें पृथ्वीपर पटकना शुरू किया। "इनको पुण्यकर्म ही सुरक्षित बनाये हुए हैं, अब मैं और क्या करूंगा?" यह सोचकर ही मानों कवच राजाके अंगमें मुश्किलसे आया। "इनको तो राजलक्ष्मी लिपटाये हुए हैं, मैं क्या करूंगा?"

यह सोचकर ही युवराजके अंगमें कवचने अतिगौरव नहीं पाया। प्रसन्न भीमरथ राजा शत्रुओंके लिए अभेद्य और साक्षात् अपने तेजके समान कवचको धारण कर सुशोभित हुए। समरमें श्रेष्ठ भीमरथके पुत्र महीरथके शरीरमें उत्साहसे उठे हुए रोमोंका एक कवच था और उसके ऊपर कवच दूसरा कवचसा जान पड़ता था। दीन और अनाथ लोगोंको बहुतसा दान देकर जयलक्ष्मी प्राप्त करनेके लिए उत्सुक और रणके उत्सवकी दीक्षा लिए हुए सामन्तोंको राजाने प्रसन्नतापूर्वक उपहार देकर सन्तुष्ट किया।

भीमराजको चमकदार कपड़े, सुभीमको मणिकङ्कण, महासेनको मुकुट, सेनको मोतियोंकी माला, चित्राङ्गको चूड़ामणि, चन्द्रको सुवर्णका यज्ञोपवीत, पण्डराजाको रत्नकी कण्ठी, [illegible]को कुण्डल, भीमरथको महामूल्य मणि और मनोहर हार तथा महीरथको अनेक महामूल्य आभूषण देकर चतुर पद्मनाभने प्रसन्न किया। और भी जो कवच, घोड़ा, रथ या हाथी जिस राजाके योग्य था वह उसी राजाको चतुर पद्मनाभने दे डाला।

युद्धके लिए उत्सुक और उद्भट चक्र, बाण, खड्ग आदि अस्त्रोंसे अलंकृत वह स्वामी-सहित सेना कतार बांधकर चलते समय शत्रुओंके मनमें भय उत्पन्न करने लगी। इसके बाद महावतोंने जिसे सजाया है और पुरोहितने स्वयं हाथसे जिस पर अस्त्र-शस्त्र रख दिये हैं उस [illegible] हाथी पर चढ़कर स्वयं पद्मनाभ शत्रुके सामने चले।

युवराज रथपर चढ़कर उसी तरह पद्मनाभके पीछे चले

जैसे ऐरावत पर आरूढ़ इन्द्रके पीछे सूर्य चले। पहाड़ ऐसे ऊंचे रणविग्रह नामक गजराज पर चढ़कर प्रताप जैसे सूर्यके पीछे चलता है वैसे भीमरथ राजा युवराजके पीछे चले। महान् अस्त्र जिस पर चमक रहे हैं उस सारथीके सजाये मनोरथ ऐसे रथ पर चढ़कर महीरथ राजा उनके पीछे चले।

चारों समुद्रोंतक प्रसिद्ध और चतुरंग सेनासे युक्त अन्यान्य राजा भी चारों ओरसे पद्मनाभको घेरकर चले। यात्राके डंकेकी आवाज सुनकर सब सैनिक जिसमें आकर जमा हुए वह सेना 'बहु' 'आदि' संख्याकी तरह इयत्ताहीन थी; अर्थात् कोई यह न बता सकता था कि यह कितनी है। मंगलकी सूचना देती हुई सियारी पद्मनाभकी बाईं ओर शब्द करने लगी। उसी ओर गधा भी कोमल शब्दसे बोलने लगा।

खंजरीट पक्षी कहींसे आकर राजाकी प्रदक्षिणा करता चला गया। दुधीले वृक्ष पर बैठकर कौआ बोलने लगा। आप ही आप एकाएक हाथियोंके कपोल फट गये और उनसे मदजल बहने लगा। बड़े उत्साहके कारण सुभटोंके रोमाञ्च हो आया। इष्ट फलके सूचक और इसी कारण सैनिकोंको प्रसन्न करनेवाले इन और अन्यान्य सगुनोंसे राजा पद्मनाभकी जीत स्पष्ट हो गई।

इस प्रकार सजधजकर पद्मनाभ युद्ध करनेके लिये निकले हैं, यह सुनकर राजगण सहित पृथ्वीपाल राजा भी कुपित हो तैयारी करके युद्धके लिए निकला। उसके चलते समय दाहनी ओर सियारियां बोलने लगीं, बारम्बार छींकें होने लगीं, साँप राह काट गया, कंटीले वृक्षों पर बैठकर कौआ कर्कश शब्द करने लगा, घोड़ोंकी पूंछे जल उठी, गधा आर्त शब्द करने लगा, प्रतिकूल हवा चलने लगी, मन भी उदास हो गया, आकाशसे रुधिरकी वर्षा होने लगी। किंतु कुपित पृथ्वीपालने किसी बातपर ध्यान नहीं दिया।

प्रलयकालकी हवासे क्षोभको प्राप्त पूर्व और पश्चिमके समुद्रकी तरह बढ़ती हुई दोनों सेनाओंकी मुठभेड़ हो गई। परस्पर देखकर भिड़नेके लिए वीरोंको, घोड़ोंकी टापोंसे उठी हुई धूलने कृपासी करके दमभर रोक रक्खा। मस्त हाथियोंके मदजलके छिड़कावसे धूल दब जाने पर रणभूमिमें एक दूसरेको लक्ष्यकर खड़े हुए सुभट बहुत ही शोभित हुए।

दोनों सेनाओंमें घोड़े हिनहिनाते, हाथी चिग्घाड़ते और डंके बज रहे थे। सारा जगत् ही उस समय मानों शब्दमय हो गया। दानशील, धन देनेवाले कुबेरको भी पराजित करनेवाला और मोटी जांघोंवाला भट, ललकारते हुए शत्रुके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा। सवारों, पैदलों, हाथियों और रथों पर चढ़े हुए वीरोंमेंसे हरएक अपनी श्रेणीके योद्धाको निडर होकर युद्धके लिए ललकारने लगा।

अस्थायी प्राणोंसे स्थायी यश पैदा करनेकी इच्छा रखनेवाले कुलकी शान रखनेवाले योद्धा लोग परस्पर युद्ध करने लगे। प्रभुके प्रसादको चाहते भटोंके मुखपर जो राग (लाली, पक्षान्तरमें जोशकी तमतमाहट) था वही [illegible] बाद [illegible] समान मुखरागसा जान पड़ा। अपने चलाये [illegible] भारी मण्डपसा बनाकर धूपको दूर हटाये हुए वीरोंको लड़नेमें कुछ भी परिश्रम नहीं जान पड़ता था।

तो हाथीके मस्तकसे उस पर गिरते हुए गजमुक्ता फूलोंकी वर्षाके समान जान पड़े।

युद्धमें जिनका चित्त लगा हुआ है ऐसे प्रतापी योद्धा लोग खड्ग आदि शस्त्रोंसे घायल होकर गिरने लगे। मांस भोजनकी कामनासे भूखे भूत गण युद्धभूमिमें आने लगे। धनुष टूट गया, उसकी डोरी कट गई और तर्कस लोगोंसे खाली हो गये; तब दोनों योद्धा परस्पर भिड़कर बाल पकड़कर मल्लयुद्ध करने लगे। निष्कम्प (चेष्टाहीन) शत्रुओंके रुधिर-रूप बड़े मेघोंने पहाडोंके आधार पर स्थित पृथ्वीके नीचले भागोंको परिपूर्ण कर दिया।

उस रणभूमिमें अव्यक्त ध्वनिपूर्ण जो रक्तकी नदियां बह चलीं उनमें जड़से कटी हुई हाथियोंकी सूँडें 'मगर' सी तैर रही थीं। एक वीरके सब अंगोंमें गहरे बाण घुसे हुए थे। वह निष्कम्प अवस्थामें भी शत्रुके सामने अंकुरित वृक्षकी तरह खडा हुआ था। कौतुक देखनेके लिए अपना लोक छोड़कर आये हुए देवगण मृतक वीरका सिर कटा देखकर डर जाते थे कि यह वीर कहीं हमारे लोगोंको हस्तगत न करले। कच्चे मांसके साथ रक्तरूप आसवसे छककर उन्मत्त हुई डाकिनियाँ नाच रही थीं। उनको नृत्यकी शिक्षा देते हुए कबन्ध नाट्याचार्यसे जान पड़ते थे।

निरन्तर चलते हुए बाणोंके जालमें छिपे सूर्य भी मानों भयसे कहीं भाग गये। रणभूमिमें आयुधोंसे कटकर गिरे हुए वीरोंके सिर आकाश-सरोवरसे गिरे हुए शतदल कमलोंके समान जान पड़ते थे। जिस योद्धाने किसी प्रसिद्ध सरदारको नहीं हराया उसने कुछ भी वीरता नहीं दिखाई और उसके स्वामीने उसका आदर व्यर्थ ही किया।

वीर पुरुष रणमें सिर कट जाने पर भी तब तक नहीं गिरा जब तक उसने तत्काल निकाली हुई तरवारसे शत्रुको नहीं गिरा

दिया। शूरवीर लोग अस्त्रशस्त्र चुक जाने पर हाथोंसे हाथोंको और पैरोंसे पैरोंको तोड़कर परस्पर गाली गलौज करने लगे। हाथियोंसे मारे गये हाथी, पैदलोंसे मारे गये पैदल, रथियोंसे तोड़े गये रथ और सवारोंसे मारे गये घोड़े रणभूमिमें गिरने लगे। कहीं पैदल और घोड़े पड़े थे, कहीं टूटें हुए बड़े बड़े रथ लुढ़क रहे थे, कहीं कटे हुए हाथी लौट रहे थे।

रणभूमिके भीतर जाना ही कठिन हो रहा था। शत्रुओंके बाणोंसे पीड़ित होकर जब अपनी सेना भागने लगी तब पृथ्वीपालका सेनापति चन्द्रशेखर सामने आया। उसने अपने वीरोंसे कहा—वीरो, क्यों भाग रहे हो? यह राह तुम्हारे योग्य नहीं है। दैव संयोगसे संकट आपड़ने पर पराक्रम प्रकट करना ही शूरोंका क्रम है। मैं रणका प्रबन्धकर्त्ता हूं, तुम घबराओ नहीं।

तुम्हारी पीठ शत्रुओंने आजतक नहीं देखी। सदा न रहनेवाले प्राणोंसे अगर सदा रहनेवाला यश प्राप्त हो और स्वामीका नमक भी अदा हो तो रणमें मरना कोई बुरी बात नहीं है। इस प्रकार युद्धसे विमुख अपनी सेनाको धीरज देता हुआ वह सेनापति प्रचण्ड हाथोंसे धनुष चढ़ाये हुए आगे चला। बाणजालसे सारे आकाशको व्याप्त करके क्षणभरमे उसने शत्रुओंको व्याकुल कर दिया।

रथपर सवार राहु-तुल्य पद्मनाभका सेनापति भीम उस रथ पर सवार सूर्यसे शत्रुकी ओर चला। रणके भारको धारण करनेवाले दोनों वीरोंमें खूब गहरी लड़ाई हुई।

आकाशमें व्याप्त हुए बाणोंसे देवगण दूर चले गये। दोनोंके शस्त्र आपसमें टकराकर अग्निकी चिनगारियां पैदा करते थे। तीखी धारवाले बाणोंसे दोनोंने दोनोंकी ध्वजायें काट डालीं। उनके धनुष्योंके टंकारको सुनकर, दूसरे हाथीके शब्दके भ्रमसे, मस्त हाथी कुपित हो उठे।

प्रहारोंसे गिरती हुई रुधिर धाराओंने दुर्दिन बना रक्खा था। मौका पाकर चन्द्रशेखरने अर्धचन्द्र बाणसे ध्वजा-सहित भीमका चमकीला मुकुट काटकर गिरा दिया। भीमने भी संभलकर क्रोधसे शत्रुकी छाती ताककर एक शक्ति मारी। वह रुधिर उगलता हुआ स्वामीके जयकी आशाके साथ गिर पड़ा।

प्रभुके प्रतापके समान चन्द्रशेखरको गिरा देखकर केतुग्रहके समान सारे जगत्को डराता हुआ केतु राजा लड़नेके लिए खड़ा हुआ। क्रोधित भीमने, गरुड जैसे काले नागको मुर्दा बना दे वैसे, उसके घमंडका विष झाड़ दिया और इस तरह सामर्थ्य-हीन करके उसे छोड़ दिया।

केतुके यों परास्त होनेपर हवासे हिलती हुई जिसकी पताका आगे उड रही थी वह सुकेतु रथ पर चढ़कर आगे आया। दुर्धर प्रलयकालके मेघ जिस तरह वज्रसे पहाडके सौ टुकड़े कर डालता है वैसे ही महासेनने श्रेष्ठ अस्त्रोंसे उसकी गति कर दी। परकटे गरुडकी तरह संग्राममें सुकेतुको गिरते देखकर सूर्यके समान असह्य तेजवाला विरोचन नाम राजा आगे आया। गज पर सवार विरोचनसे लडनेके लिए हाथीपर चढ़ा हुआ पराक्रमी सेन राजा आया और उसने संमुख बाण मारकर विरोचनको विमुख कर दिया।

अपने पक्षको कष्टमें देखकर जिसका चित्त उत्साहित हो आया है उस धैर्यशाली महारथने उसके बाद धनुष बजाया। उनका नाम आगे आगे नकीब लोग कहते जाते थे। चढ़ाई हुई त्यौरि-योंसे भयानक मुखवाले महारथने आते ही शत्रुसेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा शुरू कर दी।

"भीमरथ कहाँ है, जिसके बलसे पद्मनाभ उस शत्रुसेनाको, जिसमें क्रूर कबन्ध नाच रहे हैं, जीतना चाहते हैं।" गर्वसे

गद्गद वाणीमें यों कहता हुआ महारथ सामने आ रहा था।

भीमरथने दौड़कर उसे बाणोंसे रोक दिया। बहुत देर तक दोनों इस तरह एक दूसरेके बाणको रास्तेमें ही काटकर लडते रहे कि किसीके शरीरमें घाव नहीं आया। विस्मित देवगण उन दोनों महावीरोंके युद्धको देखते रहे। उन दोनोंके दिशाओंके अन्तमें जाकर ठरहनेवाले बाणोंके भयसे विह्वल होकर आकाशने तभीसे मानों अशरीरी होकर रहना निश्चित कर लिया है। वीर पुरुषकी अभिलाषासे बारम्बार दोनोंके पास जाती हुई जयलक्ष्मीने आने जानेके क्लेशकी कुछ पर्वा नहीं की।

शत्रुने मन्त्र सदृश शंकु-नामक अस्त्र भीमरथके सिरपर मारा। उसके लगनेसे भीम सर्पके समान भीमरथ मूर्छित हो गये। क्षात्रधर्मका पालन करते हुए शत्रुने दमभर प्रतीक्षा की, इसी अवसरमें दाँतसे ओठ चबाते हुवे भीमरथ उठ खड़े हुए। उनके हृदयमें पहले क्रोध कुछ सोयासा था। शत्रुकी गहरी चोटसे मानों वह क्षणभरमें जाग उठा। क्रोधसे जिसका उत्साह दूना हो रहा है उस भीमरथने हाथोंसे शत्रुके हाथोको लेकर, देवताओंकी फूलोंकी वर्षाको स्वीकार करते हुए, महारथको जीता ही पकड लिया।

पिताके पकड़े जानेसे पुत्र सूर्यरथको बड़ा क्रोध आया। वह रथ पर चढ़कर धीर ध्वनिसे धनुष बजाकर सारथीको उत्तेजित करता हुआ युद्धस्थलमें उपस्थित हुआ। अपने थके हुए पिता (भीमरथ) के सामने उसे आते देखकर महीरथने अपना रथ बीचमें कर दिया और उसे लडनेके लिए ललकारा।

देवहुत र तक लडकर महोरथने चमकीले, सुन्दर सोनेके समान कान्तिवाले सूर्यरथके वक्षःस्थलमें शिलीमुख नामक बाण मारा। उस प्रहारसे अचेत सूर्यरथके रथको उसका सारथी अपनी सेनाके भीतर लेगया।

महीरथके रथपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। उसके उपरान्त

कलकल शब्दसे दिशाओंको परिपूर्ण करता हुआ पृथ्वीपालका पुत्र धर्मपाल आगे आया। उसका मुख कोपसे अरुण हो रहा था, वह दिव्य धनुष (पक्षान्तरमें इन्द्रधनुष) भी धारण किये था और बाणधाराएं बरसा रहा था। वह सायंकालके मेघकी उपमाको प्राप्त हो रहा था।

जैसे बादल जब बरसने लगते हैं तब गायें इधर उधर तितरबितर होकर संकुचित हो जाती हैं उसी तरह बाण-वर्षासे बली राजकुमारके आगे मिलकर आये हुये राजगणकी दशा हुई।

इस प्रकार थककर व्याकुल हुए सामन्त राजाओंकी दशा देखकर शत्रुनाशन सुवर्णनाभ कुमार उसके सामने आये। सुवर्णनाभको रथ हंकवाकर आगे आते देखकर धर्मपाल क्रोधसे जल उठा। उसने आक्षेप-विषमें बुझाये हुए निम्नलिखित वचन-बाण सुवर्णनाभके ऊपर चलाये। उसने कहा—हट, यहांसे चला जा, ढीठ, तू क्यों आगे खड़ा है?

यह मेरा हाथ तुझ सरीखों पर प्रहार करना नहीं चाहता। शायद तेरा पिता तेरे ही बलसे हमें जीतना चाहता है। नहीं तो तेरी सलाहसे वह अपनेसे बलीके साथ युद्ध ही क्यों करता? तू क्या है, भीमरथ क्या है? और तेरा पिता ही क्या है? अगर मेरे आगे आकर ठहर सको तो मैं जानूं।

नीच जनोंके योग्य उसके ये वचन सुनकर बारम्बार धनुषकी डोरीको बजाते हुये सुवर्णनाभने कहा—माताकी चंचलताको सूचित करनेवाले इन अधम वचनोंसे क्या प्रयोजन है? अगर कुछ अभिमान हो तो आ। देर मतकर। तेरे जैसे वचन हम लोग नहीं कह सकते। बड़े लोग अपनेको अधमोंके बराबर नहीं समझते। धूर्त दुर्जन लोग अपनी ही अनीतिसे आप जला करते

हैं। इसीसे वाहियात बकते हुये दुर्जनोंकी बातोंपर सज्जन ध्यान नहीं देते।

अभिमानी धर्मपालको जब ऐसे वचनोंसे सुवर्णनाभने अप्रतिभ किया तब उसने कोप करके जिनका चढ़ाना और छोड़ना जान ही नहीं पड़ता वैसे बाण बरसाना शुरू किया। धनुष चढ़ाकर सुवर्णनाभने भी बीचहीमें अपने निरन्तर बाणोंसे धर्मपालके बाणोंको काट डाला।

युद्धमें अटल अचल वे वीर बाण चुक जाने पर प्रासोंसे, प्रास टूट जाने पर कुन्तोंसे, कुन्त टूट जाने पर तरवारोंसे सबको हिला देनेवाला युद्ध करते रहे। दोनोंमें अतुल शक्ति है और दोनोंने अस्त्रविद्यामें परिश्रम किया है, नहीं मालूम कौन जीतेगा?

इस प्रकार दोनों सेनाओंके सैनिक अपने अपने मनमें संशय करने लगे। बहुत देरतक लड़नेके कारण थके हुए धर्मपालने सुवर्णनाभ पर तरवारका वार किया। सुवर्णनाभने वह वार बचाकर उसे पकड़ लिया। बन्दीगण कुमारकी स्तुति करने लगे।

दुर्जय धर्मपालको बन्दी बनाकर आनन्दके आँसू जिनकी आंखोंमें भरे हुए हैं उन महाराज पद्मनाभके पास राजकुमार ले गये। परन्तपने तड़िद्वक्त्रको, चित्राङ्गने सिंहविक्रमको, कण्ठने वरुणको और सुकुण्डलने चन्द्रकीर्तिको जीत लिया। और भी शत्रुपक्षके जो राजा लड़नेके लिए आये उन्हें पद्मनाभके सामन्तोंने जीतकर भग्नमनोरथ कर दिया।

इस बीचमें क्रोधसे जिसके कराल नेत्र हो रहे हैं वह महाबली पृथ्वीपाल राजा खुद लड़नेके लिए आया। मन्त्रियोंने असाधारण चिह्न देखकर समझ लिया कि यही पृथ्वीपाल राजा है। तब उन्होंने पद्मनाभके कानमें कहा—स्वामिन्! यह पृथ्वीपाल

राजा देवबल सम्पन्न, धूर्त्त, क्रोधी और सब कपटोंकी खान है। यह स्वयं युद्ध करनेके लिए आया है।

आप इससे सावधान होकर युद्ध करें। यह शत्रु उपेक्षाके योग्य नहीं है। इस दयिता (प्यारी, पक्षांतरमें स्त्री) मन्त्रियोंकी वाणीको हृदयमें स्थान देकर धनुष चढ़ाये हुए राजा पद्मनाभ शत्रुके सामने गये। जिनके समान पराक्रमी अन्य कोई नहीं है ऐसे दोनों राजा, जिनके पैरोंके पास रक्षक मौजूद हैं ऐसे हाथियों पर बैठकर आमने सामने आये।

परस्पर लड़नेके लिए उद्यत सेनाको दोनोंने रोक दिया और बलके दर्पसे वे ही भारी द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। उनके तिर्छे जाते हुये सैकड़ों शिलीमुख बाणोंसे व्याप्त दिशाओंको देखकर जान पड़ता था कि सैकड़ों उल्कायें गिर रही हैं।

उनके शस्त्रकौशलको पृथ्वी पर राजोंकी सेना और आकाशपर देवगण निश्चल दृष्टिसे देखने लगे। घमंडसे जिनकी प्रचंड भुजाएं फड़क रही हैं वे दोनों नरपति हटकर, पैंतरे बदलकर, स्थिति-क्रिया और लंघनक्रियासे मर्मस्थलकी चोट बचाते हुए देरतक धनुर्युद्ध करते रहे। जिसका निशाना ठीक जमा हुआ नहीं है ऐसे शत्रुने जो जो बाण मारे उन उन बाणोंको राहमें ही पद्म-नाभने बाणोंसे काट डाला।

धनुर्विद्यामें विशारद पद्मनाभ बाणोंसे नहीं जीते जा सकते, यह सोचकर भ्रमरहित पृथ्वीपाल राजा उनपर भाले चलाने लगा। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखवाले, सुवर्णाचलके समान अटल सुवर्णनाभके पिताने अर्धचन्द्र बाणोंसे इन्हें भी काट डाला।

पृथ्वीपाल उसी दम चक्रोंकी वर्षा करने लगा। पद्मनाभने उन्हें मुद्गरोंसे चूर कर डाला। तीनों शक्तियोंसे सब जगतको वश करनेवाले पृथ्वीपालने शक्ति चलाई। पद्मनाभने गदाके प्रहारसे उस शक्तिको निष्फल कर दिया। हाथीको पास ले जाकर

पृथ्वीपालने परशु चलाया। पद्मनाभने वज्रमुष्टि नामक शस्त्रसे परशुके टुकड़े टुकड़े कर डाले।

उसके बाद शंकु नामक शस्त्र चलानेके लिये उद्यत पृथ्वीपालके सिरको पद्मनाभने चमकदार चक्रसे केलेके गाभेके समान काट डाला। प्रभुका गिरना देखकर शत्रुओंकी सेना भागी तब वन-केलिके सिरको थपथपाकर उसे उत्साहित करते हुए पद्मनाभने रणभूमिका निरीक्षण किया। युद्धभूमिमें मरे पड़े हुए बन्धुओंको खोजकर उनके बान्धवगण बाणोंकी चितामें उनका अग्नि संस्कार करने लगे।

इसी समय किसी सेवकने शत्रुका कटा हुआ सिर आगे लाकर रख दिया। उसे देखकर राजाको इस प्रकार वैराग्य हो आया। वे आप ही आप कहने लगे—क्षणभरमें खुश और क्षण-भरमें रूठ गई कुलटा लक्ष्मीकी प्रेरणासे कैसे इस प्रकारके कार्य मनुष्य करता है। धिक्कार है, बड़े कष्टकी बात है!

सम्पत्तिके साथ विपत्ति, जवानीके साथ बुढ़ापा, जीवनके साथ मरण और प्रियसंगके साथ वियोग लगा हुआ है। ऐसा सुहृत्संग नहीं है जिसमें वियोग न हो। ऐसे ही मृत्युहीन जन्म नहीं है, बे-बुढ़ापेके जवानी नहीं है, और विपत्तिशून्य सम्पत्ति नहीं है। राजाको प्रजा अपनी रक्षाके लिये उपजका छठा हिस्सा वेतनकी तरह देती है। राजा असलमें प्रजाका नौकर है। लेकिन मूढ मनुष्य अपनेको राजा समझकर गर्व करता है।

क्रोध आदि चार कषायोंसे मलिन यह प्राणी वही कर्म करता है जो खुद उसके लिये भी भयंकर है। पुरुष क्रोधमें आकर भाईयोंको मार डालता है, पिता आदिको मार डालता है, निरपराध बन्धुओंको भी मार डालता है, यहाँतक अपनी भी हत्या कर डालता है। विचारशून्य क्रोधको धिक्कार है।

इस जन्ममें जैसे मैंने इसे मार डाला है वैसे ही उस जन्ममें यह मुझे मारेगा। संसारमें बल, वीर्य और विभूतियाँ इधरसे उधर हुआ करती हैं। भोगोंको धिक् है, धनको धिक् है, इन्द्रियसुखको धिक् है। दूसरेको पीड़ा पहुंचाकर और जो चीजें प्राप्त होती हैं उन सबको धिक् है। संसारकी सारी दुर्दशाओंको जाननेवाला मैं भी पापरूप इन्द्रियोंके विषयोंकी वञ्चनामें आ गया !

अहो ! बड़े कष्टकी बात है। प्रेमसे बढ़कर और बन्धन नहीं है, विषयोंसे बढ़कर दूसरा विष नहीं है, क्रोधसे बढ़कर दूसरा शत्रु नहीं है, और जन्मसे बढ़कर और दुःख नहीं है। इसलिए मैं दुर्लभ मनुष्य-जन्ममें कुछ ऐसा कर्म करूँगा जिससे चारों गतियोंमें आने जानेका कष्ट फिर न हो।

इस प्रकार संसारकी कष्टकारिणी स्थितिपर यों विचार करके राजा पद्मनाभने वहीं युवराजको पुर और वाहन सहित सब राज्य दे दिया। उसके बाद शोकपीड़ित पृथ्वीपालके पुत्रको यह कहकर समझाया कि सुवर्णनाभकी आज्ञाका पालन करते हुए पिताका राज्य करो।

चरणोंमें प्रणत पुत्र और सामन्त राजाओंको जानेके लिए आज्ञा देकर पद्मनाभ राजा श्रीधर मुनिके आश्रममें चले गये और वहाँ मुनिराजसे श्रमण-दीक्षा लेकर तप करने लगे। व्रत ग्रहण करते ही सम्यग्ज्ञानकी ऋद्धि प्राप्त हो जानेके कारण पद्मनाभके लिए दीक्षाका समय ही शिक्षाका समय हो गया। बारह अंगशास्त्रके ज्ञाता और बारह सूर्योंके समान तेजस्वी पद्मनाभ बारह तरहके तपको नित्य बढ़ाने लगे।

सिंहनिक्रीड़ित आदि विविध आकारवाले तप करते करते आलस्यहीन राजाका शरीर कर्मोंके साथ ही क्षीण हो आया।

तेरह प्रकारके चारित्रको चिरकाल तक पालन करते हुए वे तीर्थङ्कर होनेकी कारणभूत निम्नलिखित सोलहकारण भावनाओंको भाने लगे।

शंका आदिसे रहित सम्यग्दर्शनकी शुद्धिरूप, 'दर्शनविशुद्धि-भावना' और सधर्मी, विद्यागुरु, वृद्ध और शास्त्रके प्रति विनयरूप, 'विनयसम्पन्नताभावना'। अहिंसा आदि व्रतोंके साथ ही उनके अंगस्वरूप क्रोध-त्याग आदि शील-व्रतका पालन, 'शीलेष्वनतिचारभावना'। निरन्तर उपधान आदि नियमों सहित ज्ञानाभ्यास, 'अभीक्ष्णज्ञानोपयोगभावना' और घोर संसार दुःखसे डरना ही जिसका लक्षण है ऐसी 'संवेगभावना'। अभयदान आदि भेदयुक्त 'शक्तितस्त्यागभावना' और जिसकी सामर्थ्य प्रकट है तथा शरीर निग्रह ही जिसका लक्षण है ऐसी 'तपोभावना'।

तपमें कहींसे कोई विघ्न उपस्थित होने पर शक्तिको न छिपाना, 'साधुसमाधिभावना' और गुणी साधुओंको दुःख आ पड़ने पर उनकी सेवा शुश्रूषा करना, 'वैयावृत्यकरणभावना'। अर्हत्, आचार्य और बहुतसे शास्त्रग्रन्थोंके ज्ञाता बहुश्रुत लोगोंके प्रति अनुराग ही जिसका लक्षण है ऐसी 'अर्हदाचार्य बहुश्रुतभक्ति-भावना'। द्वादशांग आदि बहुतसे भेदोंसे युक्त परम आगमके प्रति भक्ति, 'प्रवचनभक्तिभावना' और प्रतिक्रमण आदि छह आवश्यकोंको कभी न छोड़ना, 'आवश्यकापरिहाणिभावना'।

ज्ञान, तप आदि कारणोंसे जिनमार्गके प्रगट करने रूप 'मार्गप्रभावना' और उसी तरह सधर्मी पुरुषोंके प्रति स्नेह ही जिसका लक्षण है ऐसा दर्शनवात्सल्य 'प्रवचनवात्सल्यभावना'।

इस प्रकार इन सोलह भावनाओंको मोक्षसुखकी सिद्धके लिए धारण करके निःसंग, शुद्धचित्त, परोपकार-निरत-हृदय और

व्रत-नियमकी समृद्धिको प्राप्त पद्मनाभने तीर्थङ्कर प्रकृतिका बंध किया ।

निर्दोष वृत्तिवाले निष्पाप धीर पद्मनाभ मुनिने सब प्रकारके संग तजकर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप त्रिविध तपको किया । अन्तमें तप करनेसे कृश शरीरको छोड़कर अनुत्तर नामक वैजयन्त स्वर्गको वे गये ।

खिली हुई चमेलीकी ऐसी सुगन्धसे सब दिशाओंको सुगन्धित और रत्नोंकी चमकसे मनोहर शरीरको शीघ्र ही पाकर वे वहां पर अहमिन्द्र नामक इन्द्र हुए और तेंतीस सागर परिमित आयु-पर्यंत पुण्यके उदयसे प्राप्त दिव्य भोग करते रहे ।

इति पञ्चदशः सर्गः ।

षष्ठदश सर्ग

यहां जम्बूद्वीपान्तर्गत, भरतखण्डमें, चन्द्रमाकी किरणोंके समान कान्तिशाली उन्नत कमलसमूहोंको अपने छत्र आदि चिह्नोंके समान चारों ओर धारण किये शोभायुक्त और देशोंका राजा पूर्व नामक देश है। जिस देशमें स्तनकलशोंके बोझसे वारम्वार उठनेमें असमर्थ प्रौढ़ा स्त्रियाँ फूले हुए धानोंकी बाली लूटनेवाले हरिणोंको हाँक तो नहीं सकती, लेकिन अपने मधुर गीतमें ही अटका लेती हैं।

अपने चीत्कार शब्दसे सब दिशाओंको परिपूर्ण करके अपने पास मानों बुलाते हुए कोल्हुओंकी ध्वनिसे आकृष्ट होकर पथिक-समूह वहां जाते हैं और वहां सरस 'रस' रूपी अमृतको पीकर वे राहकी थकनको भूल जाते हैं। वहाँके वृक्ष भी महान् पुरुषोंके समान देख पड़ते हैं। वे भी आश्रित लोगोंके सन्ताप (तपन, पक्षान्तरमें दुःख) के विस्तारको हरते हैं, ऊंचे होने पर भी फल-सम्पत्ति पाकर झुकते हैं, सच्छाया (अच्छी छाँह और पक्षान्तरमें कान्ति) से युक्त और सरस (हरेभरे और पक्षान्तरमें सहृदय) हैं।

वह देश देवकुरु नामक उत्तम भूखण्डकी तरह निरन्तर फले हुए और वे-जोते-बोये उत्पन्न सब अन्नोंसे सम्पन्न है। निर्दोष पुरुषको जैसे लोकापवाद नहीं छू सकता वैसे ही नवग्रहके कारण होनेवाले दुर्भिक्ष आदि अवग्रह उसे नहीं छू सकते।

इस देशमें देवपुरीके समान तीनों लोकमें प्रसिद्ध चंद्रपुरी नामकी राजधानी है। चन्द्रबिम्बको चूमनेके लिए उत्कण्ठितसे वहांके महल संगीतकी ध्वनिसे सदा गूंजा करते हैं। जिसके फाटक पर झण्डा फहरा रहा है। ऐसी चहार दीवारी उस पुरीके चारों ओर बनी हुई है।

उसकी विस्तृत उन्नत शिखरावली ही उसके हाथ जान पड़ते है। मानों करुणावश होकर वह उन्हीं हाथोंसे निराधार आकाशको थामे हुए है।

नीलाचलके समान नीली और ऊँची लहरें जिसमें उठ रही हैं ऐसी गहरी खाई उसके चारों ओर खुदी हुई है। उस खाईको देखकर जान पड़ता है कि उस पुरीके रत्नोंकी अभिलाषासे समुद्र उसे घेरे हुए है। उस पुरीमें कोई वियोगी (विरही) नहीं है; केवल वृक्ष ही वि-योगी (पक्षियोंसे युक्त) हैं।

विलापी (रोनेवाला) कोई नहीं है; केवल सर्प आदि जीव ही विलापी (विलमें जानेवाले) हैं। नीरस (रूखी तबीयतका) कोई नहीं है; केवल खूब पेरी हुई ईखका छिलका ही नीरस (रसहीन) देख पड़ता है। गदाभिघात (रोगका होना) कहीं न देख पड़ता था; केवल संग्राममें ही गदाभिघात (गदाके प्रहार)की बात सुन पड़ती थी।

उस पुरीके भीतर पाताल-विवरकी तरह सहस्रों नागों (हाथियों, पक्षान्तरमें सर्पों) से परिपूर्ण, सज्जनोंके हृदयकी तरह प्रशस्त (प्रशंसित, पक्षान्तरमें चौड़ा) बौद्धोंके मतकी तरह बहुतसी भूमिकाओं (वेदियों पक्षान्तरमें माध्यमिक, सौत्रान्तिक, वैभासिक, योगाचार आदि मतभेद) पर स्थित राजमन्दिर शोभायमान हैं।

वहांके प्रसिद्ध प्रतापी और शान्त राजाका नाम महासेन था। वे इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न हुए थे। उनके उदार गुण त्रिभुवनमें प्रसिद्ध थे। उन्होंने चन्द्रमा और कुन्द-कुसुमके समान अपनी उज्ज्वल कीर्तिसे अन्य राजाओंको परास्त कर दिया था। कल्याण-प्रकृति (कल्याण=मङ्गल, पक्षान्तरमें सुवर्ण) से ही नहीं, बल्कि धैर्यसे भी वह महामेरुके समान थे।

समुद्र लावण्य (नमकका खारापन, राजाके पक्षमें शरीरकी कान्ति) को खूब धारण किये है, और रत्न भी उसके बहुतसे

हैं। तथापि प्रलयकालमें मर्यादा (सीमा, पक्षान्तरमें प्रतिष्ठा) को छोड़ देनेवाला समुद्र उदारहृदय राजाकी बराबरी नहीं कर सका। उनकी अत्यन्त शूरता नीतिसे शून्य न थी। ऐसे ही उनकी प्रभुता उदारक्षमासे शून्य न थी।

उनकी विद्या विनयसे खाली न थी। धन भी बराबर दान और भोगमें खर्च होता था। पृथ्वीतलके विशिष्ट पुरुष राजा महासेनके गुणोंका वर्णन इतना ही यथेष्ट है कि संसारबन्धनसे छुड़ानेवाले, भव्य पुरुषोंके आगे सन्मार्गको प्रकट करनेवाले सूर्य और जगतके गुरु जिनेन्द्र उनके पुत्र हुए।

कामदेवकी स्त्री जैसे रति है वैसे कमलनिवासको छोड़कर आयी हुयी लक्ष्मी या पातालसे निकली हुई नागकन्याके समान लक्ष्मणा नाम उनकी रानी सारे अन्तःपुरकी स्वामिनी (पटरानी) थी।

महावृक्षकी लताके समान सच्छाया (छायायुक्त, रानीके पक्षमें कान्तियुक्त), मेघोंकी पदवी (आकाश) के समान बड़े तारागुच्छों (तारगणों, रानीके पक्षमें मोतियों) से परिपूर्ण, धनुषकी शोभाके समान श्रेष्ठ वंश (बाँस, रानीके पक्षमें कुल) से उत्पन्न और सुकविकी वाणीके समान सुन्दर वर्ण (अक्षर, रानीके पक्षमें रंग) वाली वह राजाकी रानी थी।

उसके दोनों नेत्र चञ्चल थे, पर चित्त नहीं चंचल था; उसकी चाल धीमी थी, पर परोपकारकी प्रवृत्ति शिथिल न थी; उसके स्तन कठीन थे, पर वाणी कठोर नहीं थी; केशोंमें भंग (टेढ़ापन) था, पर सदाचारके बारेमें वह बात न थी। कहीं केवल सौभाग्य होता है, कहीं केवल रूप ही होता है, कहीं केवल विनय-गुण होता है और कहीं केवल शील होता है। किन्तु लक्ष्मणामें ये सब बातें थीं।

सृष्टिमें ऐसी स्त्रियाँ प्रायः कम देख पड़ती हैं। सारे अज्ञानोंसे

परे स्थित, गुणनिधि, निष्पाप अष्टम तीर्थ (परम आगम) के कर्त्ता अर्थात् तीर्थंकर, जिस लक्ष्मणाके गर्भमें स्वयं आये उसके गुणोंको कौन गिन सकता है ?

मनुष्य शरीर रखकर आई हुई चतुःसमुद्र मेखला पृथ्वीके तुल्य उस पंचेन्द्रिय भोगका सारांश—स्वरूप रानीको पाकर राजाने अपनेको सार्वभौम चक्रवर्ती माना। रानीके अधरपल्लवका रस लेनेमें लगे हुए राजाने राजलक्ष्मीकी चिन्ताको भी शिथिल कर दिया।

मदनफलके समान इन्द्रियोंके विषय प्रायः स्थिर बुद्धिवाले समझदारोंको भी मोहित कर देते हैं। विषयसुखके अगाध सागरमें डूबकर राजकाजकी देखरख कम करदी है, यह सुनकर सब सूबे और देश स्वाधीन बन बैठे। आलस्य किसकी अवनति या तिरस्कारका कारण नहीं होता ?

मंत्रीके मुखसे सामन्त राजाओंकी इस बगावतका हाल सुनकर राजाने अपनी असावधानताकी निन्दा की। उसके बाद एक समय अनेक सामन्तोंके साथ वे दसों दिशाओंको जीतनेके लिए निकले। पहले वे पूर्व दिशामें गये। वहाँ धनुष धारण कर उन्होंने अंगदेशके राजाको अपने बाणका शिकार बनाया। अंग-नरेशका पुत्र भेंटमें हाथी लाकर चरणोंपर गिरा।

तब राजाने दयापरवश होकर उसके पिताका राज्य दे दिया। प्रचण्ड मत्त हाथियोंके दांतोंकी चोटसे घायल भटोंके खूनसे रथोंके पहिये जिसमें लिप गये ऐसे युद्धमें महासेनने कलिंगनरेशकी स्त्रियोंके हाथ बिना चूड़ियोंके कर दिये। दोनों चरणकमलोंमें भ्रमरके समान होकर गलेपर कुठार रक्खे हुए पांचालनरेशको परम शूर महासेनने प्राणरहित न करके रत्न रहित कर दिया।

महान् लोग प्रणत पुरुषों पर कृपा ही करते हैं। बिजलीकी तरह चमकीले खड्ग आदि शस्त्रोंसे शोभित होकर मेघके समान

सब दिशाओंको आच्छादित किये हुए उत्कलदेशवासियोंको कंपाकर महासेनने चेदिनरेशको वायुके समान पराक्रमसे वृक्षकी तरह जड़से उखाड़ डाला।

इस प्रकार राजा पूर्व समुद्रकी सीमा पर पहुंचे। शत्रुरूप वृक्षोंको जड़से उखाड़ डालनेवाली राजाकी उमड़ी हुई सेना पूर्व समुद्रके साथ पश्चिम समुद्रके संगमकी शोभाको प्राप्त हुई। चंद्रमाके समान श्वेत और लहरोंके उछलनेसे फटी हुई सीपियोंसे निकले हुए मोतियोंको तट पर चीनते हुए सैनिकोंको देखकर यह जान पड़ता था कि समुद्रपार जाती हुई शत्रुओंकी कीर्तिको पकड़ रहे हैं।

राजा महासेनके सुभट खड्गधारी शत्रुओंकी आयुके साथ कच्चे नारियलका पानी पीकर समुद्र तटके अन्तर्गत जंगलोंमें टहलने लगे। कंकोल वृक्षोंके वनसे आई हुई हवा उनकी थकनको मिटाती हुई उन्हें सुखी बनाने लगी। शत्रुओंको जीत चुके महासेनने सब दिशाओंमें घूमकर स्वर्गमें चढ़नेके लिए तैयार विश्रामस्थलके समान एक जयस्तम्भ समुद्रतटके पहाड़के ऊपर स्थापित कर दिया।

दक्षिण दिशाकी ओर जानेको उद्यत महासेनकी सेनाके चलनेसे मार्गमें उड़ी हुई धूलने आकाशको तो श्वेत बना दिया और उसकी स्याही शत्रुओंके मुंह पर फेर दी। वहाँ पहुंचकर नंगी तरवार हाथमें लिये राजाने संग्राममें अन्ध्रदेशकी स्त्रियोंको विधवा बना दिया। राजाने अन्ध्रदेशकी स्त्रियोंके मुखमण्डलको पूर्णरूपसे चन्द्र-मण्डलके समान बना दिया। क्योंकि विलाप करनेमें कपोलों पर बिखरी हुई उनकी लटें उस समय चन्द्रमण्डलके कलङ्ककी समता कर रही थीं।

जो राजाका तेज काँचके समान कान्तिहीन अन्य राजाओंमें अच्छी तरह नहीं झलका था वही तेज कर्णाटकदेशके नरेशके साथ

युद्ध करनेमें उस तरह झलका जिस तरह सूर्यका तेज सूर्यकान्तमणिमें प्रकट होता है। सामन्त राजाओंकी सेनाने जिन सरोवरका पानी खर्च कर डाला था उन सरोवरोंको महासेनने द्रविड़देशकी कामिनियोंके पतिवियोग-जनित आँसुओंके प्रवाहोंसे बहुत शीघ्र परिपूर्ण कर दिया।

मलय पर्वत पर चन्दनके पेड़ोंमें गर्दन घिसते हुए मस्त हाथियोंकी जंजीरोंके जो घट्टे पड़ गये वे ही पृथ्वीतलको तिलकतुल्य कीर्तिसे भूषित करनेवाले राजाके दक्षिणविजयकी साक्षी हो गये। पत्र-पूग (पान-सुपारी, पक्षान्तरमें वाहनसमूह) को स्वीकृत कर वेश्याके समान मलयाचलके चन्दनसे दक्षिणदिशाको भोगकर, (देखकर, पक्षान्तरमें रमणकर,) महासेनके योद्धा लोगोंने फैलती हुई केसरकी मनोहर पश्चिमदिशाकी ओर दृष्टि फेरी।

हवासे हिलते हुए पताका आदि राजचिह्न मानों यह कहकर पश्चिम दिशाके स्वामी वरुणको हटनेकी सलाह दे रहे थे कि इन महासेन राजाने सारी दक्षिण दिशा जीतकर उसके स्वामी यमराजको भी शक्तिहीन कर दिया है तब तुम क्या चीज हो?

लाटदेशमें वहाँकी स्त्रियोंके कठिन बड़े और नुकीले कुचोंके मर्दनसे पहले हीसे जर्जर हुए तद्देशीय राजाओंके हृदयस्थलपर गिरते हुए महासेनके शस्त्रोंने सहजमें ही बड़ी कीर्ति प्राप्त करली। शत्रुवनको जलानेवाला राजा महासेनका प्रताप वाड़वानलसे रत्तीभर भी कम नहीं था; क्योंकि वह गंभीर, मर्यादाशाली और सत्त्वपूर्ण (सामर्थ्यशाली, पक्षान्तरमें जलचर जीवोंसे पूर्ण) सिन्धुराज (सिन्धुदेशका राजा, पक्षान्तरमें समुद्र) पर भी अच्छी तरह जलता रहा।

शत्रुओंको झुकानेवाले राजाओंने गर्वान्ध पारसी लोगोंको शीघ्र ही बलपूर्वक वेंतकी तरह झुकाकर शिक्षा दी और उनसे दण्डमें बहुतसे रत्न गुरुदक्षिणाके समान प्राप्त किये। कामदेवके समान सुन्दर राजा महासेनके कर (हाथ, श्लेपसे राजकीय 'कर')

सम्बन्धको प्राप्त होकर पश्चिमदिशा) मानों बहुत ही प्रसन्न हुई।

चलते हुए घोड़ोंके खरोंसे उठी हुई रज-रेणु उसके रोमाञ्चके समान शोभायमान हुई। पश्चिम समुद्रके तटपर पहुंचे हुए सेनाके गजोंके ऊपर क्रोध करके जलमें दौड़ते हुए जल-गजोंको मारकर राजाने अपने दिग्विजयके स्मारक चिह्नकी तरह समुद्रतटके ऊँचे पेड़ों पर वंधवा दिया। वहाँसे सेना उत्तरदिशाको चली।

आकाशमें घोड़ोंके खुरोंसे उड़ी हुई धूल छा गई। जान पड़ा, सेनाके बोझसे जिनके सिर दवे जा रहे हैं। ऐसे रसातलके नाग धूलके मिससे ये लम्बी साँसें छोड़ रहे हैं। उत्तरदिशाको प्राप्त सूर्यका भी तेज क्रमसे विना तेज नहीं होता। किन्तु उन राजाका प्रताप तिरस्कारकी अपेक्षा न करके तत्क्षण शत्रुओंके लिए असह्य हो उठा।

पृथ्वीमण्डलके स्वामी राजा महासेनकी सेनाको, जो सब दिशाओंसे आये हुए सामन्तोंकी सेनासे बहुत बढ़ गई है, अवकाश (जगह) देते हुए उत्तरदेशने अपना अनन्त होना प्रकट कर दिया। वहाँ हथनियाँ जो चन्द्रकान्त मणिके समान उज्ज्वल जलकण अपनी सूंढ़ोंसे उड़ाने लगीं वे चारों ओर आकाशमें उड़ने लगे। जान पड़ा कि अपने स्वामी (कुवेर) की हारकी आशंका करके उत्तर दिशा रो रही है और आँसू गिर रहे हैं।

राजा महासेनने भोग न करनेसे वढ़े हुए उत्तरदिशाके भीलोंके धनको हर लिया, तथापि उन्हें मारनेके लिए तलवार उठाई। उन्होंने यह नहीं समझा कि धन ले लेनेसे ही उनके प्राण निकल गये हैं।

वड़े कटकों (सेनाओं और पक्षान्तरमें शिखरों) से शोभित काश्मीर देशके भूमिभृत् (राजा, पक्षान्तरमें पहाड़) लोगोंके ऊपर वज्रके समान गिरकर राजा महासेनने कीर-देशकी नई जवानीसे चूर स्त्रियोंकी शोभाको (उनके पतियोंको मारकर) शोचनीय वना दिया।

कबूतरोंके रंगके समान धूसर जो राजा महासेनकी सेनाके चलनेसे उठी हुई धूल आकाशमें चारों ओर छा गई वही डरसे जिनके पक्ष (सहायक, पक्षान्तरमें पंख) काँप रहे हैं उन मच्छड जैसे खुश लोगोंको धुएंके समान जान पड़ी। मच्छड धुएंसे भाग जाते हैं।

कस्तूरी-मृगोंसे सुगन्धित और बहते हुए झरनोंसे सुशोभित हिमाचल पर जाकर राजाकी सेनाने डेरा डाल दिया। वहाँ स्वर्गीय वीणा हाथमें लिये किन्नर आदि राजाके चन्द्र सदृश उज्वल यशकी गाथायें गा रहे थे, उसे राजाने सुना। इस प्रकार अद्वितीय पराक्रमी राजा सन्तुष्ट स्त्री सरीखी दिशाओंको संक्षेपमें कर-कलित (हाथमें, पक्षान्तरमें 'कर'-युक्त) करके अपनी पुरीको लौट आये। पुरवासी लोग सन्तुष्ट होकर अनेक प्रकारके उत्सव करने लगे।

वस्त्रोंके जोड़े आदि पुरस्कार यथायोग्य देकर महासेनने सब राजाओंको विदा कर दिया। उसके बाद वे लक्ष्मणाके मुख-कमलको निहारते हुए बहुत दिनोंतक साम्राज्य शासन करते रहे।

इधर देवेन्द्रकी प्रेरणासे प्रसन्नचित्त कुबेरने जिन (चन्द्रप्रभ) के अवतारके पहले ही नित्य छह महीने तक राजा महासेनके यहाँ साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा की। इन्द्रकी आज्ञासे आठों दिक्कुमारियोंने राजाके अन्तःपुरमें जाकर विनम्र होकर लक्ष्मणा-रानीको अपने आनेका अभिप्राय बतलाया और गर्भशोधन आदि अपना कृत्य किया। महलके ऊपर ऊंचे पलंगपर सोई हुई मनोहर अंगवाली देवी लक्ष्मणाने पिछले रातको जिन-जन्मका अनुमान करनेवाले चिह्न ऐसे ये स्वप्न देखे—

उन्होंने पर्वतराजके समान ऊंचा और श्वेत इन्द्रका हाथी ऐरावत, गर्वके मारे गरजता हुआ बैल, हाथियोंके समूहको भगाते हुए गजराज और हाथमें लीला कमल लिए हुए लक्ष्मीको देखा।

भौंरे आसपास जिनके मंडरा रहे हैं ऐसी दो मालायें, शीतल घनी चांदनीसे युक्त पूर्णिमाके चन्द्र, अपने प्रकाशसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुए और परस्पर प्रीतिके साथ कल्लोल करते हुए मछलीके जोड़ेको देखा।

कमलपुष्पसे ढके हुए दो जलपूर्ण मंगल-कलश, श्वेत कमलोंसे सुशोभित जलवाला सरोवर, लहरोंसे आकाशको चूमते हुए समुद्र और सिंह जिसको अपनी पीठ पर लिये हुए हैं ऐसा पहाड इतना ऊंचा सिंहासन देखा। देवताओंसे युक्त दिव्य विमान, नागकन्याओंसे मनोहर नागलोक, चमकीली रत्नराशि और निर्धूम उज्ज्वल अग्नि देखी।

भारी कल्याणकी सूचना देनेवाले इन स्वप्नोंको सवेरे जाकर प्रीतिपूर्ण दृष्टिवाली लक्ष्मणादेवीने राजासे कहा। राजाने भी इन स्वप्नोंका फल (जिनदेवका जन्म) बतलाकर उन्हें प्रसन्न किया।

राजाने कहा—हे कल्याणमुखी! हाथी देखनेका फल यह है कि तुम्हारे त्रिभुवन श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा। स्वप्नमें देखा हुआ बैल बतलाता है कि वह गम्भीर होगा। सिंह बतलाता है कि उसका पराक्रम सिंहका ऐसा महान् और अलंघ्य होगा।

लक्ष्मी बतलाती है कि उसका अभिषेक बड़ेर देवता आकर करेंगे। दो मालाओंका फल यह है कि उसका कीर्ति अनंत होगी।

चन्द्रमाका फल यह है कि वह प्रजाको प्रसन्न रक्खेगा। सूर्यका फल यह है कि वह मोहान्धकारको दूर करेगा।

मछलियोंका फल यह है कि वह सब शोकोंसे शून्य होगा। कलश देखनेका फल यह है कि उसका शरीर सम्पूर्णांग और हल, पद्म, यव, वज्र आदि अच्छे लक्षणोंसे युक्त होगा।

सरोवरका फल यह है कि वह वासनारूपी अग्निको बुझानेवाला होगा। समुद्रका फल यह है कि वह केवलज्ञान (पञ्चम

ज्ञान) को प्राप्त होगा। सिंहासनका फल यह है कि वह सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त होगा।

हे देवि ! देवताओंके विमानोंने यह सूचना दी है कि वह स्वर्गसे आवेगा। नागभवन देखनेका फल यह है कि वह धर्मतीर्थ (परम आगम) का कर्त्ता अर्थात् तीर्थंकर होगा। रत्नराशिका फल यह है कि वह सब गुणोंकी लीला-भूमि होगा। अग्निका फल यह है कि वह क्रूर कर्म वनको जलावेगा।

अपने प्राणनाथके मुखसे सारे स्वप्नोंका फल इस तरह सुनकर रानीको अनिर्वचनीय सन्तोष प्राप्त हुआ और दूसरी कंचुकीके समान उनके शरीरमें रोमाञ्च छा गया। अभिलषित (इष्ट) वस्तुकी प्राप्तिसे किसे सन्तोष नहीं होता ?

इधर अपनी आयु पूर्ण होने पर अनुत्तर-वैजयन्त स्वर्गसे उतरकर शुभ दिनमें अहमिन्द्रने, सीपीमें स्वातीके जलबिन्दुकी तरह लक्ष्मणादेवीके गर्भमें प्रवेश किया। त्रिभुवनको क्षुब्ध करनेवाले शुभकर्मोंसे युक्त अहमिन्द्र जब गर्भमें गये तब असुरगण सहित देवगण संभ्रमपूर्वक राजा महासेनके घर आये।

इसके बाद उन्होंने गर्भकल्याणकी क्रिया और जिन-जननीके चरणोंकी पूजा करके दुन्दुभी बजाकर वेणु-वीणा आदि बजाते और नाचते हुए अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया।

परम प्रसन्नतासे कान्ति, लज्जा आदि अपने श्रेष्ठ गुणोंको रानीके शरीरमें फैलाती हुई श्री, ह्री, धृति आदि देवियाँ सदा उनकी सेवामें उपस्थित रहती थीं। अभ्युदयशालिनी कमलमुखी रानी स्वयं देखती थीं कि नित्य देवगण रत्नोंकी वर्षा करते हैं। इस गर्भके प्रभावसे रानीके नौ महीने सुखसे बीत गये।

इति षोडशः सर्गः।
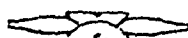
सप्तदश सर्ग

गर्भधारणके उपरान्त जिनेश्वरको देखनेकी इच्छासी रखनेवाले प्रसवके समयकी प्रेरणासे लक्ष्मणादेवीने पौषकृष्ण (दशमीके क्षय हो जानेसे) एकादशीके दिन सुन्दर पुत्र पैदा किया। उस बालक (जिन) के जन्मके समय दिशायें और सारा आकाश निर्मल होगया।

दिशारूपिणी अंगनाओंको सुवासित करती हुई हवा चलने लगी। भौंरे जिनपर मण्डल बांधे हुए हैं ऐसे अत्यन्त हृष्ट-हृदय देवताओंके बरसाये दिव्य पुष्प आकाशसे पृथ्वीमण्डल पर गिरने लगे। कल्पवासी देवताओंकी सभामें मणियोंकी बनी घंटियाँ बिना बजाये बज उठीं।

ज्योतिष्क देवोंके निवासस्थानमें सहसा ऊँचे स्वरसे सिंहनाद होने लगे। भवनवासी देवताओंके भवनोंमें मेघगर्जन सदृश गंभीर शंखध्वनि होने लगी। व्यन्तर देवोंके घरोंमें प्रतिध्वनिपूर्ण डंके बजने लगे।

इन कारणोंसे एक-साथ ही जिनके सिंहासन कम्पित हो उठे हैं ऐसे सब देवतागण जिनेन्द्रके जन्मकी सूचना पाकर अपने अपने स्थानसे चले। उनके विमानोंसे आकाश परिपूर्ण हो गया। इधर उधर आते जाते देवोंके किरीटोंकी किरणोंसे अनुरंजित दिशायें भी विभूषण (शोभा, पक्षान्तरमें आभूषण) को प्राप्त हुईं। जिन भगवान्‌के जन्मसे किसकी बढ़ती नहीं होती?

इस समय तो जिनदेव ही जन्म लेकर जगत्‌भरको प्रकाशित कर रहे हैं, अब मेरा क्या काम है? यही सोचकर मानों सूर्यदेव लज्जाके मारे देवताओंके विमानोंकी आड़में छिप गये।

स्वर्गसे राजाके घर तक लगी हुई देवोंकी श्रेणीको देखकर यह जान पड़ता था, मानों स्वर्ग और पृथ्वीके अन्तरको नापनेके

लिये यह नाप डोरी लटकाई है। विविध मणि-रत्नोंसे पूर्ण, सारी पृथ्वीको व्याप्त किये समुद्रकी तरह इन्द्रसहित चारों प्रकारके देवगण द्वारा राजाका सारा महल भर गया।

इसके बाद बड़ी भक्तिसे भावित शचीदेवी मायासे उसी आकारका वैसा ही मायोजनित बालक लक्ष्मणाके पास रखकर जिनेन्द्रदेवको उठा लेगई। इन्द्राणीके लाये हुए सूर्यसदृश जिन बालकको देखकर इन्द्रके हजारों नेत्र एकसाथ कमलवनकी तरह खिल उठे। सुरगणकी की हुई जय-जय-ध्वनि त्रिभुवनमें फैल गई।

प्रथम स्वर्गके इन्द्रने उन्हें अपनी गोदमें लेकर ऐरावत हाथी पर चढ़ाया। महती भक्तिके भारसे झुके हुए हैं मुकुटोंके अग्रभाग जिनके ऐसे कुछ देवगण उनको प्रणाम कर रहे थे और कुछ देवगण छत्र, कलश, दर्पण, चामर आदि लिये सेवामें उपस्थित थे। हथनियों पर चढ़ी हुई देवियाँ हाथोंमें धूप, भेंट, फूल आदि लिये मंगल गाती हुई आगे आगे चलीं।

देवेन्द्र-समूहसे घिरकर जब जिनदेव मेरुकी ओर चले तब चारों ओर देवोंने यात्राकी सूचना देनेवाले नगाड़े बजाये। अत्यंत ललित गाने बजानेवाले देवगण बहुत ही सुन्दर नृत्य कर रहे थे। मानों उनके आगमनका समय देखकर सब दिशाओं सहित आकाश ही हर्षके मारे नाचने लगा। अलौकिक जिनदेवके रूपको विस्मयके साथ देखते हुए देवगणको यह न मालूम हुआ कि कब उन्होंने महामेरुका मार्ग समाप्त किया।

अनेक बड़े बड़े चैत्यमन्दिरोंसे विभूषित महामेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करनेके बाद सब देवोंने पाण्डुशिलामें सिंहासन पर जिनदेवको सुखपूर्वक बिठलाया। इन्द्रोंने क्षीरसागर तक देवोंकी श्रेणी लगवाकर निर्मल कलशोंमें दुग्ध मंगाया और उससे जिन भगवानका अभिषेक किया। ललित नृत्य और मधुर शब्दवाले

गाने बजानेके साथ उनका अभिषेक करके इन्द्रोंने हीरेकी पैनी सुईसे उनके दोनों कान छेद दिये।

त्रिभुवनके एकमात्र अलंकार जिनदेवको देवोंने मणिमय कुण्डल, अंगद, किरीट, कटक, काञ्ची आदि आभूषणों तथा दिव्य पुष्पों और वस्त्रोंसे अलंकृत किया।

इस प्रकार उत्सव पूजन कर चुकने पर इन्द्रोंने "ये भगवान् चन्द्रमाके समान कान्ति धारण करनेवाले हैं" इस भावको व्यक्त करनेवाला इशारा करके जिन भगवानको चन्द्रप्रभ नामसे पुकारा। अन्य इन्द्रों सहित सौधर्म नामक प्रथम कल्पपति इन्द्रने स्वाभाविक त्रिविध ज्ञानसे सम्पन्न जिन भगवानको हाथ जोड़कर इस-प्रकार उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया—

मैं सब ज्ञानोंसे युक्त, निर्मल, अनुपम, अचिन्त्य वैभवसे सम्पन्न, जन्मरहित, जरा-मरणहीन, मत्सरहीन अष्टम जिन चन्द्र-प्रभको प्रणाम करता हूं। ईश! मुझमें आपकी स्तुति करनेकी शक्ति नहीं है, तथापि मैं अपने हितकी कामनासे आपकी स्तुति करता हूं। काम करनेवाले लोग यह विचार नहीं करते कि यह हो सकेगा और यह न हो सकेगा। सिंहासन पर विराजमान और मनोहर कान्तिवाला यह आपका जनमनोहर शरीर उदया-चल पर स्थित चन्द्र मण्डलके समान शोभायमान है।

हे जिनदेव! आप सब जगत्के जीवोंसे दयाका व्यवहार करनेवाले हैं। जो कोई आपके मार्गका आश्रय लेता उसे फिर भव-भय नहीं रहता। जो जहाज पर सवार है वह समुद्रमें नहीं डूबता।

हे नाथ! अचल भक्तिसे जो कोई आपके चरणोंकी सेवा करता है उसका यमराज क्या कर सकते हैं? जो आग ताप रहा है उसका जाड़ा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हे जगत्के स्वामी! जगत्को जरा-मरण करनेवाला तुम्हारा दर्शन अभव्य

पुरुषको छोड़कर, रसायनकी तरह, और किस पण्डितको नहीं रुचता ?

हे जिनेन्द्र ! हे निष्पाप ! आप आश्रित पुरुषको उसके न चाहने पर भी आनन्द देते हैं। यह आपकी स्वाभाविक शक्ति है। श्रमको हर लेना चन्दनका स्वभाव ही होता है।

हे जिन ! नित्य जिसके हृदयसरोवरमें आपके चरणकमल शोभाको प्राप्त हैं वह पुरुष जगत्‌में पुण्यात्मा है और मेरी समझमें उसका जन्म भी सफल है।

हे देवपूज्य ! जो नित्य हृदयमें तुम्हारे नामको जपा करता है उसे, मन्त्र कुशलको दुष्ट ग्रहोंके समान, आपत्तियां पीड़ा नहीं पहुंचा सकती। वह लोगोंको सुमति देता है, पापको हरता है, सब सम्पत्तियां प्राप्त कराता है। हे स्वामिन् ! आपके चरणकमलकी सेवा क्या नहीं करती ?

हे ईश ! सब आदमी ऐसे नहीं होते कि सब स्वार्थोंको छोड़कर परोपकारमें प्रसन्नता प्राप्त करें। निरपेक्ष होकर संसारका उपकार करनेकी यह आपकी प्रवृत्ति सचमुच ही अब तक और किसीमें नहीं पाई गई। हे जिनेन्द्र ! इन्द्रगण आकर अभिषेक करते हैं, इंद्राणी देवी दासीकी तरह शृङ्गार करती हैं, देवगण क्षीरसमुद्रसे अभिषेकके लिए जल लाते हैं। और किसकी ऐसी महिमा है ? हे जिन ! पशु-पक्षी भी आपके निकट आकर भक्तियुक्त हो जाते हैं। मनुष्य होकर भी जो आपका भक्त नहीं वह पशुओंसे भी बढ़कर पशु (मूढ़) है।

हे जन्मरहित ! इस संसारी जीवका मन जब तक आपमें नहीं लगता तभी तक वह भय, रोग, दुःख, मरण आदि वेदनाओंको जन्मजन्मान्तरमें पाता है। हे जिनेन्द्र ! "नमः" ये दो अक्षर भी आपके उद्देशसे कहनेपर सब पाप मिट जाता है। और तो सब वाग्मी लोगोंका वाग्वैभवमात्र है।

हे जगदीश! यही निश्चय करके मैं आपकी अधिक स्तुति नहीं करता कि केवल प्रणामसे ही मुझे सब फल मिल जायंगे। हे जिनेन्द्र! इस कारण मैं आपको प्रणाम करता हूं। भारी भक्तिके भारसे सिर झुकाये हुए पुरन्दर इस प्रकार स्तुति करके नाचते हुये देवगणसहित उत्सव मनाते "चन्द्रप्रभ" प्रभुको चन्द्रपुरी ले गये।

चन्द्रपुरीमें फिर प्रसन्नहृदय देवोंने महान् उत्सव मनाया। उसके बाद माता पिताको वह जिनबालक सौंपकर वे अपने लोकको चल दिये।

इन्द्रने जिनमें अमृत स्थापित कर दिया है ऐसी अपनी हाथकी उँगलियोंको प्रसन्नतासे प्रफुल्लितमुख वह बालक चाटता था। उसे माताको स्तनकी भी उतनी पर्वा नहीं थी। अपनी कान्तिसे बिल्लोरकी चमकको फीकी करनेवाले जिनेन्द्र प्रतिपदाके चन्द्रमाके समान सब लोगोंके नेत्रोंको आनन्द देते हुये नित्य वृद्धिको प्राप्त होने लगे।

देवकुमारसमूह आकर उनके साथ पुरवासियोंके चित्तको प्रसन्न करनेवाले कर-कन्दुक आदि खेल खेलते थे। शिशुकी चञ्चलता अठासी ग्रहोंकी गतिके समान स्वभावसे ही अभिव्यक्त है। इसीसे परिपक्वबुद्धि बोधसम्पन्न जिनेन्द्रने भी अन्य बालकोंकी तरह क्रीड़ा की। सेवक लोगोंके हाथोंकी उंगली पकड़े धीरे धीरे पैर रखकर रत्नमय फर्शो पर टहलते हुये प्रकाशपूर्ण जिनेन्द्रकी शोभा दर्शनीय ही होती थी। जान पड़ता था कि सरोवरमें राजहंस जा रहा है।

कान्तिसे मनोहर शरीरवाले उन बालकको एकके हाथसे एक ले लेता था। इस प्रकार वे राजाके मित्रोंके हाथमें शोभा पाते थे जैसे जिसका मूल्य न आंका गया हो वह समुद्रसे निकला महामूल्य मणि जौहरियोंके हाथमें इधरसे उधर फिर रहा हो।

इन्द्रके कहनेसे कुबेरने लड़कोंके लायक मणिमय मुद्रिका, कटक, हार, वस्त्र, काञ्ची आदि सब आभूषण जिनेन्द्रके लिए भेज दिये। कुछ दिनों बाद कुमार अवस्थामें जलकेली, हाथी घोड़े आदिकी सवारी आदि कामोंमें जिनेन्द्रने कुछ समय बिताया।

हरएक काममें अपनी बढ़ी चढ़ी योग्यतासे उन्होंने सबको नीचा कर दिया। इसके बाद सब राजाओंके साथ राजा महासेनने विवाहके उपरान्त सिंहासन पर बैठे हुये चन्द्रप्रभ प्रभुका राज्याभिषेक किया।

इसके बाद माननीय आज्ञावाले पिताके अनुरोधसे 'चन्द्रप्रभ' भगवान् राज्यशासन करने लगे। मुक्तिसुखमें ही मन लगाये हुए चन्द्रप्रभको तो कोई विषयभोगकी अभिलाषा थी ही नहीं। अतुल तेजवाले चन्द्रप्रभ राजा जब चतुःसमुद्रमेखला पृथ्वीका पालन करने लगे तब प्रजा बहुत ही प्रसन्न हुई।

ऐसे लोगोंका अभ्युदय लोगोंके ऐश्वर्यका ही कारण होता है। उनके राज्यकालमें कोई भी प्राणी अकाल मृत्युसे नहीं मरा और अनावृष्टि या अतिवृष्टिने लोगोंको व्याकुल नहीं किया। कानोंके पर्दे फाड़नेवाले कठोर शब्दसे दारुण हवा नहीं चली, रोगोंकी वृद्धि नहीं हुई, अधिक जाड़ा या अधिक गर्मी नहीं पड़ी।

सारे जनपदको कभी ईति (टीड़ी, मूसे, अवृष्टि आदि) की बाधा नहीं हुई। पुरमें क्रूर हिंस्र पशुओंने भी हिंसावृत्ति छोड़ दी। अन्य राष्ट्रोंके राजा लोग भेंटें लेकर उनकी सेवामें उपस्थित हुए। द्वारपालोंके द्वारा अपने अपने नाम और कुल कहला कर फिर भीतर जाकर, उन्होंने पृथ्वीतल पर सिर रखकर प्रणाम किया।

देवता भी जिनकी बुद्धिकी बड़ाई करते हैं उन जिनेन्द्रने दिन और रातके आठ भाग करके हरएक कामका समय नियत कर दिया। इस प्रकार यथोचित कामोंके द्वारा उन्होंने संसारी

जीवोंको शास्त्रका मार्ग दिखलाया। हजारों राजाओंके बीचमें बैठे हुए चन्द्रप्रभकी सभामें इन्द्रकी आज्ञासे नित्य अप्सरायें आकर ललित नृत्य करती और गाती बजाती थीं।

कमलप्रभा आदि अपनी दिव्य स्त्रियोंके बीच वे जगत्के एकमात्र स्वामी जिनेन्द्र इस तरह अपनी इच्छाके अनुसार चिर-काल तक विषयसुखको भोगते रहे। एक दिन एक बहुत ही बूढा आदमी लठिया टेकता हुआ धीरे धीरे सभामें आया और इस प्रकार हाथ उठाकर आर्त्तनाद करने लगा—

उसने कहा—"हे देववृन्दके वन्दनीय! हे दयार्द्रहृदय! हे शरणागतवत्सल! हे सब जगत्के रक्षक! हे निर्भय! मैं दीन और सात भयोंसे डरा हुआ हूं। मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो।

हे जगदीश! ज्योतिषीने मुझसे कहा है कि आज रातको अप्रतिहतगति मृत्यु आकर आपके सामने ही मुझे इस लोकसे ले जायगा। हे जिनेन्द्र! अगर उससे आप मेरी रक्षा न कर सके तो आप वृथा ही अन्तकके भी अन्तक कहलाते हैं।"

इस प्रकार कहकर वह पुरुष सबके सामने ही अंतर्द्धान हो गया। सभ्य लोग कहने लगे—देव! बतलाईये यह कौन था? तब अवधिज्ञानसे सब जगत्को देखे हुए जिन भगवान् हंसते हुए इस सम्बन्धमें यों कहने लगे—

इन्द्रकी आज्ञासे मुझे विषयोंके प्रति विरक्त करनेके लिए यह धर्मरुचि नामका देवता विकृत बूढ़ेका रूप धारण करके स्वर्गसे आया था। अचिन्त्य है चेष्टा जिनकी वे जिनेन्द्र विस्मित सभ्योंसे यह कर और भोगोंसे हृदयको विरक्त करके इस प्रकार संसारकी स्थिति पर विचार करने लगे—

शरीर-धारियोंका धन और जवानी आदि सब सामान पूर्व-जन्मके किये पुण्योंका क्षय हो जानेपर क्षणभर भी नहीं ठहरता।

शत्रुओंके समान विविध प्रकारके सन्तापोंके कारण जो इन्द्रियोंके विषय हैं उनमें सम्यग्ज्ञानसे रहित वैराग्यहीन पुरुष ही आसक्त होते हैं, ज्ञानी पुरुष नहीं।

यह शरीरधारी जीव विविध योनियोंमें तरह तरहके शरीर धारणकर इन्द्रियसुखके लेशमें लुभाकर नटकी तरह विडम्बनाको प्राप्त होता है। इस संसारमें तरह तरहके शरीरोंको स्वीकार करते और त्यागनेमें जिन शुभाशुभ कर्मोंने मुझे विडम्बना दी है उन कर्मोंको अब मैं तप करके निर्मूल कर दूंगा।

इस प्रकार वैराग्यचिन्ता करते हुए जिनेन्द्रके पास सभामें लौकान्तिक देवता आये और इस प्रकार कहकर उनका अभिनन्दन करने लगे कि हे जिनेन्द्र! आपने यह सबके हितकी बात सोची। साधु साधु।

इसके बाद देवगण सहित आये इन्द्रने विमला नामकी पालकी पर जिनेन्द्रको बिठलाया और बड़े आनन्दके साथ गाते बजाते हुए वह उन्हें सकलर्तुक नामके उद्यानमें ले गया।

वहां भगवान्‌ने निर्मल चरित्रवाले वरचन्द्र नामक अपने पुत्रको राज्य देकर और सिद्ध भगवान्‌की स्तुति करके एक हजार राजाओंके साथ छह अन्तरंग और छह बाह्य इस प्रकार बारह भेद युक्त तप करना शुरु किया।

उस समय वह पाँच मुष्टियोंसे उखाड़े हुए चन्द्रप्रभके केशोंको इन्द्रने भक्तिभावसे मणिमय पात्रमें रखकर क्षीरसमुद्रके जलमें प्रवाहित कर दिया। इस प्रकार परिनिष्क्रमण कल्याणके उत्सवमें सुन्दर बाजोंके शब्दोंसे पृथ्वीमण्डलको व्याप्त करके सब देवगण जहांसे आये थे वहां चले गये।

इसके बाद चन्द्रप्रभ मुनि नलिनपुरके राजा सोमदत्तके यहां पारणा करने गये। भगवान्‌का निरन्तराय आहार होनेसे राजाके

महल पर पंच-आश्चर्य (रत्न, फूल और गन्धोदककी आकाशसे वर्षा, सुगन्धित मंद पवन चलना और देवताओंके नगाड़े बजना) हुए।

तपस्वियोंके योग्य स्थानोंमें विहार करते हुए चतुरबुद्धि चन्द्रप्रभने वृद्धिको प्राप्त प्रशम आदि गुणोंसे चारों कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) को नष्ट कर दिया। धैर्यका कवच धारण किये हुए चन्द्रप्रभको भूख, प्यास, पृथ्वीशयन आदि परीषह उसी तरह पीड़ा नहीं पहुंचा सके, जैसे युद्धमें कवचधारी पुरुषका शत्रुलोग कुछ नहीं कर सकते।

अन्यान्य मुनिजन परमागमगत तत्त्वों (जीवादि पदार्थों) के सम्बन्धमें होनेवाले संशयको दूर करनेके लिए नित्य उनकी सेवामें आने लगे। इस प्रकार भारी तपसे कर्मोंकी प्रकृतियोंको क्षीण करते हुए चन्द्रप्रभ भगवान् फिर उसी सकलर्तु वनमें आये जहां उन्होंने दीक्षा ली थी।

वहां मुनियोंके साथ जाकर नागवृक्षके नीचे अतुल शुक्लध्यान द्वारा घाती-कर्म-रूपी शत्रुओंको नष्ट कर चन्द्रप्रभ भगवान्‌ने केवलज्ञान प्राप्त किया। उस समय परिजन देवगण सहित कुबेरने इन्द्रकी आज्ञासे जाकर चंद्रप्रभ प्रभुका समवशरण(सभाविशेष) बनाया।

आचार्योंने इसका प्रमाण कहा है कि प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान्‌के समवसरणका प्रमाण बारह योजन था। उनके बाद होनेवाले तीर्थंकरोंके समवसरणका प्रमाण आधा आधा योजन घटता गया। इस तरहसे इन आठवें तीर्थंकर श्रीचन्द्रप्रभ भगवान्‌के समवसरणका प्रमाण साढ़े आठ योजन परिमित था।

उस सभामण्डपके चारों ओर गोलाकार पञ्चवर्ण मणिचूर्णकी चहारदीवारी घेरी गई। उस घेरेके भीतर चारों दिशाओंमें चार ऊँचे मानस्तम्भ खड़े किये गये। उन मानस्तम्भोंके बाद चारों

ओर विकसित कमल-पुष्पोंसे सुशोभित जलसे परिपूर्ण चार सरोवर बने। उन सरोवरोंके बाद विविध पुष्पोंसे व्याप्त जलसे भरी खाई बनी।

उसके बाद अनेक पुष्पोंसे परिपूर्ण फूल-बाग (पुष्पवाटिका) बना। उस फूल-बागके भीतर चार फाटकोंसे युक्त प्रथम प्राकार बना। हरएक द्वारके दोनों ओर दो दो सुशोभित नाट्य-शालाएं बनीं।

उनके बाद देवताओंके बनाये चार उपवन शोभित हुए। उन उपवनोंमें मनोहर प्रतिमाओंसे शोभित चार चैत्यवृक्ष, मणिमय किनारेवाले तीन सरोवर, फुहारों तथा भ्रमरमण्डित कुञ्जोंसे शोभायमान बहुतसे सभामण्डप और कई क्रीड़ाशैल बने हुए थे।

उन उपवनोंके बाद मणिमय चार तोरणोंसे सुसज्जित वेदी बनी थी। उस वेदीके अग्रभागमें हाथी, शेर, बैल आदि विविध चिह्नोंसे युक्त पताकायें फहरा रही थीं। उसके बाद मणिनिर्मित चार दरवाजेवाला सोनेका प्राकार था।

उसके दूसरे विभागमें रम्य कल्पवृक्षोंका उपवन था। उसके बाद फिर चार फाटकोंसे युक्त हीरेकी वेदी थी। उसमें चारों ओर दस दस वन्दनवार बंधे हुए थे। उनके बीचमें जिन-प्रतिमा सहित नौ नौ स्तूप शोभायमान थे। वहीं ऊँचे शिखरोंवाले मुनियोंके सभाभवन बने हुये थे। उन स्तूपोंके आगे उज्वल स्फटिकमणिका प्राकार बना हुआ था।

उस प्राकारके बाद जिसकी कांति चारों ओर फैल रही है ऐसे बारह कोठे बने थे। उनके बाद बीचमें सुन्दर गंधकुटी बनी हुई थी। उस गंधकुटीमें चमकीली महामूल्य मणियोंसे अलंकृत सिंहासन बना हुआ था।

प्रकाशपूर्ण रत्नोंकी किरणोंसे अनुरंजित उस सिंहासनके ऊपर

प्रातिहार्योंने जिनके शरीरको अलंकृत किया है वे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यके धारक जिनेन्द्र भगवान् तत्त्वोपदेश करनेके लिए सामने मुख करके विराजे।

उन बारह कोठोंमें योगियोंसहित दत्त आदि गणाधिप, सुसज्जित प्रथम स्वर्गकी देवाङ्गना, ज्योतिष्क व्यन्तर और भवनवासी देवोंकी स्त्रियाँ बैठीं और उनके बाद भवनवासी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिष्क देव, और कल्पवासी देव तथा अपना अभ्युदय चाहनेवाले मनुष्य और सिंह आदि पशु जिनेन्द्रको घेरकर बैठे।

इति सप्तदशः सर्गः

अष्टादश सर्ग

इसके बाद जगद्गुरु जिनेन्द्रने सब भाषाओंमें व्यक्त होनेवाली दिव्यध्वनिसे गणधर देवके प्रश्नानुसार यों तत्त्व-वर्णन करना शुरू किया—जिनशासनमें जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये सात तत्त्व हैं। पुण्य और पाप, ये दोनों बन्ध तत्त्वहीके अन्तर्गत होनेके कारण अलग नहीं कहे गये। इनको अलग माननेके पक्षमें नौ पदार्थ होंगे।

चेतना ही जिसका लक्षण है वह जीव अपने शुभाशुभ कर्मोंका कर्ता और भोग करनेवाला भी है। वह शरीरके बराबर है। स्थिति, उत्पत्ति और नाश, ये तीनों उसके रूप (अवस्थायें) हैं। वह जीव भव्य और अभव्यके भेदसे दो प्रकारका है। नरकादि गतियोंसे उसके चार भेद होते हैं। नरकके जीव पृथ्वीके भेदसे सात प्रकारके हैं।

अधोलोकमें सात पृथ्वियां हैं। यथा—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा,

वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा। ये उन भूमियोंके नाम हैं। पहली पृथ्वीमें जो नारकी जीव रहते हैं उनके शरीर सात धनुष (एक धनुष चार हाथका होता है), तीन हाथ और छह अंगुल ऊंचे हैं। इसी प्रकार द्वितीय आदि पृथ्वियोंमें रहनेवाले जीवोंके शरीर, पांचसौ धनुषपर्यन्त, उत्तरोत्तर दूने दूने हैं।

उन भूमियोंके जीवोंकी आयु क्रमशः एक, तीन, सात, दश, सत्रह, बाईस और तेंतीस सागर-परिमित है। प्रथम भूमिमें दस हजार वर्षकी जघन्य आयु है।

ऐसे ही द्वितीय, तृतीय आदि भूमियोंकी आयुके बारेमें यह क्रम समझना चाहिए कि जो पहली भूमिकी उत्तम आयु है वह द्वितीय भूमिमें जघन्य आयु है। ऐसे ही और भूमियोंके बारेमें समझो। प्रथम भूमिमें तीस लाख, दूसरी भूमिमें पचीस लाख, तीसरी भूमिमें पन्द्रह लाख, चौथी भूमिमें दस लाख, पाँचवीं भूमिमें तीन लाख, छठी भूमिमें पाँच कम एक लाख और सातवीं भूमिमें केवल पाँच नरक हैं।

बहुत आरम्भ, बहुत परिग्रह, हिंसा आदिके पापोंसे परवश जीव इन नरकोंमें औपपादिक जन्म ग्रहण कर क्षेत्रजनित दुःखको भोगते हैं। यह नरकके जीवोंका भेद कहा गया।

अब तिर्यकयोनिके जीवोंका भेद वर्णन किया जाता है। त्रस और स्थावर इन भेदोंसे तिर्यक् जीव दो प्रकारके हैं। त्रस-संज्ञक जीव दो इन्द्रियोंसे लेकर पाँच इन्द्रियोंतक हैं। शरीर भेदसे स्थावर पाँच प्रकारके होते हैं। यथा-पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय। इन सबके एक ही इन्द्रिय होती है।

पंचेन्द्रिय जीवके शरीरकी उत्कृष्ट ऊँचाई एक हजार योजन है। यही बात एक इन्द्रियवाले जीवके लिए भी समझनी चाहिए।

शास्त्रानुसार दो इन्द्रियवाले जीवोंका उत्कृष्ट शरीरमान बारह योजन है। तीन इन्द्रियवाले जीवोंका तीन कोस और चार इन्द्रियवाले जीवोंका एक योजन है। स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु, और श्रोत्र, ये पांच इन्द्रियाँ हैं।

दो इन्द्रियसे लेकर पांच इन्द्रिय तकके जीवोंमें इन्हींमेंसे, इसी क्रमसे, एक एक इंद्रिय अधिक समझनी चाहिए। जैन-शास्त्रोंमें पृथ्वीकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्षकी कही गई है। जलकायिक जीवोंकी सात हजार वर्षकी, वायुकायिक जीवोंकी तीन हजार वर्षकी, तेजकायिक जीवोंकी तीन दिनकी, और वनस्पतिकायिक जीवोंकी दस हजार वर्षकी उत्कृष्ट आयु कही गई है।

दो इन्द्रियवाले जीवोंकी बारह वर्षकी, तीन इन्द्रियवाले जीवोंकी उनचास दिनकी, चार इन्द्रियवाले जीवोंकी छह महीनेकी और पाँच इन्द्रियवाले जीवोंकी एक कोटि-पूर्व वर्षकी परमायु है। यह तिर्यक् गतिके भेदका क्रम दिखलाया गया।

अब कुछ नर-गतिके भेद कहे जाते हैं। भोगभूमि और कर्मभूमिके भेदसे मनुष्य दो प्रकारके होते हैं। देवकुरु और उत्तरकुरु आदि भेदोंसे भोगभूमियाँ तीस हैं। उत्तम, मध्यम और जघन्य भेदसे वे भूमियाँ त्रिविध हैं। उत्तम भोगभूमियोंमें मनुष्योंकी ऊँचाई छह हजार धनुष और जघन्य भोगभूमियोंमें दो हजार धनुष है।

उत्तम भोगभूमिके लोगोंकी एक पल्य आयु है। इन भोगभूमियोंमें वहांके मनुष्य पात्रदानके प्रभावसे मद्यांग आदि भेदोंसे युक्त दश कल्पवृक्षके भोगोंको भोगते हैं।

कर्मभूमिके मनुष्य आर्य और म्लेच्छ, ऐसे दो प्रकारके हैं। भरतभूमि आदि पन्द्रह कर्मभूमियां हैं। कर्मभूमि निवासियोंकी उत्कृष्ट ऊँचाई पाँचसौ पचीस धनुष है। कर्मभूमिके मनुष्योंकी

आयु पूर्वकोटि प्रमित कही गई है। भरतभूमि और ऐरावत-भूमिकी तरह विदेह आदि भूमिमें वृद्धि और ह्रास नहीं है। भरत और ऐरावतमें समय भेदसे वृद्धि और ह्रास होता है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी, ये दो कालके भेद हैं।

दश कोटि-सागरकी एक अवसर्पिणी होती है। यही परिणाम उत्सर्पिणीका भी है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों भेदोंसे हरएकके सुखमासुखमा, सुखमा, सुखमादुखमा, दुखमासुखमा, दुखमा और दुखमादुखमा, ये छह भेद हैं।

इन कालकी कलाओंका परिमाण जिन भगवानने यों बताया है। यथा-पहली चार कोटि-सागरकी, दूसरी तीन कोटि-सागरकी, तीसरी दो कोटि-सागरकी, चौथी बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटि सागरकी, पांचवी छठवीं इक्कीस इक्कीस हजार वर्षकी है।

कर्मभूमियोंमें पाँच म्लेच्छखण्ड हैं; अतएव म्लेच्छ भी पांच प्रकारके हैं। छह कर्मोंके भेदसे आर्य छह प्रकारके हैं। वे गुण-स्थान भेदसे चौदह प्रकारके हैं। वे गुणस्थान ये हैं-मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, मिश्र, असंयत सम्यक्दृष्टि, देशसंयत, प्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म-साम्पराय, उपशान्त-कषाय, क्षीण-कषाय, सयोगकेवली और अयोगकेवली। यह नरयोनिके जीवोंका वर्णन किया गया।

अब कुछ देवयोनिका वर्णन किया जाता है। चारकायके भेदसे देव चार प्रकारके हैं। उनमें असुरकुमार, अहिकुमार आदि भवनवासी देव दश प्रकारके हैं। किन्नर आदि भेदोंसे व्यन्तर देवता आठ प्रकारके हैं। सूर्य चन्द्र आदिके भेदसे ज्योतिष्क देव पांच प्रकारके हैं। वैमानिक देवता दो प्रकारके, कल्पातीत और कल्पवासी हैं।

कल्पवासी देव सौधर्म आदि कल्पों (स्वर्गों) में रहते हैं और नौ ग्रैवेयक तथा विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और

सर्वार्थसिद्धि इन विमानोंमें रहनेवाले देव कल्पातीत हैं। ये सब अवधिज्ञानी हैं। देवताओंके इस चतुर्निकायमें भवनवासी देवोंमें असुरकुमारोंका शरीर पचीस धनुष ऊंचा और शेषका दस धनुष ऊंचा है।

व्यन्तर और ज्योतिष्क देवता सात सात धनुष ऊंचे हैं। सौधर्म (प्रथम) और ईशान (द्वितीय) कल्पके देव सात हाथ ऊंचे हैं। सनत्कुमार कल्प और माहेन्द्र कल्पके देव छह छह हाथ और ब्रह्म ब्रह्मोत्तर और लान्तव कापिष्ट कल्पके देव पाँच पाँच हाथ ऊंचे हैं। शुक्र कल्पसे लेकर आनत कल्पके पहले तकके चार कल्पोंके देव चार हाथ ऊँचे हैं।

आनत कल्प और प्राणत कल्पमें देवोंकी ऊंचाई साढ़े तीन हाथकी कही गई है। आरण कल्प और अच्युत कल्पके देव तीन हाथ ऊंचे हैं। तीन नीचेके ग्रैवेयकोंमें देव ढ़ाई ढ़ाई हाथ ऊंचे हैं। बीचके तीन ग्रैवेयकोंमें दो हाथ ऊंचे और ऊपरके तीन ग्रैवेयकोंमें डेढ़ हाथ ऊँचे हैं। ग्रैवेयक विमानोंके अनुत्तर अनुदित आगेके देवता हाथ हाथ भरके हैं।

भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट आयु एक सागर है। व्यन्तर देवोंकी परमायु कुछ अधिक एक पल्यकी है। इन दोनों देवोंकी जघन्य आयु दश दश हजार वर्षकी है। ज्योतिष्क देवोंकी परमायु कुछ अधिक एक पल्य और जघन्य आयु पल्यका आठवाँ हिस्सा है।

तीनों लोककी वस्तुओंको देखे हुए जिनभगवान्‌ने सौधर्म और ईशान कल्पके देवोंकी परमायु दो सागर-परिमित कही है। सनत्कुमार और महेन्द्र कल्पके देवोंको आयु सातसागर-परिमित है। ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पके देवोंकी आयु दश सागर-परिमित है। लान्तव और कापिष्ट कल्पके देवोंकी परमायु चौदह सागर-

परिमित और शुक्र तथा महाशुक्र कल्पके देवोंकी परमायु सोलह सागर-परिमित है।

शतार और सहस्रार कल्पमें अठारह सागर-परिमित और आनत तथा प्राणत कल्पमें बीस सागर-परिमित देवोंकी परमायु कही गई है। आरण और अच्युत कल्पमें बाईस सागर-परिमित परमायु है। तेंतीस सागरतक इसी तरह आगे देवोंकी परमायुमें एक एक सागर बढ़ता जायगा। इस प्रकार गति आदिके भेदसे जीव-तत्त्वका वर्णन किया गया।

अब अजीवका कुछ निरूपण किया जाता है। जैनशास्त्रके जानकारोंने धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल, ये अजीव-तत्त्वके पाँच भेद कहे हैं। जीव-तत्त्वसहित इन्हीं पाँच द्रव्योंको छह द्रव्य भी कहते हैं। कालद्रव्यको छोड़कर इन्हीं पाँच द्रव्योंको पञ्चास्तिकाय कहते हैं।

मछलियोंके चलनेके लिये जैसे जल सहायक है उस तरह जो वस्तु जीव आदि पदार्थोंकी गतिका कारण है वही धर्म द्रव्य है। वह मूर्तिरहित और लोकाकाश पर्यन्त-व्याप्त है। उसकी अवस्थिति नित्य है। वह सर्वज्ञके ज्ञान-गोचर है। पुद्गल आदि द्रव्योंकी स्थितिका कारण अधर्म भी धर्मकी तरह लोकव्यापी है। अवगाहन ही जिसका मुख्य लक्षण है वह आकाश नित्य और व्यापक है। उसीमें चराचर पदार्थ बिना किसी बाधाके रहते हैं।

केवलज्ञानी जिनने धर्म, अधर्म और एक जीवके असंख्यात प्रदेश कहे हैं। आकाश अनन्त-प्रदेशी है। कालका लक्षण वर्तना-परिणाम है। वह परिणमनशील पदार्थोंको परिणत किया करता है। कुछ लोगोंका कहना है कि सूर्यकी उदय और अस्त होनेकी क्रियाके अलावा और कोई काल पदार्थ ही नहीं है। लेकिन यह ठीक नहीं है।

संसारमें क्रियाको 'काल' शब्दसे सूचित करना, वाहकमें गो-ध्वनिके समान, गौण-वृत्तिसे प्रचलित हो गया है। 'नरसिंह' शब्दकी तरह मुख्य बिना गौणकी कल्पना हो नहीं सकती। इसलिए मानना पड़ेगा कि द्रव्यस्वभावसे युक्त कोई काल अवश्य है। जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पाये जाएँ वह पुद्गल है।

पुद्गलके दो भेद हैं—परमाणु और स्कन्ध। पृथ्वी आदि तथा स्थूल-सूक्ष्म आदि और छाँह-धूप आदिके भेदोंसे पुद्गलके बहुतसे भेद हैं। वह पुद्गल शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अपान आदि पर्यायोंसे सब प्राणियोंका उपकार करता है। जैन शास्त्रानुसार यह अजीव-तत्त्वका वर्णन किया गया।

अब आस्रव-तत्वका कुछ निरूपण किया जाता है। कर्मोंके आगम-द्वारको आस्रव कहते हैं। उसका सम्बन्ध मन-वच-कायके कर्मोंसे है। वह पुण्यकर्मका शुभ और पापकर्मका अशुभ आस्रव कहलाता है। उस आस्रवके कर्ता द्विविध हैं—एक क्रोधादि कषायसहित और दूसरा इन कषायोंसे रहित। आसादन (ज्ञान-वस्तुमें विनयाभाव), मात्सर्य, महापुरुषोंके प्रति अपलाप आदि ज्ञानावरण और दर्शनावरणके आस्रव बतलाये गये हैं।

रोना, सन्ताप, शोक, आक्रोश और वध आदिक असाता-वेदनीय कर्मके आस्रव हैं। रागसहित चारित्र, दान, शौच, क्षमा, प्राणिदया आदि सातावेदनीय कर्मके आस्रव जानने चाहिए। केवली (अर्हत्परमेष्ठी), तत्कथित शास्त्र, धर्म (रत्नत्रय), चतुर्निकायके देव और चतुःसंघकी निन्दा, ये दर्शनमोहनीके आस्रव हैं।

क्रोधादि कषायोंके उदयसे जो तीव्र परिणाम होता है वही परिणाम चारित्रमोह-कर्मका आस्रव कहा गया है। बहुत आरंभ, बहुत परिग्रह नरक-सम्बन्धी आयुका आस्रव है। बहुविध माया-कषाय तिर्यक्योनिके आस्रव हैं।

सराग-संयम आदि देवयोनिके आस्रव कहे गये हैं। विसम्वादन (अन्यथा प्रवृत्ति) और अत्यन्त मन-वच-कायके व्यापारोंकी कुटिलता अशुभ कर्मके आस्रव हैं। शुभकर्मके आस्रव इनके विपरीत हैं। दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनायें तीर्थंकर नामकर्मके आस्रव हैं।

अपनी प्रशंसा और अन्य लोगोंकी निन्दा आदि नीच गोत्रके आस्रव हैं। अपनी निन्दा और अन्य लोगोंकी प्रशंसा आदि उच्च गोत्रके आस्रव हैं। दान आदिमें विघ्न करना अन्तरायकर्मका आस्रव कहा गया है। इस प्रकार आस्रव-पदार्थका वर्णन किया गया।

अब बन्ध-तत्त्वका स्वरूप बतलाया जाता है। मिथ्यात्व, योग, अविरति, प्रमाद और कषाय, ये पांच बन्धके कारण हैं। संसारी जीवके कषाय युक्त होनेसे कर्मोंके योग्य पुद्गल-परमाणुओंके साथ निरन्तर सम्बन्ध ही बन्ध कहलाता है।

जैनशास्त्रमें निष्णात मुनीश्वर लोग उस बन्धके चार भेद बतलाते हैं। यथा-प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध, और प्रदेशबंध। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अन्तराय, ये आठ कर्म हैं। इनके क्रमसे पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, बयालीस, दो और पाँच भेद हैं।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, अन्तराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्टस्थिति, तीस कोटि-सागरकी है। मोहनीय-कर्मकी स्थिति सत्तर कोटि-सागर और नाम तथा गोत्र इन दो कर्मोंकी स्थिति बीस बीस कोटि-सागरकी है। आयुकर्मकी स्थिति तैंतीस सागरकी है। वेदनीय कर्मकी जघन्यस्थिति बारह मुहूर्तकी और नाम तथा गोत्र कर्मकी जघन्यस्थिति आठ मुहूर्तकी है। शेष कर्मोंकी जघन्य-स्थिति अंतर्मुहूर्तकी है।

केवलदृष्टिसे युक्त जिनेश्वरोंने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव आदिकी अपेक्षासे ज्ञानावरण आदि कर्मोंके विपाकको ही अनुभाग-बन्ध कहा है। मन-वचन-कायके भेदसे जीवके सब अपने प्रदेशोंमें ज्ञानावरण आदि कर्मोंके अनन्त प्रदेश स्थित हैं। यही प्रदेश-बन्ध है। इस प्रकार चार भेदोंसे युक्त बंधका स्वरूप कहा।

अब कुछ संवरका वर्णन किया जाता है। आस्रव-निवृत्ति ही संवर कहलाता है। व्युत्पत्तिके अनुसार जिससे कर्मका संवरण-रोकना हो वही संवर है। चारित्र, गुप्ति, अनुप्रेक्षा (शरीरादिके स्वभावका अनुचिन्तन) परीषहजय (भूख प्यास आदिको मारना), दशलक्षण धर्म और पञ्च समितियोंसे यह संवर होता है। यह संक्षेपसे संवर तत्त्वका स्वरूप कहा गया।

अब कुछ निर्जराका निरूपण किया जाता है। कर्मोंका क्षय करना ही जिसका लक्षण है वह निर्जरा दो प्रकारकी है। एक सविपाकनिर्जरा और दूसरी अविपाकनिर्जरा है। नरक आदि गतिमें कर्मोंको भोगकर उनका क्षय करना सविपाकनिर्जरा है और तप करके कर्मोंका क्षय करना अविपाकनिर्जरा है।

निर्जराका कारण तप है। वह बारह भेदोंसे युक्त है। किंतु उसके मूलभेद दो ही हैं—अन्तरंग तप और बाह्य तप। उपवास, अवमौदर्य, वृत्तिसंख्या, रस-परित्याग, एकान्तवास और कायक्लेश ये बाह्य तपके छह भेद हैं। स्वाध्याय, वैयावृत्ति, ध्यान, कायोत्सर्ग, विनय और प्रायश्चित, ये अन्तरंग तपके छह भेद हैं। स्वाध्याय, अनशन आदिको सब समझते हैं, इससे उनका विशेष बखान न करके दुर्बोध्य ध्यानका ही वर्णन किया जाता है।

जिन भगवानने शुभाशुभ गति देनेवाले ध्यानके चार भेद

कहे हैं। यथा—आर्त्तध्यान[1], रौद्रध्यान[2], धर्मध्यान[3] और शुक्लध्यान[4]। अनिष्ट वस्तुके प्राप्त होनेपर उसके दूर होनेका चिन्तवन करना, इष्ट वस्तुके वियोगकी अवस्थामें उसके पानेका चिन्तवन करना, रोग आदिसे उत्पन्न वेदनाकी बारम्बार स्मृति और निदान (आगामी विषय भोगोंकी प्राप्तिकी इच्छा) ये आर्तध्यानके चार भेद हैं। रौद्रध्यान भी हिंसानन्द, अनृतानन्द, चौर्यानन्द और विषयानन्द इस तरह चार प्रकारका है।

धर्मध्यानके भी आज्ञाविचय[5], विपाकविचय[6] अपायविचय[7] और संस्थानविचय[8] ये चार भेद हैं। शुक्लध्यानके भी चार भेद हैं—प्रथक्त्ववितर्कवीचार[9] और दूसरा एकत्ववितर्कवीचार[10]। तीसरा सूक्ष्म-प्रतिपाति[11] और चौथा समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाति[12]। इस प्रकार यह निर्जरा पदार्थका वर्णन किया गया।

१–आर्त्त नाम दुःखका है। उससे होनेवाले ध्यानको 'आर्त्तध्यान' कहते हैं। २–रुद्र नाम क्रूरताका है। उससे होनेवाले ध्यानको 'रौद्रध्यान' कहते हैं। ३–दशलक्षण आदि धर्म द्वारा होनेवाले ध्यानको 'धर्मध्यान' कहते हैं। ४–शुचिगुणके सम्बन्धसे होनेवाले ध्यानको 'शुक्लध्यान' कहते हैं। ५–सर्वज्ञकी आज्ञाको प्रमाण मानकर गहन पदार्थोंके अर्थका अवधारण—निश्चय करनेको 'आज्ञाविचयधर्मध्यान' कहते हैं। ६–ये संसारी जीव मिथ्या-मार्गसे मुक्ति लाभकर कब सुमार्ग पर आवें, इस प्रकार चिन्तन करनेको 'अपायविचयधर्मध्यान' कहते हैं। ७–द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका निमित्त पाकर उदयमें आये कर्मफलका अनुभव करनेको 'विपाकविचयधर्मध्यान' कहते हैं।

८–लोकके संस्थान, पर्याय, स्वभाव आदिके चिन्तन करनेको 'संस्थानविचय धर्मध्यान' कहते हैं। ९–शान्त–मोह मुनि अनेक

अब मोक्षतत्त्वका वर्णन किया जाता है। परिणामी भव्य-जीवके सब कर्मोंका क्षय ही मोक्ष है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, ये तीन उसकी प्राप्तिके उपाय हैं। जीव आदि पदार्थोंका यथार्थ ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान है।

तत्त्वोंमें रुचि पैदा होना सम्यग्दर्शन है। पापरूप आरम्भका त्याग सम्यक्चारित्र है। निश्चितरूपसे भावित ये तीनों बातें संसार-व्याधिका विध्वंश कर डालती हैं। जैसे किसी एक दवासे हीन नुसखा रोगको नहीं नष्ट कर सकता वैसे इनमेंसे एक बातकी कमी होनेपर मुक्ति नहीं होती।

द्रव्योंका तीनों योगों द्वारा जो बार बार विचार करता है उसे 'पृथक्त्व' कहते हैं। यह पृथक्त्व वितर्क (श्रुत-अर्थसे अर्थान्तर होना) सहित है इसलिये इसे सवितर्क कहते हैं। पदार्थ, पर्याय और योग इनका यहांपर संक्रमण (पलटना-पदार्थसे पदार्थान्तर, पर्यायसे पर्यायान्तर और योगसे योगान्तर) होता रहता है इसलिए इसे सवीचार कहते हैं। और इसी कारण (श्रुत और संक्रमण युक्त होनेसे) इस पृथक्त्व ध्यानको 'पृथक्त्ववितर्कवीचार-शुक्लध्यान' कहते हैं। १०-तीन योगोंमेंसे किसी एक योग द्वारा एक ही द्रव्यका ध्यान करनेको 'एकत्व' कहते हैं। पहले भेदके समान यह भी वितर्क (श्रुत) सहित होता है इसलिए इसे 'एकत्व-वितर्क' कहते हैं। इस ध्यानमें पदार्थादिकका पलटना नहीं होता है इसलिए इसे अवीचार कहते हैं। तब इसका नाम एकत्ववितर्कअवीचारशुक्लध्यान' हुआ। ११-जिसमें वितर्क और वीचारको छोड़कर केवल सूक्ष्म-काय योगका अवलम्बन लेकर जो सब पदार्थोंका ध्यान किया जाता है उसे 'सूक्ष्मक्रियाप्रति-पातिशुक्लध्यान' कहते हैं। १२-सूक्ष्म-काययोगके अवलम्बनको भी छोड़कर—अयोग होकर जो सब पदार्थोंका निर्विकल्प ध्यान किया जाता है उसे 'व्युपरतक्रियानिवर्त्तिशुक्लध्यान' कहते हैं।

जैसे दवाका केवल जानपना, केवल विश्वास (श्रद्धा) तथा केवल सेवन रोगका नाश नहीं कर सकता उसी तरह तत्वोंका केवल जानपना, केवल विश्वास या केवल आचरण संसार रोगका नाश नहीं कर सकता। और जैसे दवाका सम्यक् जानपना, सम्यक् विश्वास तथा सम्यक् आचरण-सेवन रोगका नाश कर देता है उसी तरह तत्वोंका सम्यक् ज्ञान, सम्यक् विश्वास तथा सम्यक् आचरण ग्रहण संसार-रोगका नाश कर देता है।

मतलब यह कि रोग नाशके लिए जैसे दवाके ज्ञान, श्रद्धान और सेवनकी एकसाथ आवश्यकता है-वे जुदे जुदे कुछ लाभकारी नहीं होते उसी तरह तत्वोंका ज्ञान, विश्वास और आचरण ये तीनों मिले होने चाहिए। ये तीनों मिले हुए ही मोक्षके मार्ग हैं, जुदे जुदे नहीं।

ये सम्यग्ज्ञान आदि ज्ञानावरण आदि कर्मोंके प्रतिकूल होनेके कारण मुक्तिके कारण हैं। क्योंकि ज्ञान आदिकी वृद्धिसे ही राग-द्वेष आदिका क्षय देख पड़ता है। राग-द्वेष आदिका क्षय होने पर कर्मोंका भी क्षय हो जाता है। क्योंकि राग-द्वेष आदि वासनायें ही कर्मका कारण हैं।

इस कारण यह रत्नत्रय, विरोधी होनेके कारण, कर्मोंके क्षयका कारण है। कर्म जिसके क्षीण हो गये हैं वह जीव, अपने शरीरके अनुसार कुछ न्यून आकार ग्रहण करके अग्नि-शिखाके समान स्वभावतः ऊर्द्धगतिको प्राप्त होता है। तब वह जीव जगत्के अग्रभागमें पहुँचकर वहीं स्थिर हो जाता है। गतिके कारण धर्मद्रव्यके न रहनेसे आगे गति नहीं होती।

इस प्रकार तत्त्वके उपदेशसे सारी सभाको प्रसन्न करके भव्य जीवोंके शुभ कर्मोंसे प्रेरित स्वामी चन्द्रप्रभ जिन पृथ्वी पर विचरने गये। चन्द्रप्रभ भगवान्का सूर्यतुल्य तेजस्वी शरीर स्वेदरहितता आदि दश स्वाभाविक गुणोंसे शोभायमान हुआ।

चन्द्रप्रभ भगवान् जहां जहां जाते थे वहां वहां दो-सौ योजन तक लोगोंको प्रसन्न करनेवाला सुभिक्ष होता था। प्राणियोंको पीड़ा न पहुंचानेवाला उनका आकाशगमन भी सब प्राणियोंकी प्रसन्नताका कारण होता था।

सूर्यके समान छायाशून्य उनके शरीरको भोगजनित बाधायें जरा भी नहीं स्पर्श कर सकीं। चन्द्रप्रभके महातिशयवाले चतुर्मुख रूपको देखकर, जहां वे जाते थे वहांकी, चतुर प्रजा उठकर उन्हें प्रणाम करती थी। पलक न लगनेके कारण उनके दोनों नेत्र उन नील कमलोंके समान जान पड़ते थे जो वायुरहित स्थानमें विराजमान हों।

यथास्थान नखों और केशोंसे युक्त उनका शरीर ही मानों उन सब विद्याओंके स्वामीकी असाधारणताको कह रहा था। मुक्ति प्राप्त करनेके लिए उत्सुक वे जिनेन्द्र इन घाती-कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न इन उत्कृष्ट अतिशयोंसे शोभायमान हुए। सर्वभाषा-स्वरूपिणी और सब तत्त्वोंका उपदेश करनेवाली भगवान्की मागधी भाषा और प्राणिमैत्री सबकी प्रसन्नताका कारण हुई।

उनके विहारसे पृथ्वी आईनेके समान साफ, रत्नमयी और सब ऋतुओंके फलोंसे सम्पन्न होगई। उनके सुवर्णकमल सदृश चरण देखकर यह जान पड़ता था कि जीते हुए राग-रूपी मल्लने हारकर उनके चरणोंका आश्रय लिया है।

इस प्रकार इन देवसमूहकल्पित चौदह अतिशयोंसे तथा अन्यान्य अतिशयोंसे चन्द्रप्रभ भगवान् सुशोभित हुए। वे शुभ-चेष्टायुक्त जिनेन्द्र भगवान् सम्पूर्ण जगत्के ऐश्वर्यकी सूचना देनेवाले तीन छत्र आदि आठ प्रातिहार्यसे युक्त होकर विराजमान हुए।

चन्द्रप्रभ भगवान्की सभामें तिरानवे गणधर, अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले दो हजार पूर्वधारी मुनि, दो लाख आचार्य, आठ हजार चारसौ महाबुद्धिमान् अवधिज्ञानसे युक्त मुनि, दश हजार

निर्मल चित्तवाले केवल-ज्ञानी मुनि, चौदह हजार विक्रिया-ऋद्धिको प्राप्त मुनि, आठ हजार तेजस्वी मनःपर्ययज्ञानवाले मुनि, सात हजार छहसौ महावादी मुनि, जिनके पाप नष्ट होगये हैं और चित्त अत्यन्त शुद्ध हो चुका है ऐसी एक लाख अस्सी हजार वरुणा आदि आर्यिकायें, तीन लाख सम्यक्तशाली श्रावक और पांच लाख व्रत आदिसे पवित्र श्राविकायें थीं।

मुनिवृन्द जिनकी वन्दना करते हैं उन गणधरोंसे युक्त भगवान् चन्द्रप्रभ धर्मोपदेशके जलसे भव्यपुरुष-सस्यको बढ़ाते हुए सारी पृथ्वीपर विहार करके सम्मेदपर्वतके शिखरपर गये। वहाँ महीनाभर आहार छोड़कर भादोंके शुक्लपक्षकी सप्तमीके दिन मुनिगणसहित चन्द्रप्रभ प्रभुने प्रतिमा-योग ग्रहण कर लिया।

इस प्रकार निराबाध दश लाखपूर्व वर्ष परिमाण आयुका क्षय होनेपर भगवान् चन्द्रप्रभ शुक्लध्यान द्वारा सब पापोंका नाश कर मोक्षपदको प्राप्त हुए।

इस प्रकार निर्वाण प्राप्तिके उपरांत जिनके बड़े पुण्योंका उदय हुआ है वे देवगण चैत्य-मन्दिरोंसे प्रकाशमान सम्मेदपर्वतके पवित्र शिखरपर स्थित चन्द्रप्रभ प्रभुके डेढ़सौ धनुष ऊंचे शरीरको अगुरु-चन्दन आदि चितामें जलाकर, पञ्चम निर्वाण-कल्याण नामक मंगलकार्य करके अपने अपने स्थानको गये।

इति अष्टादशः सर्गः

ग्रन्थकर्ताका परिचय
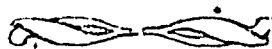
भव्यजनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित-हर्षित करनेवाले, मुनिसंघके स्वामी, गणधरकी तरह ज्ञानवान्, सज्जनोंमें श्रेष्ठताका मान पाये हुए, देशिगणमें प्रधान माने-जानेवाले और गुणकी खान ऐसे श्रीगुणनन्दि नामके एक आचार्य हुए। उन गुण-समुद्र सुकृतके स्थान गुणनन्दि आचार्यके लिए-राजाको जैसे कोई बात असाध्य या कठिन नहीं होती-कुछ कठिन न था। इन गुणनन्दिके प्रधान-शिष्य दूसरे गुणनन्दि हुए, जो चन्द्रमाके समान शान्तस्वभावी और पृथ्वीमें प्रसिद्ध थे।

जिनके चरणोंको मुनिजन नमस्कार करते हैं, मिथ्यावाद जिन्होंने नष्ट कर दिया है, जो सब श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त हैं, जैन धर्मका प्रभाव बढ़ानेवाले हैं, जिन्होंने अपनी गम्भीरतारूप महिमासे समुद्रको भी जीत लिया और जो भव्यजनोंके एकमात्र बन्धु—हितकर्ता थे ऐसे अभयनन्दि मुनि इन दूसरे गुणनन्दि आचार्यके शिष्य हुए।

उन-भव्यजनरूपी कमलोंको विकसित-आनन्दित करनेवाले, सूर्यके समान तेजस्वी और गुणोंके धारी बुद्धिमान् अभयनन्दि आचार्यके शिष्य वीरनन्दी हुए। जिन्होंने सम्पूर्ण वाङ्मयको अपने अधीन कर लिया था—जो अपनी रचनामें अपनी इच्छाके अनुसार अर्थगाम्भीर्य, शब्दार्थ-सौन्दर्य आदि गुण ला सकते थे और जिनकी कीर्ति संसारमें प्रख्यात थी। इन वीरनन्दीके वचन कुतर्कका नाश करनेको अंकुश समान थे। सभाओंमें इन्हींके वचनोंकी विजय होती थी।

श्री सहृदय महाकवि श्री 'वीरनन्दी' ने शब्द और अर्थसे सुन्दर इस चन्द्रप्रभ-चरितको रचा है।

जो पहले श्रीवर्मा नाम राजा हुए, फिर सौधर्मस्वर्गमें गये, वहांसे आकर अजितसेन चक्रवर्ती हुए, फिर अच्युतस्वर्गमें इन्द्र हुए, वाद पद्मनाभ नाम राजा हुए, वहांसे फिर वैजयन्त विमानके इन्द्र हुए। इस प्रकार छह भव धारण कर सातवें भवमें जो चन्द्रप्रभ तीर्थंकर हुए; वे भगवान् हमारी रक्षा करें।